इकाई–1 हठयोग का अर्थ, परिभाषा, उददे्श्य व महत्व

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 हठयोग का अर्थ व परिभाषाऐं

1.4 हठयोग का उददे्श्य

1.5 हठयोग का महत्व

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.9 संदर्भ–ग्रन्थ सूची

1.10 सहायक ग्रन्थ सूची

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना–

हठयोग की प्रारम्भिक और महत्वपूर्ण जानकारी देने वाली इस प्रथम इकाई को पढ़ने से पूर्व आपने योग के सन्दर्भ में सुना व पढ़ा होगा। आपने जाना होगा कि योग वास्तव में पढ़ने, सुनने मात्र तक नहीं वरन् नहीं अधिक गहरा है अनुभवात्मन है। हठयोग का महत्व समझते हुये ऋषियों व विद्वान जनों ने इसके सम्बन्ध में जो महत्वपूर्ण जानकारियां कई ग्रन्थों में लिखी है उन्हीं का संकलन इस इकाई में आप पाऐंगे। इस इकाई व अध्ययन के बाद आप हठयोग के अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य व महत्व का सम्यन विश्लेषण कर पाऐंगे।

1.2 उदद्ेश्य–

प्रस्तुत इकाई में आप जान सकेंगे –

- हठयोग से तात्पर्य एवं विभिन्न ग्रन्थों एवं विद्धानों की दृष्टि में हठयोग को जानेंगे
- हठयोग के मुख्य उदद्ेश्य के विषय में जानेंगे
- वर्तमान में हठयोग का किस प्रकार उपयोगी है यह जानेंगें।

1.3 हठयोग का अर्थ व परिभाषाऐं –

योगविद्या भारतीय ऋषि मुनियों की जीवन चर्या रही है। योगविद्या का स्थान युगों पूर्व भी शीर्ष पर था और आज भी शीर्ष पर ही है और भविष्य में भी रहेगा, इसमें किंचित भी संदेह नहीं है। आध्यात्मिक दृष्टि से योग से तात्पर्य 'समाधि' है। अर्थात् समाधिपूर्वक आत्मसाक्षात्कार एवं आत्मसाक्षात्कारपूर्वक स्वरूपस्थिति को प्राप्त कर लेना ही योग है। लौकिक दृष्टि से योग शब्द का अर्थ संयोग अथवा मेल से है। वस्तुतः योग अस्मिता वृत्ति से निरोध भी है, यह योग के वियोग की घटना है। गूढ़ अर्थो में, यही संयोग का वियोग ही योग है। योग के विषय में ज्ञान कराने वाले अनेक मार्ग हैं यथा, राजयोग, हठयोग, लययोग, मंत्रयोग, भक्तियोग आदि योग की महत्ता और इसमें बताई गई प्रक्रियाओं का वर्णन, श्रुति, स्मृति, व पुराणों में पर्याप्त रूप से मिलती है। ऋग्वैदिक काल को भारतीय संस्कृति के साथ–साथ समस्त मानव सभ्यता का उद्गमकाल माना जाता है। वस्तुतः साधना चाहे किसी भी ढंग से की जाये, जब तन दैहिक आसात्ति से छुटकारा नहीं मिल जाता, मन की चंचलता तिरोहित नहीं हो जाती, तबत क योग मार्ग में प्रगति, आत्म साक्षात्कार संभव नहीं। मन का विज्ञान 'राजयोग' है और आज के युग में मानव कल्याण का समाचीन साधन जो है वह राजयोग को उच्च स्थिति को प्राप्त कराने में सहायक हठयोग है। अति प्राचीन काल से ही अपनी विशिष्ट आध्यात्मिक छवि को बनाये रखने के कारण भारतवर्ष एक अध्यात्म–प्रधान देश के रूप में विख्यात रहा है। चौदहवीं–15वीं शताब्दी में योग का पक्ष धूमिल हो चला था और इसी समय में 'श्रीस्वात्माराम' ने हठयोग के सही पक्ष को जन सामान्य एवं विद्धानों के समक्ष रखा। स्वात्माराम जी के अनुसार

हठयोग व राजयोग अलग–अलग पक्ष नहीं वरन एक दूसरे के लिये ही है दोनों की चरम परिणति समाधि में ही होती है।

हठयोग– हठ + योग – हठयोग

यौगिक साहित्य के अनुसार हठ दो शब्दों 'हं' और 'ठं' से बना है ।

हकांरेण तु सूर्यरू स्यात् ठकारेणोन्दुरूच्यते।

सूर्य चन्द्रमसौरेक्यं हठ इत्यभिधीयते।। (योग शिखोपनिषद्)

जिनमें 'हं' से तात्पर्य हकार अर्थात सूर्य स्वर तथा 'ठं' से तात्पर्य ठकार अर्थात् चन्द्र स्वर। हठयोग, अर्थात् सूर्य स्वर व चन्द्र स्वर का एकीकरण या संयोग है

इन दो दिव्य विग्रहों के लिये संस्कृत में कई नाम हैं यथा

	हठ	
'ह'	+	'ठ'
हंम्		ठंम्
पिंगला		इडा नाड़ी
सूर्य स्वर		चन्द्र स्वर
ग्रीष्म		शीत
पित्त		कफ
दिन		रात्रि
शिव		शक्ति
ब्रहम		जीव
दक्षिण		वाम

हठयोग

हठयोग में जब इड़ा और पिंगल नाड़ी, वाम और दक्षिण स्वर जब एक समान चलने लगें तो सुषुम्ना का जागरण होता है। जब सुषुम्ना निरन्तर चलने लगती है तो शरीर में सूक्ष्म रूप में विद्यमान कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। जब कुण्डलिनी छरूचक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार में जाकर परमशिव से मिलती हैं तो आध्यत्मिक अर्थों में यही हठयोग का तात्पर्य है।

शरीर में विद्यमान पॉच प्राण प्राव, अपान, व्यान, समान, उदान, है। प्राण ह्दय में, तथा गुहय प्रदेश में निवास करती है। प्राण तथा अपान का समान में मिल जाना ही हठयोग है।

परिभाषायें–

सिद्ध सिद्धान्त पद्धति के अनुसार,

हकाररूकथितरूसूर्य ठकारचन्द्र उच्यते।

सूर्य चन्द्रमसोर्योगात् हठयोग निगधते।।

अर्थात् हकार सूर्य स्वर और ठकार से चन्द्र स्वर चलते हैं। इन सूर्य और चन्द्र स्वरों को प्राणयाम आदि के विशेष अभ्यास से प्राण की गति को सुषुम्ना में प्रवाहित करना ही हठयोग है।

गीता के अनुसार,

अपाने जुह्हति प्राणं प्राणेअपानं तथा परे।

प्राणपानगती रूद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।।

(श्रीमद्भगवदगीता 4/29)

अर्थात प्राण और अपान वायु को प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा मिलाकर सम कर लेना (हठयोग है)।

शिवसंहिता के अनुसार,

प्राणपानौ नाद बिन्दु जीवात्मा, परमात्मनौ।

मिलित्वा घटते यस्मात्तस्माद् वै घट उच्यते।। (शिव संहिता 3/63)

अर्थात जिसमें प्राण और अपान, नाद और बिन्दु, जीवात्मा और परमात्मा एक हो जाता है। उसी को घट अवस्था या हठयोग कहते हैं। जब प्राणायाम और बंध का अभ्यास कर अपान को ऊपर खींचकर प्राण में मिलाया जाता है तो यह हठयोग साधना कहलाती है।

योग ग्रन्थों में पॉच प्राणों की चर्चा है उदान, प्राण, समान, अपान, और व्यान पॉच प्राण हैं एवं ये शरीर में अलग–अलग स्थानों के कार्यो एवं ऊर्जाओं का नियन्त्रण व नियमन करते हैं। उदान मुख में, प्राण ह्दय में, समान नाभि, अपान गुहय प्रदेश एवं व्यान सम्पूर्ण शरीर के क्रिया कलापों व ऊर्जा का नियन्त्रण नियमन करता है। हठयोग में इसी प्राण को प्राणायाम के माध्यम से मिलाकर मन को नियन्त्रित किया जाता है।

नाद ब्रह्माण्ड में व्याप्त और विलग ब्रहम का ही रूप है। कहा भी गया है 'नाद' ब्रह्म सृष्टि का आरम्भ नाद से ही माना जाता है। नाद वह ऊर्जा है जो सभी तत्वों को उत्पन्न करने वाली है। ऊर्जा न कभी जन्मती है और न नष्ट होती है। इसी नाद का ज्ञान हो जाना ही हठयोग की साधना है।

परिभाषाओं में जीवात्मा और परमात्मा के एक होने की प्रक्रिया को हठयोग कहा गया है। वस्तुतः जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं परन्तु अविद्या, अज्ञान के कारण वह अलग–अलग दिखाई पड़ते हैं। अज्ञानवश जीवात्मा शरीर, इन्द्रियों को अपना स्वरूप समझ लेता है एवं दुरूख भोगता है। हठयोग के माध्यम से जब अज्ञान हटता है तो उनके एक होने का आभास हो जाता है। आत्म तत्व के बाहर अनेकों परतों में शरीर, पंचकोश व पंच भौतिक शरीर विद्यमान रहता है। त्रिशरीर में स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर होते हैं। पंचकोशों में अन्नमय शरीर जो अन्न जल आदि से बना है, प्राणमय कोष प्राण तत्व से बना है, मनोमय कोश मन, विचारों से बना है एवं विज्ञानमय कोश संकल्प, विचारों से बना है। सबसे भीतर आत्मा के सबसे नजदीक का कोश आनन्दमय कोश है यह भावों से बना है, संस्कार यही से निर्मित होते हैं। इन सभी कोशों के कारण व शरीरों के कारण आत्म तत्व स्वयम् को भुलाये रखता है। हठयोग में जीवात्मा और परमात्मा के बीच के सारे बन्धन व उनके कारण हट जाते हैं। योग और आयुर्वेद विज्ञान में डॉ0 शिवचरण योगी कहते हैं– ''स्थूल शरीर के माध्यम से सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करके चित्तवृतियों का निरोध करना ही हठयोग है''

उपरोक्त परिभाषा से निम्न तथ्य सामने आते हैं–

- **सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर के माध्यम से प्रभावित किया जा सकता है।**
- **चित्त वृत्तियों का निरोध सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करके किया जा सकता है।**

परिभाषा के प्रथम भाग को यदि और अधिक स्पष्ट किया जाये तो कहा जा सकता है कि स्थूल शरीर अर्थात इन्द्रिय शरीर का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर अर्थात विचार शरीर से है। इन्द्रियां चक्षु, स्वाद, कर्ण, घ्राणेन्द्रिय एवं जननेन्द्रियां हैं। इन पॉचों में दो इन्द्रियां मुख्य रूप से योग में मुख्य भमिका निभाती हैं वे हैं स्वादेन्द्रिय एवं जननेन्द्रिय। यदि दोनों को संयमित किया जाता है तो योग सिद्ध होने में आसानी हो जाती है। यदि विचार सात्विक हों तो इन्द्रियां संयमित रहती हैं एवं यदि सात्विक आहार–विहार किया जाये तो मन संयमित रहता है। दोनों ही ओर से संयम किया जा सकता है। हठयोग की यही विशेषता है कि यह सरल मार्ग बताता है यह पहले शरीर के मलों को दूर करता है एवं फिर मन तक पहुंचने की बात करता है।

यहां यह बात स्पष्ट कर दें कि शरीर और मन के बीच में एक कड़ी है जो दोनों से जुड़ी है वह है प्राण। प्राण यदि सध जाये तो मन भी सध जाता है जैसा कि हठप्रदीपिका में वर्णन मिलता है–

चले वाते चलं चित्तम् निश्चले निश्चलं भवेत्

अर्थात वायु के चलायमान होने पर चित्त भी चंचल होता है एवं वायु के स्थिर होने पर चित्त भी स्थिर हो जाता है।स्थूल शरीर पर प्रयोग करके प्राण प्रभावित होता है एवं प्राण के माध्यम से सूक्ष्म शरीर प्रभावित किया जा सकता है। चित्त वृत्तियों का वर्णन करते हुये योग दर्शन में कहा गया है–

वृत्तयों पच्चतयरू क्लिष्टाअक्लिष्टाः।।

अर्थात वृत्तियां पॉच प्रकार की हैं जो दुरूख एवं सुख प्रदान करने वाली हैं।

प्रमाणविपर्ययोविकल्पनिद्रास्मृतयरू वृत्तयः।

अर्थात् प्रमाण (इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान), विपर्यय (मिथ्या ज्ञान), विकल्प, निद्रा और स्मृति वृत्तियां हैं।

परिभाषा में इन्हीं चित्तवृत्तियों के निरोध की बात हठयोग के माध्यम से करने की बात की गई है।

योग शिखोपनिषद के अनुसार,

हकारेण तु सूर्यरूस्यात् ठकारेणोन्दुसच्यते।

सूर्य चन्द्रमसौरेक्यं हठ इत्यभिधीयते।।

अर्थात् सूर्य नाम दक्षिण स्वर का है और चन्द्र नाम वाम स्वर का है। इन दोनों स्वरों को समस्वर अर्थात् एक कर लेना, समान बना लेना चाहिये। इस प्रकार से एक समान किये गये समस्वर को या प्राणवायु को पूरक, कुम्भव तथा रेचक प्राणायाम द्वारा अपान वायु के साथ समान कर लेना हठयोग है।

तंत्र शास्त्र के अनुसार, '

''मूलाधार में स्थित शक्ति का सहस्रार में स्थित शिव से मिलन ही हठयोग है।''

योग शास्त्रों की यह धारणा है कि मूलाधार में शिवलिंग के चारों ओर शक्ति 3½ फेरे लपेटे हुये सोई हुई है एवं योग के माध्यम से उसे जगाकर षट्चक्रों का भेदन कर जब सहस्रार में शिव से मिलेगी तो ही मानव मोक्ष को प्राप्त होगा।

घेरण्ड संहिता में हठयोग को घटस्थ योग के नाम से परिभाषित कर कहा गया है कि, *शोधनम् दृढ़ताचौव स्थैर्य धैर्य च लाघवम्*

प्रत्यक्षं च निर्लिप्तं घटस्थ सप्त साधनम्।

(घेरण्ड संहिता 1/9)

अर्थात् शरीर शुद्धि के सात माध्यम शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष व निलिप्तता है।

शोधनम्– शुद्धि करण। शरीर व मन को विकार रहित बनाने के लिये शुद्धिकरण अत्यन्त आवश्यक है।

दृढ़ता– मानसिक, विचारात्मक तथा शारिरिक दृढ़ता योग को प्राप्त करने में सहायक हैं।

स्थैर्य– शारीरिक एवं मानसिक स्थिरता

धैर्य– परिस्थितियों से अप्रभावित रहने का गुण

लाघव– हल्कापन प्रत्यक्षम्–प्रत्यक्षं से तात्पर्य ग्रहणशीलता, अर्थात् ग्रहण करने की क्षमता से है। योग में जितने भी सूक्ष्म या आन्तरिक अनुभव होते हैं उन्हें ग्रहण करने की क्षमता

प्रति	+	अक्ष्म्
सम्मुख		देखना

निर्विप्तम् – मन की अनासक्त अवस्था। महर्षि घेरण्ड ने घटस्थ योग अर्थात् हठयोग को प्राप्त करने के लिये साधक के लिये ये सात सोपान आवश्यक माने हैं।

1.4 हठयोग का उद्देश्य –

इसके पूर्व आपने हठयोग का अर्थ एवं परिभाषा के विषय में जाना। अब आप हठयोग के उद्देश्य के विषय में जानेंगें।

हठयोग के विषय में स्वात्माराम जी 'हठयोग प्रदीपिका' में कहते हैं –

''केवलं राजयोगाय हठविघोपदिक्यते'' अर्थात् केवल राजयोग (समाधि) के लिये ही हठयोग का उपदेश दिया जा रहा है। हठयोग में अन्यत्र भी कहा गया है कि आसन, प्राणायाम, मुद्रायें आदि राजयोग की साधना तक पहुंचने के लिये है–

पीठानि कुम्भकाश्चित्रा दिव्यानि करणानि च।
सर्वाण्यपि हठाभ्यासे राजयोगफलावधिः

हठप्रदीपिका 1/67

यह हठयोग मानसिक एवं आध्यत्मिक विकास के लिये जिज्ञासु लोगों के लिये है एवं भवताप से त्रस्त लोगों के लिये है–

अशेषतापतप्तानां समाश्रयमठो हठः।
अशेषयोगयुक्तानामाधारकमठो हठः।।

हठप्रदीपिका 1/10

इस हठ विद्या का अभ्यास करने के पश्चात् सभी प्रकार के ताप एवं त्रिद्वंद समाप्त हो जाते हैं ताप आदि दैविक, आदि भौतिक एवं आध्यात्मिक ताप है एवं द्वद–सर्दी, गर्मी एवं भूख प्यास आदि द्वंद है। ये सभी हठयोग के साधकों को नहीं सताते हैं एवं स्वतः ही इनसे

मुक्ति मिल जाती है। हठयोग काया साधन–प्रधान पद्धति है। इसे राजयोग के प्राप्ति के उपाय के रूप में स्वीकार किया गया है–

सर्वाण्यपि हठाभ्यासे राजयोगफलावधि।
सर्वे हठलयोपाया राजयोगस्य सिद्धये।।
केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते।

(हठयोगप्रदीपिका 1/69)

वस्तुतः हठयोग को राजयोग का पूर्वाभ्यास कहा गया है। आचार्य जितेन्द्र कुमार पाठक कृत 'योगव्यायाम' में कहा गया है कि सिद्धाचार्यों ने जिस कायासाधन पर विशेष बल दिया था, उसी को नाथ सम्प्रदाय के योगियों ने और अधिक विकसित करके उसे हठयोग नाम से प्रचारित किया, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'नाथ–सम्प्रदाय' के अनुसार हठयोग का प्रयोजन उस अवस्था में उल्लेखनीय हैं जब किसी अन्य साधन से समाधि प्राप्त न हो रही हो।

'यदा न सिद्धयते बोधिहठयोगेन साधयेत' अर्थात जिन्हें बोधि प्राप्त न हो रही हो वे हठयोग का साधन करें। उनके लिये बोधि अवस्था प्राप्त करने का साधन हठयोग है।

हठविद्या को अत्यन्त गोपनीय विद्या भी कहा गया है क्यों कि इसका अभ्यास करने से सहज ही प्राणों का उत्थान होने लगता है।

हठविद्या परं गोप्यं योगिनां सिद्धिमिच्छता।
भवेद्वीर्यवती गुप्ता निवीर्या तु प्रकाशिता।।

(हठप्रदीपिका 1/11)

इसलिये इस विद्या का अभ्यास एकांत में करना चाहिये जिससे अधिकारी साधन को देखकर अनाधिकारी इसका अभ्यास करने से हानिग्रस्त न हो जाये। जिस काल में 'हठयोग' प्रकाश में आया उस काल में बाह्य आडम्बर चरम पर थे अतरू इस विद्या को भी मात्र आडम्बर न समझ लिया जाये इस हेतु इसे गुप्त रूप से करने के लिये कहा जाता रहा। आज स्थिति बदल गई है, लोग इसका महत्व समझने लगें हैं। हठयोग के उद्देश्य के दृष्टिकोण पर विचार करने पर हम देखते हैं कि राजयोग के लिये तो यह आवश्यक है ही साथ ही स्वास्थ्य संरक्षण, रोग से मुक्ति, सुप्त चेतना की जागृति, व्यक्तित्व विकास तथा आध्यात्मिक उन्नति इस विद्या के उददेश्य हैं।

स्वास्थ्य संरक्षण–

शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ एवं सभी संस्थान ठीक प्रकार से कार्य करते रहने से ही आगे बढ़ सकता है। हठयोग में 'आसनेन भवेत् दृढ़म्', 'षट्कर्मणा शोधनम्' आदि कहकर आसनों के द्वारा मजबूत शरीर तथा षट्कर्मों के द्वारा सभी दोषों का शमन करने की बात कही गई है। आसनों के माध्यम से शरीर में दबाव व खिंचात पड़ते हैं शरीर पर +ve व –ve दबाव पड़ने से शरीर की मांसपेशिया लचीली व पुष्ट होती हैं। रक्तवय संस्थान ठीक

होता है व पूरे शरीर की homeostasis बरकरार रहती है। आज के युग में हठयोग की विधाओं द्वारा शरीर पर हो रहे प्रभावों को विभिन्न शोधों के अध्ययन से जाना जा सकता है एवं इसका अभ्यास करके शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है। हर व्यक्ति जन्मता तो साधारण मनुष्य के नाते है परन्तु कालान्तर में उसकी जीवन शैली ही उसे समाज में स्थान दिलाती है।

स्वास्थ्य संरक्षण के दृष्टिकोण से हठयोग दो प्रकार से कार्य करता है

1. Improvement (उन्नति)
2. Maintenance (संरक्षण)

1. Improvement के दृष्टिकोण से शारिरिक शुद्धि के उपाय के विषय में जाना जाता है।स्वास्थ्य की दृष्टि से इस पक्ष पर विचार किया जाता है कि हठयोग में कौन–कौन सी ऐसी क्रियायें है जिनसे स्वास्थ्य संरक्षण हो सके।

घेरण्ड संहिता में सप्त साधनों का वर्णन इसी पक्ष को लेकर किया है एवं सप्त साधनों में षट्कर्म स्वास्थ्य में उन्नति लाने के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण कदम है –

धौतिर्वस्ति स्तथा नेति लौलिकी त्राटकं तथा।।
कपालभातिश्चौतानि षट्कर्माणि समाचरित्।

घेरण्ड संहिता 1/12)

अर्थात् धौति (सफाई करना), वस्ति (उपस्थ क्षेत्र की सफाई), नेति (ऑख, नाक, गले की शुद्धता के लिये), लौलिकी (ऑतों की सफाई हेतु) एवं त्राटक और कपालभाति छः कर्म है।

2. Maintenance या संरक्षण प्राणायाम एवं आसनों के माध्यम से किया जा सकता है।

प्राणिक ऊर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता का विकास हठयौगिक क्रियाओं (आसन, प्राणायाम, मुडा, बन्ध आदि) से होता है। आसनों से शरीर में दृढ़ता है। उपनिषदों में जो आसन कहे गये हैं वे ध्यानात्मक आसन हैं चाहे सिद्धासन हो या पद्मासन, भद्रासन या सिंहासन ये आसन उच्चतर अभ्यासों के लिये प्रयुक्त होते हैं। आसन मात्र अंगों का अभ्यास नही हैं वरन् इससे कहीं अधिक हैं, आसनों के साथ सजगता एक अनिवार्य पहलू है।

स्वास्थ्य संरक्षण हठयोग के माध्यम से आज के युग की मांग बनती जा रही है। आपा–धापी से भरा जीवन शारीरिक व मानसिक रूप से थका देने वाला है। मन और शरीर को सही रखना व उनसे सामन्जस्य पूर्ण काम लेना स्वास्थ्य संरक्षण का महत्वपूर्ण पहलू है जिसे हठयोग के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

रोग मुक्ति– हठयोग का उद्देश्य शरीर व मन को रोगमुक्त करना है। कहा भी गया है– *कुर्यान्तदासनं स्थैर्यमारोगयं चाड़.गलाघवम् ।*

हठप्रदीपिका 1/17

आसन शरीर व मन की स्थिरता लाता है, आरोगयता व हल्कापन लाता है।

विभिन्न हठयौगिक अभ्यासों का शरीर व मन दोनों पर प्रभाव पड़ता है। मनोकायिक रोगों में हठयोग मुख्य भूमिका निभाता है। मन से शरीर का सीधा सम्बन्ध है एवं हठयोग शरीर को साधकर मन को साधने की कला है। उदर विकारों के लिये हठप्रदीपिका कहती है–

मत्स्येन्द्रपीठं जठरप्रदीप्तिं प्रचंडरूग्मं

अभ्यासतरूकुण्डलिनीप्रबोधं चन्द्रस्थिरत्वं च ददाति पुंसाम्।

ह0प्र0 1/27

मत्स्येन्द्रासन का अभ्यास करने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। यह रोगों को नष्ट करने में अस्त्र के समान है। इससे कुंडलिनी जाग्रत होती है तथा चन्द्रमंडल स्थिर होता है। इसी प्रकार षट्कर्मों से रोग निवारण कहा गया है–

कासश्वासप्लीहकुष्टं कफरोगाश्च विंशतिः।
धौतिकर्मप्रभावेण प्रयान्त्येव न संशयः।

ह0प्र0 2/25

धौति से कास, श्वास, प्लीहा सम्बन्धी रोग, कुष्ठ रोग, कफदोष का निवारण होता है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में जैसे–जैसे विज्ञान उन्नत हो रहा है रोग भी जटिल होते जा रहे हैं। ये मानसिक समस्याओं से ग्रस्त युग है इस युग के लिये हठयोग से बेहतर साधन नहीं है। सुप्त

चेतना की जाग्रति–

हठयोग की साधनाऐं शरीर से मन पर नियंत्रण स्थापित करने की विधा है। संसार में व्याप्त प्रत्येक वस्तु की अपनी चेतना है परन्तु चेतना का स्तर अलग–अलग होने से क्रिया– कलाप एवं बहुत कुछ बदल जाता है। मानव की चेतना निश्चित रूप से अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक विकसित है। हठयोग प्राणों का उत्थान कर चेतना के नये आयामों को सामने लाता है व मानव मन को शक्तिशाली व प्रतिभावान बनाता है। प्राणायाम, धारणा, ध्यान के अभ्यास से सुप्त चेतना की जाग्रति होती है।

व्यक्तिव विकास–

हठयोग के विभिन्न अभ्यासों को सामान्य जीवन में अपनाकर व्यक्तित्व का बहुआयामी विकास किया जाना ही हठयोग का उद्देश्य है।

व्यक्तित्व विकास के अन्तर्गत शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति सम्मिलित है। मानवीय गुणों का विकास व्यक्तित्व विकास का ही द्योतक है।

आध्यात्मिक उन्नति–

किसी मनुष्य के पास ताकतवर शरीर, आश्चर्यजनक सृजनशक्ति, प्रखर बुद्धि और अत्यन्त संवेदनशील भावनात्मक पकड़ हो सकती है। फिर भी यह हो सकता है कि उसमें आध्यात्मिकता का लेशमात्र भी न हो। हठयोग का उद्देश्य आध्यात्मिक उत्थान है। यह शारीरिक, मानसिक रूप से सम्पन्न तो करता ही है परन्तु सर्वोच्च उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नति ही है। सम्पूर्ण हठयोग को हं और क्षं(ठं) का सन्तुलन कहा जाता है। यही सन्तुलन आध्यात्मिक विकास की सीढ़ी है।

1.5 हठयोग का महत्व–

अभी तक आपने जाना कि हठयोग क्या है और इसका मुख्य उद्देश्य क्या है अब आप हठयोग का महत्व जानेंगें।

हम सभी इस बात से सहमत हैं कि हमेशा से मानव सुख की खोज करता आया है। वह पढ़ता है, नौकरी करता है, परिवार बनाता है क्यों ?........ इसका जबाव है सुख के लिये। सुख ही वह motivation है वह driving factor है जो इन्सान को कुछ करने के लिये प्रेरित करता है।

आधुनिक युग में, चारों ओर हमने जो विश्व के ज्ञान और विश्लेषण का विषय बनाया है, वही विज्ञान है। भारत के प्राचीन ऋषि–मुनियों ने मनुष्य का और जगत का पूरा परिपेक्ष्य समझने के लिये योग को साधन चुना, मन को विज्ञानशाला बनाया, उन्होने स्वयम् पर प्रयोग किये एवं आन्तरिक व बाह्य प्रकृति के रहस्यों को प्रकट किया। ऋषियों ने जीवन के निष्कर्ष को जानने के लिये जिन विधाओं का प्रयोग किया उनमें योग की वे समस्त धाराऐं हैं जो ज्ञात व अज्ञात हैं। उन धाराओं में एक अति महत्वपूर्ण धारा है 'हठयोग'। हठयोग शरीर को साधकर मन को नियंत्रित करने की कला सिखाता है। यह प्राणों के माध्यम से शरीर व मन अर्थात् स्थूल व सूक्ष्म दोनों से जुड़ा है। प्राण दोनों के बीच की कड़ी है जिसको हठयोग के माध्यम से साधा जा सकता है। हठयोग शारीरिक, मानसिक और प्राणिक शक्तियों को परस्पर सन्तुलित करना सिखाता है। हठयोग अन्य योग साधनाओं की पृष्ठ भूमि तैयार करता है। हठयोग यौगिक चिकित्सा पक्ष के तीनों आयामों को उन्नत करता है।

यौगिक चिकित्सा के आयाम–

1. उपचारात्मक– रोग से पीडित व्यक्ति यौगिक अभ्यास द्वारा स्वास्थ्य प्रति करता है।
2. निरोधक– यह वह संदेह है कि 'रोग होने वाला है' और खतरे की घंटी से सजग होकर योगाभ्यास प्रारम्भ किया जाता है।
3. स्वास्थ्य वर्धक– कोई बीमारी न होने पर भी योगाभ्यास शारीरिक, मानसिक क्षमताओं को बढ़ाता है, उनमें वृद्धि करता है।

हठयोग तीनों आयामों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कोई भी प्रक्रिया या प्रणाली तब स्वीकार होती है जब साधारण आदमी द्वारा उस प्रक्रिया को अपनाकर दिन–प्रतिदिन के कार्यो में सुविधा देखता है व उन्हें वह उपयोगी समझता है। हठयोग को क्रियाऐं मानव चेतना को इस प्रकार से प्रभावित व उन्नत करता है कि वह साधारण व विशिष्ट कार्यो को इनके अभ्यास से आसानी से कर सकता है व उत्कृष्ट कर पाता है। हठयोग की खूबी यह है कि यह मानव की क्षमताओं को आध्यात्मिक प्रगति के साथ एकतान करता हुआ आगे बढ़ाता है और एक सुनिश्चित आकार गढ़ता है। आध्यत्मिक प्रगति के साथ व्यक्तित्व के समग्र विकास के आयामों का विकास होता है। आयुर्वेद में कहा गया है–

''धर्मार्थकाममोक्षाणां आरोग्यं मूलमुन्तमम्।''

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरूषार्थों को सिद्ध करने के लिये सर्वतोभावेन शरीर निरोगी होना नितान्त आवश्यक है। रोगी शरीर के द्वारा कोई भी पुरूषार्थ सिद्ध नही होता है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है और एक स्वस्थ मानव ही स्वस्थ परिवार, समाज और राष्ट का निर्माण कर सकने में सक्षम हो सकता है। शरीर नियन्त्रण से मन का नियंत्रण हठयोग से ही सम्भव है।

अभ्यास प्रश्न

सही / गलत

1. हठयोग हठपूर्वक किया जाने वाला योग है।
2. हम् से तात्पर्य दक्षिण स्वर व ठम् से तात्पर्य वाम स्वर से है।
3. शरीर पन्च प्राणों का निवास स्थान है।
4. स्थूल शरीर सूक्ष्म से सम्बन्धित नहीं है।
5. हठयोग राजयोग की सीढ़ी है।
6. मानव उत्कर्ष हठयोग का मूल उद्देश्य है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति–

1. योग से तात्पर्य .... से है।
2. गूढ़ अर्थो में संयोग का .... ही योग है।
3. हठयोग व राजयोग अलग–अलग पक्ष नहीं वरन् एक दूसरे के लिये ही है यह कथन .... ने कहा है।
4. हठयोग में वर्णित पंच प्राण .... हैं।
5. हठयोग .... को साधने का विज्ञान है।

6. यौगिक चिकित्सा के आयाम .... हैं।

7. धर्मार्थ .... आरोग्यं मूलमुन्तमम्।

1.6 सारांश

शरीर के माध्यम से प्राण पर नियंत्रण करके संतुलित इच्छा की ओर ले जाना हठयोग का मूल उद्देश्य है। हं और ठं का योग अर्थात् दाहिने और बायें स्वर को समस्वर कर लेना, शिव और शक्ति का मिलन, नाड़ी संतुलन के पश्चात् सुषुम्ना जागरण ही हठयोग है। इस अवस्था में इच्छा सकारात्मक, रचनात्मक, तथा आत्मोन्नति का कारण बनती है। इस प्रकार हठयोग सवर्तोमुखी उन्नति की प्रक्रिया है।

1.7 शब्दावली–

किंचित – तनिक भी, थोड़ा भी
समाधि – कैवल्य, मोक्ष, निर्वाण, बोधत्व आत्मसाक्षात्कार– स्वयं को जान लेना
गूढ़– छिपा हुआ
श्रुति – गुरू द्वारा सुने गये ज्ञान पर आधारित ग्रन्थ
स्मृति – स्मृति पर आधारित ग्रन्थ
सुषुम्ना – नाड़ी विशेष कोश– आवरण
वृत्ति – जो गोल–गोल घुमाए अर्थात् जीवन मरण के चक्र में फसानें वाली इच्छा
कायसाधन – शरीर को साधने वाली विधा
नाथ सम्प्रदाय – 10 वीं 11 वीं सदी में प्रचलित सम्प्रदाय विशेष जिसे आदि नाथ भगवान शिव ने स्थापित किया
बोधि – निर्वाण, मोक्ष, समाधि
कास – खांसी

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. गलत
2. सही
3. सही
4. गलत
5. सही
6. सही

रिक्त स्थानों की पूर्ति–

1. समाधि
2. वियोग
3. स्वात्माराम जी
4. उदान, प्राण, समान, अपान, व्यान
5. प्राण
6. उपचारात्मन, निरोधक एवं स्वास्थ्यवर्धक
7. काममोक्षणं

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ह0 प्रदीपिका– स्वात्माराम कृत कैवल्यधाम, लोनावला
2. घेरण्ड संहिता– स्वामी निरंजनानंद बिहार योग भारती, मुंगेर, बिहार
3. योग विज्ञान–स्वामी विज्ञागनेद सरस्वती, योग निकेतन टस्ट मुनि की रेती, ऋषिकेश
4. योग का आधार और उसने प्रयोग– डॉ0एच0आर0 नागेन्द्र, कैवल्यधाम, लोनावाला

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. हठयोग से आप क्या समझते हैं? विभिन्न ग्रन्थों एवं विद्वानों के विचार इस विद्या के सम्बन्ध में क्या हैं समझाइये।
2. हठयोग के उद्देश्यों के विषय में विस्तार पूर्वक समझाइये।
3. वर्तमान में हठयोग की प्रासंगिकता पर विचार कीजिये, व इसे अपने शब्दों में लिखिये।

इकाई – 2 हठयोग का उदभव एवं विकास क्रम

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2. उद्देश्य

2.3 हठयोग का उद्‌भव

2.3.1 योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2.3.2 योग सम्प्रदाय अथवा प्रकार

2.3.3 हठयोग का उद्‌भव

2.4 हठयोग का विकास क्रम

2.5 सारांश

2.6 कठिन शब्दावली

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 सहायक ग्रन्थ सूची

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना—

पूर्व की इकाई में आपने जाना कि हठयोग प्राणों को साधने की अचूक प्रक्रिया है। इसके द्वारा पिंगला और इड़ा नाड़ियों का समन्वय स्थापित होता है। हठयोग न केवल शरीर पर आधारित साधना है बल्कि यह राजयोग तक पहुँचने की सीढ़ी है। यह शरीर, मन, प्राण और भावनाओं को साधने की प्रक्रिया है। शरीर में विद्यमान पाँचों प्राणों का समन्वय ही हठयोग है। आने जाना कि सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर के माध्यम से प्रभावित किया जा सकता है और चित्त वृत्तियों का निरोध सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करके किया जा सकता है। आगे आप हठयोग के उद्भव एवं विकास क्रम, अर्थात कौन—कौन से सम्प्रदाय आते हैं, का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य—

इस इकाई से आप—

- हठयोग के उत्पत्ति काल की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- हठयोग के विकास क्रम के अन्तर्गत आने वाले सम्प्रदायों के विषय में जानेंगे।
- नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तन एवं सम्प्रदाय विषयत्न जानकारी प्राप्त करेंगे।
- नाथ सम्प्रदाय के विषय में प्रचलित कथाओं के विषय में जानेंगे।
- हठयोग में वर्णित योग साधनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर पाएँगे।
-

2.3 हठयोग का उद्भव—

हठयोग के उद्भव से पूर्व पाठक के मन में सहज ही योग के उद्भव की बात आ जाती है। हठयोग योग की ही एक महत्वपूर्ण विधा है। यहाँ हठयोग के उद्भव और विकासक्रम से पूर्व योग के उद्भव और विकासक्रम के विषय में जान लेने पर हठयोग के विषय में जानना आसान हो जायेगा।

योग का आरम्भ कब और किसके द्वारा हुआ यह बता पाना अत्यन्त कठिन है। योग के विषय में आगे आप विभिन्न जानकारियां प्राप्त करेंगे।

2.3.1 योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—

ऋग्वेद के मंत्रों में यह कहा गया है कि ‘‘कौन जानता है और कौन यह बता सकता है कि जगत कहाँ से और कैसे उत्पन्न हुआ और कहाँ जा रहा है’’ ;)ग्वेद, नासदीय

सूक्त, मन्त्र6द्ध। विश्व के प्राचीनतम साहित्य वेदों में सर्वप्रथम योग का संकेत मिलता है। वेदों का विषय ब्रहम ज्ञान रहा है। वेदों में प्रणव शब्द ओडम् ;ऊँद्ध का विवेचन कई बार मिलता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि योग–विद्या का प्रारम्भ काल वैदिक काल से ही आरम्भ हुआ है। परन्तु यह प्रश्न भी सम्मुख आता है कि वेद के)षियों को यह ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ होगा। तो यह कहना अधिक ठीक होगा कि योग का आरम्भ सृष्टि के आरम्भ से ही हुआ है। वेद को अअपोरूषेय भी कहा जाता है एवं)षि को मंत्र दृष्य कहा जाता है। इससे सि(होता है कि योग का आरम्भ वैदिक काल से भी पूर्व में हो गया था।

हिरण्यगर्भ को योग के आदिवक्ता कहा जाता है।

यहां आपने योग के विषय में, उसके ऐतिहासिक प्रमाण के विषय में अल्प जानकारी अर्जित की। यहां उद्देश्य हठयोग के विषय में विस्तृत जानकारी देने से है अतः अब आगे आप योग के विभिन्न सम्प्रदायों की सूक्ष्म जानकारी प्राप्त करेंगे।

2.3.2 योग सम्प्रदाय अथवा प्रकार–

विभिन्न योग ग्रन्थों में भिन्न–भिन्न प्रकार की योग साधनाओं का वर्णन मिलता है। साधन भेद से योग के विभिन्न प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है यथा–

1. ज्ञान योग
2. कुण्डलिनी योग
3. अष्टांग योग
4. भक्ति योग
5. मंत्र योग
6. नाद योग
7. राजयोग
8. कर्मयोग एवं
9. हठयोग आदि

ज्ञान योग विशुद्ध ज्ञान के माध्यम से परमतत्व तक पहुँचने का मार्ग है। मूलाधार में सुप्त सोई हुई कुण्डलिनी को जगाने का मार्ग कुण्डलिनी योग है। कुण्डलिनी योग में शक्ति का शिव से मिलन ही योग कहा गया है। अष्टांग योग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के मार्ग पर चलकर परमात्म तत्व को जानने का मार्ग है। भक्ति योग भक्ति के द्वारा ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त कराता है एवं मंत्र के द्वारा आत्म तत्व तक मंत्र योग पहुंचाता है। ''नाद ब्रहम्'' के सि(ान्त पर कार्य करने वाली

योग की यह विधा स्वर और नाद के द्वारा योग की प्राप्ति कराती है। राजयोग मन का विज्ञान है ध्यान, समाधि के द्वारा आत्म साक्षात्कार राजयोग से ही सम्भव है। कर्म जवा योग बन जायें तो ही कर्मयोग कहलाते है। बिना फल की इच्छा के कर्तव्य पालन करना ही कर्मयोग है। एवं हठयोग प्राणों का विज्ञान है। प्राणों पर नियन्त्रण प्राप्त करना ही हठयोग की साधना है।

2.3.3 हठयोग–का उद्भव–

हठयोग प्राणों को साधने की कला है। प्राणों को साधकर मन पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सकता है। हठयोग शरीर पर आधारित योग है। अन्नमय एवं प्राणमय कोष, जिसे देह और प्राण कहा जाता है इन्हीं की शुि(हठयोग का लक्ष्य है। हठयोग के सम्बन्ध में पिछली इकाई में आपने विस्तारपूर्वक चर्चा पढ़ी है। हठयोग शब्द से कुछ लोग इसके स्थूल अर्थ का चिन्तन करते हैं परन्तु यह मात्र शरीर तक ही सीमित नहीं है और न ही जबरदस्ती करने वाला योग है। यह विधा आध्यात्मिक चिन्तन से ओत–प्रोत विधा है।

श्रीआदिनाथाय नमोस्तु तस्मै येनोपदिष्टा हठयोगविद्या।
विभ्राजते प्रोन्नतराजयोगमारोढुमिच्छोरधिरोहिणीव।। (हठप्रदीपिका 1/1)

अर्थात्, उन सर्वशक्तिमान् आदिनाथ को नमस्कार है जिन्होंने हठयोग विद्या की शिक्षा दी, जो राजयोग के उच्चतम शिखर पर चढ़ने की इच्छा रखने वाले अभ्यासियों के लिये सीढ़ी के समान है।

उपरोक्त श्लोक के आधार पर कहा जा सकता है भगवान शिव जिन्हें यहां पर आदिनाथ कहा गया है, ने हठयोग की शिक्षा दी। श्रीमत् स्वात्माराम जी ने हठप्रदीपिका के माध्यम से हठयोग के आदिवक्ता परमशिव को माना है।

हठयोग की विषय वस्तु पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि हठयोग योग के ही विशाल सागर से निकली हुई शात्वा है जिसे नाथ सम्प्रदाय के योगियों ने पुष्पित पल्लवित किया। हठयोग का उद्भव तंत्र योग से ही हुआ है। तंत्र शास्त्र में बिखरे हुये योग के ज्ञान को विशिष्ट शात्वा के रूप में नाथ योगियों ने अलग पहचान दी। नाथ योग परम्परा पर दृष्टिपात करने पर हठयोग के उद्भव व विकासक्रम का ज्ञान ठीक–ठीक ज्ञात हो सकता है आगे आप नाथ योग के उद्गम व विकासक्रम को हठयोग के सन्दर्भ में जानेंगे।

2.4 हठयोग का विकास क्रम–

संसार में जितने भी धर्म–सम्प्रदाय हैं, उनका कोई न कोई संस्थापक रहा है। बिना संस्थापक के कोई भी धर्म अथवा सम्प्रदाय अथवा धारणा उत्पन्न नहीं हो सकती और न ही टिक सकती है। किसी भी धारणा के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है और उसका कोई निश्चित समय व काल भी होता है। भारतीय योग परम्परा के उन्नायक के संबंध में अनेक धारणाएँ हैं। यह एक सनातन परम्परा कही जाती है क्योंकि इसके आदि और अंत के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। भारतीय संस्कृति की यह विलक्षण विशेषता है कि यहाँ अनेकों धर्म–सम्प्रदायों का उदय हुआ जिनमें से प्रत्येक सम्प्रदाय ने अलग–अलग मार्गो में एक मार्ग हठयोग का मार्ग है।

हठयोग के अर्थ, परिभाषा, महत्व व उद्देश्य के संबंध में आपने पिछले अध्याय में विस्तारपूर्वक पढ़ा है। हठयोग की उत्पत्ति के संबंध में यह बात सर्वमान्य है कि स्वयं आदिनाथ भगवान् शिव के द्वारा यह कही गई। हठयोगियों के अनुसार भगवान् शिव ने जो कि आदिनाथ भी कहे जाते हैं, ने माँ पार्वती को योग का उपदेश दिया। यही कारण है कि अधिकांश हठयोग के ग्रन्थ शिव–पार्वती संवाद के रूप में मिलते हैं।

योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करने से इसके आदि और अंत का कुछ पता नहीं चल पाता। हम ऐसा मान सकते हैं कि योग सृष्टि के आरम्भ से ही विद्यमान रहा है। जैसे–जैसे मानव सभ्यता पुष्पित पल्लवित हुई, योग का ज्ञान भी पुष्पित–पल्लवित होता गया। स्वामी मुक्तिबोधानंद की पुस्तक–हठयोग प्रदीपिका के अनुसार, सिन्धु घाटी सभ्यता के खुदाई से प्राप्त भिन्ती चित्रों में योगासन करते हुये देवी–देवताओं की मुद्राऐं इस बात की ओर संकेत करते हैं कि सिन्धुघाटी सभ्यता से पूर्व भी योग का प्रचार–प्रसार रहा होगा। किसी भी सभ्यता में जो धारणा प्रचारित–प्रसारित होती है तो उसका कोई पूर्व कारण अवश्य होता है। अतः हम कह सकते हैं कि मानव सभ्यता की ये सर्वप्रथम ज्ञात सभ्यताऐं जब योग का प्रचार करती दिखाई देती हैं तो निश्चित ही उससे पूर्व भी योग की जानकारी रही होगी।

प्राचीन ग्रन्थों एवं साहित्य पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि इस संबंध में पर्याप्त मतभेद हैं। परन्तु फिर भी यह एक मत है कि भगवान् शिव योग के गुरू और आदिवक्ता हुए। प्राचीन काल में भगवान् शिव को आराध्य देव मानकर अनेकों सम्प्रदायों, पंथों एवं मतों का उदय हुआ जिन्होंने योग के ज्ञान को भिन्न–भिन्न प्रकारों से प्रचारित व प्रसारित किया। प्रत्येक पंथ और सम्प्रदाय के साधकों ने सर्वप्रथम स्वयं समाधि में जाकर ज्ञान प्राप्त किया एवं लोक कल्याण की दृष्टि से इस ज्ञान को अपने–अपने तरीके से प्रचारित–प्रसारित किया। इन्हीं सम्प्रदायों में से एक नाथ सम्प्रदाय हुआ।

नाथ सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव योग के उद्धार के लिए हुआ। नाथ सम्प्रदाय के उद्भव के पूर्व बौद्ध सम्प्रदाय का प्रचार–प्रसार पूर्वी देशों चीन, जापान एवं दक्षिण में श्री लंका में जोरों पर था। अंतिम गुप्त राजाओं के समय में, जो कि सन् 750 के आसपास का समय माना जा सकता है, बिहार में पाल वंशीय राजाओं के शासनकाल का समय था। पाल राजा बौद्ध थे और उन्होंने इसी समय बौद्ध विश्वविद्यालय विक्रमशिला की स्थापना की। विक्रमशिला में तंत्र संबंधी ग्रन्थों का अध्ययन–अध्यापन होता था। वाम मार्गीय तांत्रिक उपासना भी इन दिनों बहुत प्रचलित हो चुकी थी। परन्तु वाम मार्गीय गूढ़ साधना का रहस्य समझकर उसका आचार करना सहज काम नहीं था। सामान्य बु(जीवियों के लिए यह एक दुष्कर कार्य था। जिसके कारण अल्पज्ञ लोगों में दुराचार, व्यभिचार जैसे दुष्कर्म फैलने लगे। साधारण बु(वाला साधक गूढ़ रहस्यों को न समझकर भटक गया। तंत्र के ग्रंथों में यह बात बहुत स्पष्अ शब्दों में मिलती है कि वाम मार्ग में आने से पूर्व योग मार्ग का अनुसरण कर निम्न वृत्तियों पर नियंत्रण स्थापित करना एक अनिवार्य शर्त है। परन्तु बौ(धर्म के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह पता चलता है कि इस शर्त पर किसी का भी ध्यान नहीं गया।

भगवान् बुद्ध के शरीर त्यागने के पश्चात् यह उच्च कोटि का दर्शन कई छोटे–छोटे समूहों में बँट गया और उनकी धारणाएँ भी उसी अनुरूप अलग–अलग हो गयीं। इतिहास गवाह है कि कोई धर्म तब नष्ट हो जाता है जब वह कई शाखाओं–उपशाखाओं में बँटकर

अपने–अपने अनुसार व्याख्या व आचार करने लगता है। यही परिनीति बौद्ध दर्शन की भी हुयी।

नाथ सम्प्रदाय के उद्भव के सम्बन्ध में डा0 कल्याणी मलिक की यह बात ध्यान देने योग्य है कि ''नाथ सम्प्रदाय की उत्पत्ति उस समय हुई जिस समय बौद्ध धर्म का पतन तथा शैव धर्म का उत्कर्ष ऊँचाई पर था। यह काल लगभग 7 वीं शताब्दी माना जाता है। आगे चलकर इसी शैव सम्प्रदाय की पाँच सम्प्रदाय की पाँच शाखाएँ हुयीं जो कि कारूणिक, कापालिक, पाशुपत, माहेश्वर एवं लकुलीश के नाम से जाने जाते हैं। सभी शाखाओं में शिव को आदि संस्थापक माना गया है तथा सभी शाखाओं के योगियों को सिद्ध कहा गया है। इन्हीं सिद्धों की परम्परा में नाथ सम्प्रदाय का उद्भव हुआ।

विभिन्न शास्त्रों में वर्णित चौरासी सिद्धों की नामावली

नाथ सिद्ध		सहजयानी सिद्ध	
1.	मीननाथ	1.	लूहिया
2.	गोरक्षनाथ	2.	लीलापा
3.	चौरंगीनाथ	3.	विरूपा
4.	चामरीनाथ	4.	डोम्भीपा
5.	तंतिपा	5.	शबरीपा
6.	हालिपा	6.	सरहपा
7.	केदारिपा	7.	कंकालीपा
8.	धोंगपा	8.	मीनपा
9.	दारिपा	9.	गोररक्षपा
10.	विरूपा	10.	चौरंगीपा
11.	कपाली	11.	वीणापा
12.	कमारी	12.	शान्तिपा
13.	कान्ह	13.	तन्तिपा
14.	कनखल	14.	चमरिपा
15.	मेखल	15.	खड्गपा
16.	उन्मन	16.	नागार्जुन
17.	काण्उलि	17.	कराहपा
18.	धोबी	18.	कर्णरिपा (आर्यदेव)
19.	जालंधर	19.	थगनपा
20.	तोंगी	20.	नारोपा
21.	मवह	21.	शालिपा (शीलपा)
22.	नागर्जुन	22.	तिलोपा
23.	दौली	23.	छत्रपा
24.	भिषाल	24.	भद्रपा
25.	अचिति	25.	दोखधिपा (द्विखंडिपा)
26.	चम्पक	26.	अजागिपा
27.	ढेण्डस	27.	कालपा

28. भुम्बरी
29. बाकलि
30. तुजी
31. चर्पटी
32. भादे
33. चांदन
34. कामरी
35. करवत
36. धर्मपापतंग
37. भद्र
38. पातलिभद्र
39. पलिहिह
40. भानु
41. मीन
42. निर्दय
43. सवर
44. सांति
45. भर्तृहरि
46. भीषण
47. भटी
48. गगनपा
49. गमार
50. मेनुरा
51. कुमारी
52. जीवन
53. अधोसाधव
54. गिरिवर
55. सियारी
56. नागवालि
57. विभवत्
58. सारंग
59. विविकिधज
60. मगरधज
61. अचित
62. विचित
63. नेचक
64. चाटल
65. नाचन
66. भीलो
67. पाहिल

28. धोम्भिपा
29. कंकणपा
30. कमरिया (कंबलपा)
31. डेंगिपा
32. भदेपा
33. तंधेपा (तंतिपा)
34. कुकुरिया
35. कुचिया (कुसूलिपा)
36. धर्मपा
37. महीपा(महिलपा)
38. अचिन्तिपा
39. भलहपा (भवपा)
40. नलिपा
41. भूसुकपा
42. इन्द्रभूति
43. मेकोपा
44. कुड़लिपा (कुद्दलिपा)
45. कमरिपा (कम्मरिपा)
46. जालंधरपा (जालंधारक)
47. राहलपा
48. धर्मरिया (धर्मरि)
49. धोकरिपा
50. मेदनीपा (हालीपा)
51. पंकजा
52. घंटा (बज्रघंटा)
53. जोपीगा (अजोजिपा)
54. चेलुकपा
55. गुंडरिया (गोरूरपा)
56. लुपिकपा
57. निर्गुणपा
58. जयाननत
59. चर्पटापा (पचरीपा)
60. चम्पकपा
61. भिखनपा
62. भलिपा
63. कुभरिया
64. चवरि (जवरि) अजपालिया
65. मणिभद्रा (योगिनी)
66. मेखलापा (योगिनी)
67. कनखलाप (योगिनी)

68.	पासल	68.	कलकलपा
69.	कमल–कंगारि	69.	कन्ताली (कन्थाली) पा
70.	चिपिल	70.	धहुलि (रि) पा (दबड़िया)
71.	गोविंद	71.	उधनि (उधलि) पा
72.	भीम	72.	कपाल (कमल) पा
73.	भैरव	73.	किलपा
74.	भद्र	74.	सागरपा
75.	भमरी	75.	सव्रभक्षपा
76.	मुयकुटी	76.	नागबोधिया
77.	दारिकपा		
78.	पुतुलिपा		
79.	पनहपा		
80.	कोकलिया		
81.	अनंगपा		
82.	लक्ष्मीकरा		
83.	समुदपा		
84.	भलि (ब्यालि) पा		

नाथ सम्प्रदाय की परम्परा का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। इस सम्प्रदाय के उद्‌गम एवं विकास का कोई एक स्त्रोत निश्चित करना अत्यन्त कठिन कार्य है। प्राचीन ग्रंथों एवं नाथ साहित्यों का अवलोकन करने से अनेक नाथ सिद्धों का परिचय प्राप्त होता है। श्री राजेशी दीक्षित की कृति नवनाथ चरित्र के अनुसार उपर्युक्त वर्णित नव नाथ ही नाथ सम्प्रदाया के महान् प्रतिनिधि हैं। परन्तु यह बात निर्विवाद रूप से कह पाना बहुत कठिन है कि इन नव नाथों के पहले भी कोई नाथ सिद्ध हुए। इस सन्दर्भ में विद्वानों में पर्याप्त मत–भेद प्रचलित है। वस्तुततः नाथ सम्प्रदाय का ऐतिहासिक विवेचन करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। नाथ सम्प्रदाय के साथ नाथ शब्द के जुड़े होने से यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध की जा सकती है कि सबसे पहले नाथ तो स्वयं भगवान् शंकर ही हैं। जिन्हें आदिनाथ कहा जाता है। भगवान् शिव को अपना अराध्य देव मानकर ही नाथ सम्प्रदया का प्रादुर्भाव हुआ। ये नाथ भगवान शिव के मानस पुत्र थे या इन्होंने किसी मानवी स्त्रियों के गर्भ से जन्म लिया, कुछ कहा नहीं जा सकता। गोरखनाथ जी के ग्रन्थों में उनके पा अपने अनेक गुरूओं का नामोल्लेख मिलता है जिनमें मत्स्येन्द्रनाथ या मीननाथ का नाम प्रमुख है।

नाथ शब्द का वास्तविक स्वरूप

नाथ का शाब्दिक अर्थ– नाथ शब्द की उत्पत्ति नाथृ धातु में अ प्रत्यय लगाने से होती है। सिद्ध सिद्धांत पद्धति में नाथृ धातु मुख्यता चार अर्थों में प्रयुक्त होता है– याक, उपतापक, ईश्वर और आशीर्वाददाता। नाथ शब्द का अर्थ गोरक्षसिद्धांत संग्रह के पृष्ठ 26 के अनुसार–

नकारो नाद रूपं थकारः स्थाप्यते सदा।
भुवनत्रयमेवैकः श्री गोरक्ष नामोऽस्तुते।।

(गो.सि.सं.पृ.26)

अर्थात्–ना शब्द का अर्थ है अनादि रूप और धा का अर्थ है भुवनत्रय का स्थापित होना। अतः नाथ का अर्थ है वह अनादि धर्म जो भुवनात्रय की स्थिति का कारण हे। इसी प्रकार गोरक्ष सिद्धांत संग्रह के पृ. 26 शक्ति संगम तंत्र में ना शब्द का अर्थ नाथ ब्रह्म भी है।

श्री मोक्षदानक्षत्वान्नाथ (द) ब्रह्मानुबोधनात्।
स्थागिताज्ञानविभवाच्दीनाथ इति गीयते।।

(गोरक्ष सिद्धांत संग्रह)

अर्थात्– जो मोक्ष का दान देने में दक्ष है और उसकाा ज्ञान कराता है। एवं थ का अर्थ है अज्ञान के सामर्थ्य को स्थापित करने वाला । चूंकि नाथ के आश्रयगण से इस नाथ ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और अज्ञान की माया अवरूद्ध होती है। इसलिये नाथ शब्द का व्यवहार किया जाता है।

नाथ शब्द का अर्थ शिव जी का प्रतीक है परन्तु यह अकेला नहीं है, अर्थात यह शक्ति युक्त शब्द है। ना शब्द पुरूषवाची है और थ का अर्थ है शक्ति। ना पुराण पुरूष शिव है और उनकी अन्तरंग शक्ति का नाम ध है तंत्र शास्त्र में कहा गया है–

अकारः शिव इत्युक्तः थकारः शक्तिर्उज्यते। (तंत्रशास्त्र)

इस प्रकार शिव–शक्ति अभेद, महेश्वर भी स्वयं शक्ति से रहित हो कुछ नहीं कर सकते। ऐसा श्रीनाथ जी कहते हैं–

शिवोऽपि शक्ति रहितः कर्तुं शक्तों न किंचना।। (सिद्धसिद्धांत पद्धति पृ.15)

यहां शिव को शक्ति वाचक माना गया है इसके अभाव में शिव भी शव के समान है। इसलिए शिव से उसकी शक्ति कभी अलग नहीं हो सकती । इसी कारण श्री गोरक्षनाथ जी ने मंगल श्लोक में शक्तियुक्त ऐसा विशेषण दिया है। इस प्रकार नाथ शिव और शक्ति के सामरस्य का द्योतक हैं। देह में शिव ब्रह्मरन्ध्र में निवास करते हैं तथा मूलाधार में शक्ति निवास करती है जो साधक के द्वारा शिव और शक्ति का मेल कराने में समर्थ होते हैं, यथार्थ में वे ही सच्चे नाथ कहलाते हैं। अतः नाथ सम्प्रदाय में योग साधना शिव और शक्ति के संयोग की अंतिम परिणती है।

नाथ सम्प्रदाय के मूलभूत सिद्धांत–

भारतीय धर्म और दर्शन मनुष्य की भौतिक उपब्धियों से लेकर अध्यात्मिक सिद्धि तक जीवन के प्रत्येक स्तर पर कल्याण कारी रहे हैं। योग विद्या धर्म और दर्शन दोनों को चरितार्थ करता है क्योंकि यह व्यक्ति के जीवन की हर परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने वाला धर्म तथा परम्परागत आध्यात्मिक विचार–प्रवाह को अपने अनुकूल बनाने वाला धर्म तथा परम्परागत आध्यात्मिक विचार–प्रवाह को मथकर उसके भी तर से सर्वयुगीन तत्व को प्रकट करने वाला व्यवहारिक दर्शन है।

योग सम्मत जीवन पद्धति प्राचीन काल से ही सदेश में विद्यमान थी। शास्त्रों के अनुसार योग– दर्शन के प्रवर्तक महर्षि पतंजलि माने जाते हैं और उन्होंने यह योग विद्या हिरण्यगर्भ से प्राप्त कर शास्त्र रूप में ग्रंथबद्ध की। श्री अक्षय कुमार बनर्जी के अनुसार

गोरखनाथ ने पातंजल योग दर्शन को युग–सम्मत बनाकर एक सशक्त एवं जीवंत मत के रूप में प्रतिष्ठित किया। ऐसी मानयता है कि गोरखनाथ स्वयं शिव का अवतार थे।

इसी कारण भक्त उन्हें ओम् शिवगोरक्ष कहकर भी सम्बोधित करते हैं। गोरखपंथ की बाहर शाखाओं में छः स्वयं भगवान् शिव द्वारा और छः गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित हैं। इसका तात्पर्य यह है कि भगवान् शिव को अपना आराध्य देव मानकर कुछ योगी सम्प्रदाय पहले से विद्यमान थे। गोरखनाथ के व्यायापक प्रभाव को स्वीकार कर ये सम्प्रदाय उनके द्वारा प्रवर्तित नवीन जीवंत सम्प्रदाय के अंग बन गये। गुरू गोरखनाथ ने जिस योग–मार्ग का संघटन किया था उसे नाथयोग कहते हैं और नाथयोगियों के अनुसार योग के उत्पत्तिकर्ता स्वयं आदिनाथ स्वयं भगवान् शंकर है। नाथ–योग को सिद्धमत एवं अवधूत मत भी कहते हैं।

नाथ सम्प्रदाय के मूलभूत सिद्धांतों ने समस्त तार्किक विश्लेषण से ऊपर उठकर समतत्व की प्रतिष्ठा की। इस समतत्व को ही परमतत्व, परासंवित , परब्रह्म, परमपद, परमशून्य, परशिव आदि नामों से अभिहित किया जाता है। यह समतत्व तर्क–वितर्क का विषय नहीं है। यह व्यक्ति के बौद्धिक एवं मानसिक उत्कर्ष की चरम स्थिति है जो कि सामरस्य दशा में ही अनुभूत हो सकती है। नाथ सम्प्रदय के अनुसार व्यष्टिपिण्ड (शरीर) ब्रह्माण्ड का ही लघु संस्करण है। मनुष्य के किस अंग में ब्रह्माण का कौन सा अंग है इसका अनुभव करने के लिए षडयंत्र योग साधना का विधान बताया गया है। और इस षड्ंग योग साधना के लिए नाथ सम्प्रदाय में शरीर को अत्यधिक महत्व दिया गया है, क्योंकि शरीर के माध्यम से ही योगी ध्यान एवं चिन्तन के द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड को अपने शरीर में अनुभव कहा उससे स्वयं का एकाकार कर सकता है। अतः पिण्ड (शरीर) एवं ब्रह्माण्ड की समरसता ही नाथ सम्प्रदाय का मूलभूत सिद्धान्त है। नाथ पंथी इस समरसता की सिद्धि के लिए गुरू की कृपा को अत्यन्त आवश्यक मानते है।

नाथ सम्प्रदाय में योग का तात्पर्य प्राण–अपान, रज एवं वीर्य, एवं चन्द्र तथा जीवात्मा एंव परमात्मा (शिव–शक्ति) के संयोग को योग कहा गया है। चन्द्र एवं सूर्य के संयोग का तात्पर्य अपान एवं प्राण का संयोग रूप हठयोग है। हठयोग की साधना का मुख्य लक्ष्य शक्ति रूप कुण्डलिनी को जागृत कर षट्चक्र भेदन द्वारा सहस्रार चक्र में में शिव के साथ योगी सामरस्थ स्थापित कर परमपद कैवल्य की प्राप्ति करता है।

षड्ंग योग साधना

नाथ सम्प्रदाय में मुख्य में षड्ंग योग साधना प्रचलित है। इस षड्ंग योग साधना में आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि ये छः अंग है। गोरक्ष शरत–7 में षड्ंग योग का उल्लेख इस प्रकार हुआ है –

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्य धारणा।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाड़गानि वदन्ति षट्ै।।

(गोरक्षशतक–7)

यद्यपि नाथ सम्प्रदाय में हठयोग की साख्ना प्रचलित है और इस हठयोग की साधना का उद्देश्य ''राजयोग'' की प्राप्ति नाथ सम्प्रदाय के साहित्य स्रोतों में से एक ''हठयोग प्रदीपिका'' में स्वात्माराम योगी ने यही बात इस प्रकार कही है।

श्री आदिनाथाय नमोस्तु तस्मै येनोपदिष्टा हठ विद्या।

विभ्राजते प्रोन्नत राजयोगामारोदुमिच्छोरधिरोहिणीव।।

(हठ प्रदीपिका–1:1)

तथापि नाथ साहित्यों में कहीं–कहीं योग के चार अंग, सात अंग, आठ अंग तथा पन्द्रह अंग तक माने गये हैं। नाथ सम्प्रदाय में षड्ंग योग साधना का विधान है तथा ''सिद्धसिद्धान्त पद्धति'' एवं ''दत्तात्रेय'' संहिता आदि ग्रंथों में यम–नियम का भी उल्लेख मिलता है, परन्तु यम–नियम को योगांग के रूप में संयुक्त न करके केवल षंड्ंग योग का ही निरूपण हुआ है। इसका संक्षिप्त विवेचन निम्न प्रकार है।

आसन– आसन नाथ योग–साधना का प्रथम अंग है। सि.सि.–2:34 में उल्लेख मिला है कि–

आसनमिति स्वरूवरूपे समानसन्नता। (सि.सि.पं.–2:34)

अर्थात् सदा निज स्वरूप अर्थात चेतन आत्मा में स्थित हो जाने को आसन कहते हैं। गोरक्षशतक – 9 में भगवान शिवाजी ने 84 लाख आसनों का उल्लेख नाथ सम्प्रदाय की उत्पत्ति एवं विकास किया है उनमें भी चौरासी आसन ही मुख्य हैं –

चतुरशीश्शतिलक्षाणामेकैकं समुदाहतम्।

ततः शिवेन पीठानां षोडशोनं शतं कृतम।।

(गोरक्षशतक–9)

इन चौरासी आसनों में भी केवल दो आसन सिद्धासन व पद्मासन को ही प्रमुख माना गया है –

आसनेभ्यः समस्तेभ्यो द्वयमेतदुदाहृतम्।

एक सिद्धासनं तत्र द्वितायं कमलासनम्।।

(गोरक्षशतकं–10)

योग साधना की दृष्टि से उपर्युक्त दोनों आसनों का अत्यधिक महत्व है। आसनों के द्वारा साधक में दृढ़ता एवं शरीर अरोग्यता को प्राप्त होता है।

प्राणायाम नाथ योग साधना में प्राणायाम का विशेष महत्व है। नाथ सम्प्रदाय के अनुसार हमारे शरीर में 72000 नाड़ियां हैं जिनका उद्गम स्थल मूल कंद है। इनमें स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होने वाले प्राण को विशेष प्रयास पूर्वक संयम करना ही प्राणायाम है तथा प्राण संयम की चार विधियां बताई गई हैं रेचक, पूरक कुम्भक और संघटकरण अर्थात प्राण–अपान वायुओं का प्राणायाम के द्वारा मेल कराना। रेचक–प्राणवायु

को बाहर निकालना, पूरक–प्राण वायु को भरना और कुम्भक प्राणवायु को अन्दर रोकना व प्राण और अपान वायु को आपस में मिला देना। यही प्रकार के प्राणयाम का लक्षण है।

प्रत्याहार – प्रत्याहार को परिभाषित करते हुए सिद्धसिद्धांत पद्धति (2/36) में कहा गया है–

प्रत्याहारमिति चैतन्यचुतरङ्गाणां प्रत्याहारणं विकारग्रसन।

उत्पन्नविकारस्यापि निवृत्तिर्निर्भातीति प्रत्याहारलक्षणम्।।

(सि.सि.पं.–2:26)

अर्थात् – देहरूपी रथ के स्वामी चैतन्य आत्मा के (चछु, श्रोत, घ्राण, रसना आदि इन्द्रिय रूपी घोड़ों के) अपने–अपने विषयों से हटाकर आत्मा में लगाना ही प्रत्याहार कहलाता है।

धारणा – धारणा विषयक लक्षणों का उल्लेख सि.सि.प. में इस प्रकार किया गया है।

धारणेति सा बाह्याभ्यन्तर एकमेवनिजतत्वस्वरूपमेवान्तः करणेन साधयेद् यथा यद्यदुल्पद्यते तत्तन्निराकरो धारयेत् स्वात्मानं निर्वातदीपमिव संधारयेदिति धारणालणम्। (सि.सि.प. – 2:37)

अर्थात – शरीर से बाहर और भीतर सब जगह (भौतिक प्रपंच) तथा आन्तरिक ब्रह्माण्ड में एक ही निजतत्व रूप (परम शिव) व्याप्त है ऐसी मानसिक भावना करना धारणा है।

ध्यान – आगे ध्यान को बताते हुए हुए सि.सि.प. में कहा है –

अथ ध्यानमिति कश्चन परमाद्वैतस्य भावः स एवाव्मेति तथा यद्यत्स्फुरति तत्तत्स्वमेवेति भावयेत् सर्वभूतेषु समदृष्टिश्च इति ध्यानलक्षणम्।

(सि.सि.प.–2:38)

अर्थात–अद्वैतस्वरूप परमात्मा ही आत्मा है। सब जगह आत्मा रूप जानकार यह भावना करें कि जो वस्तु जैसी प्रतीत हो यह भी मेरा ही आत्मा है। ब्रह्मा से लेकर समस्त जीव जन्तु पर्यन्त सब प्राणियों में समदर्शी, आत्मदृष्टि, आत्मस्वरूप ही भावना ही ध्यान है।

समाधि – समाधि अवस्था का वर्णन करते हुए सि.सि.प. में उल्लेख किया है –

अथ समाधिलक्षणं सर्वतत्वानां समावस्था निरूद्यमत्वभ्नायाससिथतिमत्वमिति समाधिलक्षणम्। (सि.सि.प.–2:39)

अर्थात–सब पदार्थो में समान अवस्था अर्थात सबको आत्म स्वरूप से देखने और जिस अवस्था में अनायास ही अखण्ड आत्म स्वरूप की स्वाभाविक स्थिति हो यही समाधि है।

अभ्यास प्रश्न–

सही / गलत

(i) हठयोग प्राण पर आधारित योग है।

(ii) हठयोग राजयोग तक जाने का मार्ग है।

(iii) हठयोग के आदिवक्ता आदिनाथ अर्थात् भगवान शिव माने जाते हैं।

(iv) मत्स्येन्द्रनाथ गोरक्षनाथ के शिष्य थे।

(v) हठयोग का उदीयमान काल बौद्ध धर्म के बाद का है।

(vi) नाथ योग परम्परा हठयोग के उद्धार के लिये जन्मी।

रिक्त स्थानों की पूर्ति–

(i) नाथ सम्प्रदाय के योगाश्रम .... स्थानों पर अधिक मात्रा में हैं।

(ii) हठयोग का प्रसिद्ध ग्रन्थ .... स्वात्माराम जी द्वारा रचित है।

(iii) नाथ परम्परा में .... सिद्धों की परम्परा प्रसिद्ध है। एवं .... नाथ प्रसिद्ध हैं।

2.5 सारांश–

आपने जाना कि हठयोग का उद्‌भव काल प्रारम्भ से ही रहा है। हठयोग की विषय वस्तु पारम्परिक योग से ही ली गई है। अतः इसका आरम्भ योग के आरम्भ से ही हो गया था। हठयोग की विषय वस्तु को योग और तंत्र से नाथ परम्परा के अनुयायियों ने अलग किया एवं इसे एक अलग योग का नाम दिया गया। स्वात्माराम जी कृत हठप्रदीपिका में स्पष्ट रूप से आदिनाथ भगवान शिव को इसका आदिवक्ता कहा गया है। हठयोग परम्परा के फलस्वरूप 84 सिद्धों के पश्चात् सौ नाथों की परम्परा ने हठयोग की परम्परा को आगे बढ़ाया। इनमें आदिनाथ के पश्चात् मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, गोपीचंद आदि प्रसिद्ध नाथ हुये। हठयोग का उद्‌गम व विकासक्रम का स्रोत निश्चित कर पाना कठिन है। यही कहा जा सकता है कि हठयोग का वर्तमान स्वरूप अनेक सम्प्रदाय एवं पन्थों व साधनाओं का मिश्रण है।

2.6 शब्दावली –

1. पांच प्राण –– हठयोग ग्रन्थों में 5 प्राणों की चर्चा है जो शरीर के विभिन्न क्रियाओं के लिए उत्तरदायी होते हैं। ये प्राण, अपान, समान, त्याग ओर उदान प्राण है।

2. कुण्डलिनी –– मूलधार चक्र में स्थित चेतना

2.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

सही/गलत

(i) सही (ii) सही (iii) सही (iv) गलत

(v) सही (vi) सही

रिक्त स्थानों की पूर्ति

(i) नेपाल और गोरखपुर (ii) हठ प्रदीपिका (iii) 84, 9

2.8सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम, डा. राजकुमारी पाण्डेय (2008), राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
2. उपनिषदों में योग विज्ञान, आचार्य पूर्णचन्द्र पंत (2008), प्रिटपाइॅण्ट, आगरा
3. नाथ सम्प्रदाय योग का स्वरूप, डॉ. नरेश कुमार, घास, प्रो. गणेश शंकर सत्यम पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. हठयोग के उद्भव व विकास क्रम पर प्रकाश डालिये।
2. नाथ योग परम्परा पर प्रकाश डालिये।

इकाई–3 हठाभ्यास हेतु उचित समय, ऋतु काल एवं आहार–विहार

इकाई का संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 उचित स्थान

3.4 ऋतु काल

3.4.1 योगाभ्यास के लिये उचित समय

3.4.2 योगाभ्यास के लिये अनुचित समय

3.4 आहार–विहार

3.5.1 मिताहार का महत्व

3.5.2 मिताहार का वर्गीकरण

(1) मात्रा के दृष्टिकोण से

(2) गुणवत्ता के दृष्टिकोण से

(3) मनःस्थिति के दृष्टिकोण से

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पूर्व में आपने हठयोग का अर्थ, परिभाषा, हठयोग का उद्देश्य, महत्व, हठयोग का उद्भव व विकास क्रम के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। हठयोग वास्तव में पुरातन विद्या व विज्ञान का अतुल भण्डार है। यह जहाँ एक ओर शरीर को साधती है, वहीं यह प्राण पर कार्य कर मन को साधती है, व शरीर, प्राण और मन को आपस में जोडती है।

इस इकाई में आप हठाभ्यास हेतु उचित स्थान, आहार– विहार तथा ऋतु काल के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगें व जानेंगे कि कौन–कौन से स्थान पर योग का अभ्यास किया जाना चाहिये । सही समय, ऋतु एवं आहार के विषय में जानकारी प्राप्त होने से कई कठिनाइयों से बचा जा सकता है व अभ्यास में हो रही असुविधाओं को कम करके साधना को प्रबल किया जा सकता है ।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई से आप–

- हठाभ्यास हेतु उचित स्थान के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे ।
- मठ क्या है व मठ का वातावरण कैसा होना चाहिये यह जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- मठ का निर्माण कहॉ नहीं होना चाहिये यह जानकारी प्राप्त करेंगे।
- योगाभ्यास हेतु ऋतु काल के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- योगाभ्यासी को कैसा आहार करना चाहिये यह जानेंगे।
- योगारंभ में निषिद्ध आहार–विहार के विषय में जानेंगे।

3.3 उचित स्थान

योगाभ्यास एक साधना है और साधना में सफल होने के लिये उचित स्थान की महत्ता का वर्णन कई ग्रन्थों में किया गया है। हठयोग क्योंकि शरीर के माध्यम से मन को साधने की प्रक्रिया है, अतः हठाभ्यास की साधना हेतु भी हठयौगिक ग्रन्थों जैसे गीता, घेरण्ड संहिता, हठ प्रदीपिका आदि में वर्णन मिलता है। योगाभ्यास में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिये उचित स्थान, वातावरण, रहन–सहन, विचारों आदि का ख्याल रखना नितांत आवश्यक है। शोरगुल से दूर, खुली हवा में, सुरम्य वातावरण में, प्रकृति की गोद में जो आनन्द एवं सुविधा होगी वह कहीं और ढूंढना मुश्किल है। उचित समय एवं वातावरण का भी योगाभ्यास में महत्वपूर्ण स्थान है। आहार का महत्व तो सर्वविदित है ही।

वह स्थान जहाँ साधक साधना प्रारम्भ करता है वह मठ कहलाता है। साधनात्मक जीवन में स्थान का बहुत महत्व है। पुरातन काल में मनीषि ऋषियों ने ऐसे स्थान का चुनाव किया जहाँ उच्च साधनात्मक भावनाओं, उच्च आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रभाव था। हिमालय क्षेत्र में स्थित मठ, मंदिर, साधना स्थल आदि इसी कारण अधिक हैं। हिमालय पर्वत श्रंखलाओं में सुदूर गुफाएं आज भी साधकों के लिये उचित स्थान हैं। इन गुफाओं में उच्च साधकों ने अपार ऊर्जा संचित की एवं साधना का परम लक्ष्य प्राप्त किया। हिमालय क्षेत्र में जाकर साधना करना आज के युग में, वातावरण में सम्भव नहीं है, परन्तु खुले एवं शान्त स्थान का चुनाव निश्चित ही उपयोगी एवं आवश्यक है।

हमने मठ की चर्चा की है। यह मठ क्या है, इस विषय पर चर्चा आवश्यक है। क्योंकि हठाभ्यास हेतु स्थान के सम्बन्ध में घेरण्ड संहिता में चर्चा आती है –

सुदेशे धार्मिक राज्ये सुभिक्षे निरूप्रद्रवे।

कृत्वा तमैकं कुटीरं प्राचीरैः परिवेष्टितम् ।।

– घेरण्ड संहिता 5/5

ऐसे सुन्दर, धार्मिक स्थान जहाँ भोजन के लिए खाद्य पदार्थ सहजता से उपलब्ध हों, और वहाँ किसी प्रकार का उपद्रव न हो और कुटी के चारों तरफ चारदीवारी हो।

अभ्यास सुन्दर धार्मिक स्थान पर करना चाहिये, दूर देश, अथवा जंगल आदि में अथवा राजधानी में कोलाहल पूर्ण वातावरण में नहीं करना चाहिये और नये साधक को इसका कडाई से पालन भी करना चाहिये। दूर जंगल में अभ्यास करने से असुविधा होगी। जंगली जानवरों आदि का भय बना रहेगा। अतः महर्षि घेरण्ड ने सुन्दर धार्मिक स्थल की बात कही है। भोजन के लिए बहुत अधिक परिश्रम करने पर कहीं पूरा ध्यान केवल भोजन को अर्जित करने पर ही न जाये, अतः कहा गया है कि भोजन की सुलभता पर भी ध्यान दिया जाये।

हठप्रदीपिका में भी योगी स्वात्माराम जी ने स्थान के सम्बन्ध में कहा है –

सुराज्ये धार्मिक देशें सुभिक्षे निरूपद्रवे।

धनु प्रमणपर्यतं शिलाग्नि जल वर्जिते।

एकान्ते मण्किामध्ये स्थातव्यं हठयोगिना ।।

– हठप्रदीपिका 1/12

अर्थात अच्छे राज्य में, धार्मिक तथा बिना उपद्रव वाले देश में एक छोटी कुटी बनाकर योगी को रहना चाहिये, जिसके चारों और चार हाथ दूरी तक पत्थर, अग्नि तथा जल न हो।

सुराज्ये से तात्पर्य वह स्थान है जहाँ प्राकृतिक सम्पदा हो तथा वन्य सम्पदा पूर्ण स्थान हो। धार्मिक देश से तात्पर्य है, वहाँ की जनता भले मन वाली तथा सहज भाव वाली तथा धर्म का ज्ञान रखनेवाली हो। सुभिक्षे अर्थात् अन्न, जल, फल, मूल आदि का अभाव जहाँ न हो।

निरूपद्रवे से तात्पर्य समाज में नियम पालन की व्यवस्था हो। नागरिक अपने कर्तव्य व अधिकार जानते व समझते हों।

गीता में योग हेतु उचित स्थान की चर्चा करते हुये वर्णन मिलता है –

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छितं नातिनीचं चैलाजिनम्योत्तरम्।।

– ***श्रीमद्भगवद्गीता 6/11***

आगे कहा गया है –

तत्रैकाग्रंमनःकृत्वा यत्वित्तेन्द्रियः क्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्स्याधोगमात्मविशुद्धये।।

यहाँ पर शुचौ देशे की बात की गई है। शुचौ देशे से तात्पर्य शुद्ध स्थान से है। शुद्ध स्थान दो तरह के हो सकते हैं –

1. प्राकृतिक शुद्ध–स्थान
2. शुद्ध किया हुआ स्थान

प्राकृतिक शुद्ध स्थान, जैसे गंगा नदी आदि पवित्र नदियों का किनारा, तुलसी, आँवला, पीपल आदि वृक्षों के पास का स्थान आदि।

शुद्ध किया हुआ स्थान से तात्पर्य भूमि का गाय के गोबर, मूत्र आदि से लीपकर अथवा शुद्ध जल छिडक कर शुद्ध किया हुआ स्थान। योगांक में योग हेतु उचित स्थान की चर्चा करते हुये कहा गया है," योग के लिये एकान्त और पवित्र स्थान होना चाहिये। जहाँ हिंसा, चोरी, मैथुन, छल आदि न होते हों । जहाँ जप, तप, यज्ञ, पूजन, हवन भजन, स्वाध्याय, भगवत् चर्चा आदि होते हों। परन्तु ध्यान के समय जहाँ कोई न हो, एकान्त नदी तट, देव मंदिर, जहाँ शोरगुल न होता हो, जो उत्तम और मनोरम वायु से संचित हो, गीला या गरम न हो, जहाँ भगवान के सुन्दर चित्र लगे हों।" जहाँ कंकड़ और बालू न हों, पुष्प धपादि से सुगन्धित हो।

स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वति के अनुसार – योग के लिये एकान्त एवं पवित्र स्थान का प्रबन्ध होना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो अभ्यास एक ही जगह पर करना चाहिये।

ऐसा करने से वहाँ के वातावरण के परमाणु बदल जाते है। एक शान्तिमय एवं प्रभावशाली स्पन्दन फैल जाता है जो साधक को जल्द ही प्रगति पथ पर आगे ले जाता है।

योगमठ कहाँ न बनाऐं –

घेरण्ड संहिता में वर्णित है –

दूरदेशे तथाऽरण्ये राजधान्यां जनांतिके।

योगारम्भं न कुर्वीतं कृतश्चेत्सिद्धहा भवेत्।।

– घेरण्ड संहिता 5/3

अर्थात, दूर देश में, जंगल के बीच में, राजधानी में जहाँ लोगों का शोरगुल हो, आना जाना अधिक हो, ऐसे स्थान पर योगाभ्यास करने से सिद्धि नहीं होती।

अविश्वासं दुरदेशो अरण्ये रक्षिवर्जितम्।

लोकारण्ये प्रकाशश्च तस्मात्त्राणि विवर्जियेत्।।

– घेरण्ड संहिता 5/4

अर्थात, परदेश में किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता, जंगल में असुरक्षा है, राजधानी में अत्यन्त भीड एवं शोरगुल होता है। अतः इन तीन स्थानों पर अभ्यास वर्जित है। योगाभ्यास न अधिक भीड. में, न दूर देश या जंगल में सधता है। वांस्तव में योगाभ्यास करने वाले साधक को अपनी सुरक्षा का ध्यान रखते हुये अभ्यास के लिये स्थान चुनना चाहिये और इसके लिये यदि कोई योग मठ सुलभ हो सके तो अति उत्तम होगा। यह योगमठ क्या है ? योगमठ वह स्थान है जहाँ मन की निम्नगामी शक्तियों को ऊर्ध्वगामी बनाया जाता है। योगमठ दो शब्दों से मिलकर बना है – योग+मठ। योग से तात्पर्य स्वयम् को जानने के प्रयास की निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, और मठ अर्थात जहाँ मन का ठहराव हो, जहाँ चित्त की चंचलता पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सके।

योग मठ वह स्थान है जहाँ स्वयम् को जानने के लिये, चित्त की चंचलता को रोकने के लिये प्रयास किया जाता है। वह स्थान जो आध्यात्मिक शक्तियों को जागृत करने के लिये उच्च ऊर्जा से भरा हो और सहज ही साधक का मन जिसमें रंम जाये। वह महान आत्माओं की तप स्थली हो जहाँ उस महान आत्मा की सकारात्मक ऊर्जा मन को एकाग्र करने मे सहायक सिद्ध हो सके।

घेरण्ड संहिता में वर्णन मिलता है –

वापी कूपतड़ागं च प्रचीर मध्यवर्त्ति च।

नात्युच्चं नातिनिम्नं च कुटीरं कीट वर्जितम्।।

साम्यग्गोमयलिप्तं च कुटीरं तत्र निर्मितम्।

एवं स्थानेषु गुप्तेषु प्राणायामम् सम्भ्पसेत्।।

– घेरण्ड संहिता 5/6, 7

अर्थात् कुएं एवं तालाब अथवा जलाशय वाले स्थान पर चारों तरफ घिरा हुआ है। कुटी की भूमि न अधिक ऊँची हो और न अधिक नीची। गोबर से लिपी हुई, कीट आदि से रहित एवं एकान्त स्थान में हो।

'वापी कूप तडागं च प्राचीर मध्यवर्ति च' – उस घेरे के भीतर जल प्राप्ति के लिये कुएं या पोखर की व्यवस्था रहनी चाहिये। साधक को अन्य वस्तुओं की आवश्यकता उतनी नहीं जितनी जल व्यवस्था की है। स्थान से अधिक अन्तर नहीं वरन् जल की व्यवस्था प्रचुर मात्रा में होनी चाहिये। पानी से प्यास भी बुझाती है और मन भी तृप्त होता है। जल वाले स्थान पर वायु भी शुद्ध बहती है। जल को 'अमृत' की संज्ञा दी गई है। "रसो बे सः" कहा गया है।

"नात्युच्चनातिनिम्नं च कुटीरं कीटवर्जितम्" – कुटीर की भूमि न तो अधिक ऊँची हो न बहुत नीची। उस स्थान में जीव जन्तुओं का उपद्रव न हो, भूमि गोबर से लिपी हो। गौ से प्राप्त सभी वस्तुऐं पवित्र मानी जाती हैं एवं गौ के गोबर से लिपा हुआ स्थान कीट–पतगों से भी सुरक्षित हो जाता है। वहां पर सांप बिच्छू आदि का भय भी नहीं रहता। अतः योगाभ्यास के लिये हठयौगिक ग्रन्थों में स्थान का चुनाव एक अहम् भूमिका निभाता है।

हठप्रदीपिका नामक महान ग्रन्थ के ग्रंथकार स्वात्माराम जी कुटीर के विषय में कहते हैं –

अल्पद्वारमरन्ध्रगर्तविवरं नात्युच्चनीचायतम्।

साम्यग्गोमयसान्द्रलिप्तममलं निःशेषजन्तूज्झितम्।।

अर्थात् कुटीर अथवा योगमठ का दरवाजा न अधिक छोटा हो न बडा हो, वहां छिद्र न हो, बिल या सुरंग न हो एवं कीड़े–मकौड़े से रहित हो । महर्षि आगे कहते हैं –

बाहये मण्डपवेदिकूपसचिरं प्रकारसंवेष्टितम्।

प्रोक्तं योगमठस्य लक्षणमिदं सिद्धैर्हठाभ्यासिभिः।।

– हठप्रदीपिका 1/13

अर्थात् मठ के बाहर, वेदि, मंडपशाला हो और बगल में कुआं जिसमें स्वच्छ जल हो, वहां प्रकाश का आवागमन हो, वहां घेरा लगा हुआ हो। इस प्रकार के लक्षणों से युक्त योग मठ में साधक को सिद्धि अवश्य ही मिल जाती है।

तात्पर्य यह है कि जो भी स्थान चुना जाये वह विघ्नों से रहित होना चाहिये। जिससे सारी शक्ति योग साधना में लगे न कि व्यवस्थाओं को करने में अथवा विघ्न–बाधाओं को दूर करने में लगे।

स्थान का सम्बन्ध आसन से भी है। यहाँ पर आसन से तात्पर्य 'स्थिरसुखमासनम्' से है अर्थात स्थिरतापूर्वक जिसमें सुख की अनुभूति हो (पातञ्जल योग सूत्र 2/46)। आसन शारीरिक स्थिति भी है और जिस पर बैठा जाये वह भी है। जिस पर बैठा जाये से तात्पर्य बिछावन से है।

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णन मिलता है –

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमाव्मनः।

नात्युचित्तं नतिनीचं चैलाजिनम्योन्तरम्।।

शुद्ध भूमि पर (जिस पर क्रमशः) कुश, मृगछाल और वस्त्र बिछे हों। जो न अधिक ऊँचा हो और न अधिक नीचा हो।

चैलाजिवनुशेन्तरम्

तदन्तर काठ की या पत्थर की चौकी पर क्रमशः कुश, मृगछाला और पात्र बिछा देना चाहिये क्योंकि काठ या पत्थर का आसन कड़ा होता है। जिस पर मुलायम करने हेतु उपरोक्त वस्तुएँ बिछाकर आरामदायक कर लेना चाहिये।

नात्युचित्तं नतिनीचम्

समतल शुद्ध भूमि पर जो चौकी रखी जाये वह न अधिक नीची हो और न अधिक ऊँची हो। अधिक नीची होने से भूमि के कीड़े–मकोड़े आदि शरीर पर चढ़कर ध्यान में बाधक बन सकते हैं एवं अधिक ऊँचे आसन से गिरने का भय रहता है। वास्तव में कभी–कभी ध्यान के दौरान नींद आ जाती है और इस स्थिति में यदि आसन ऊँचा रहा तो साधक नीचे गिर सकता है। अतः समस्थिति में आसन होना चाहिये।

आत्मनः

योग का साधन करने के लिये किसी अन्य का आसन उपयोग में नही लाना चाहिये। आसन अपना ही उपयोग करना चाहिये।

स्थिर प्रतिष्ठाप्य

जो आसन लगाया जाये वह हिलने–डुलने वाला नहीं होना चाहिये। ऐसा होने पर असुविधा एवं भय दोनों ही साधन के दौरान बने रहते है।

उपनिषदों में योगाभ्यास की भूमि के विषय में वर्णन मिलता है यथा –

समे शुचौ शर्करा बह्निषालुका,
विवर्जिते शब्दजलाश्रयद्धिभिः।
मनोनुकूले न तु चक्षु पीडने,
गुहनिषाताश्रयणे प्रयोजयेत्।।

– श्वेताश्वतर उपनिषद 2/10

योगाभ्यास करने वाले साधक को ऐसी जगह आसन लगाना चाहिये जहाँ की भूमि समतल हो तथा सब प्रकार से शुद्ध हो। जहाँ कंकड़ या बालू आदि न हो, अग्नि तथा धूप की गर्मी न हो। जहाँ किसी प्रकार का शोरगुल न हो। आवश्यक जल प्राप्त होता हो तथा शरीर रक्षा हो सकती हो। ऐसी गुफा आदि वायु रहित स्थान में बैठकर मन को परमात्मा में लगाने का अभ्यास करना चाहिये।

इस प्रकार उपर्युक्त लक्षणों से युक्त 'योग मठ' में अभ्यास करने से सिद्धि निश्चित ही प्राप्त होती है। वर्तमान परिस्थिति में घर पर अभ्यास के साथ ही वर्ष में एक बार कुछ दिनों अथवा सप्ताह के लिये किसी योग मठ अथवा तीर्थ स्थान अवश्य जाना चाहिये।

3.4 ऋतुकाल

हठाभ्यास हेतु अथवा किसी भी प्रकार की योग साधना के लिये काल एवं ऋतु का बहुत महत्व है। किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने के लिये एक उपयुक्त सही समय होता है। उसी प्रकार योग साधना को प्रारम्भ करने के लिये भी ऋतु एवं समय का ज्ञान होना आवश्यक है। कहा भी गया है –

कालो हि नाम भगवान् स्वयंभूरनादि मध्यनिहाने।।

अर्थात् काल (समय) ही स्वयंभू, अनादि, मध्यरहित एवं अनन्त है। महर्षि घेरण्ड ने प्रथम स्थान और काल के चुनाव पर ही बल दिया है। सामान्य रूप से योग हेतु जो स्थान और समय के नियम बताये हैं, वे निम्नवत् हैं –

1. योगाभ्यास का सर्वोत्तम समय सूर्योदय से पूर्व 1 से 1)) घण्टे तक का है। एवं ध्यान का अभ्यास तो ब्रह्म मुहूर्त में ही लाभकारी बताया गया है।

2. सम वातावरण होना चाहिये, अर्थात् अधिक ठण्ड एवं गर्मी युक्त वाला वातावरण नहीं होना चाहिये। हठाभ्यास में ऐसे बहुत से अभ्यास है जो अधिक ठण्ड में नहीं किये जा सकते, जैसे कुंजल, शंख प्रच्छालन, आदि।
3. खुले स्थान में अधिक हवादार, तेज हवा, वर्षा ऋतु आदि में अभ्यास प्रारम्भ नहीं करना चाहिये।
4. बन्द कमरे में, खिड़की–दरवाजे बन्द कर के भी अभ्यास नहीं किये जाना चाहिये।
5. भोजन के तुरन्त पूर्व एवं तुरन्त बाद में भी हठाभ्यास वर्जित है। इससे न अभ्यास फलीभूत होगा और न ही खाना पचेगा।

3.4.1 योगाभ्यास के लिए उचित समय

प्रारम्भिक अभ्यासियों को विशेष रूप से काल निर्णय एवं ऋतु निर्णय कर के ही योगाभ्यास प्रारम्भ करना चाहिये, नहीं तो उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं। ऋतु के सम्बन्ध में महर्षि घेरण्ड कहते हैं –

बसन्ते शरदि प्रोक्तं योगारम्भं समाचरेत्।

तदा योगी भवेत्सिद्धो रोगान्मुक्तो भवेद्ध्रुवम्।।

– घेरण्ड संहिता 5/9

अर्थात् बसन्त और शरद ऋतु में अभ्यास प्रारम्भ करना चाहिये। इन ऋतुओं में अभ्यास प्रारम्भ करने से सिद्धि मिलती है और रोगों से निवृत्ति होती है।

बसन्त ऋतु अर्थात ''बसन्त चैत्र बैशाखौ'' चैत्र और बैशाख में बसन्त ऋतु आती है। ''शरदश्विनकार्तिकौ'' शरद ऋतु आश्विन और कार्तिक में आती है। इन महिनों में ऋतुऐं शरीर के अनुकूल रहती हैं। न अधिक ठण्ड ही होती है, और न अधिक गर्मी। अधिक वायु वेग एवं वर्षा का वेग भी नहीं होता है। शरीर के लिये यह आवश्यक है कि वह जो भी अभ्यास करें और उसके द्वारा शरीर और मन पर जो प्रतिक्रिया हुई है, जो परिवर्तन हुआ है, उसे हम सह सकें। सामन्जस्य विठाना अत्यन्त आवश्यक है। यदि सामन्जस्य नहीं बैठ पाता है तो शरीर और मन दोनों को तकलीफ एवं पीड़ा सहनी पड़ती है। सही मौसम में यदि योगाभ्यास प्रारम्भ किया जाता है तो योगाभ्यास के द्वारा शरीर में होने वाले परिवर्तनों को साधक सहन कर लेता है एवं साथ ही साथ सहनशीलता एवं सामर्थ्य में वृद्धि होती है एवं अगले कठिन अभ्यासों के लिये मन और शरीर दोनों ही तैयार हो जाते हैं।

3.4.2 योगाभ्यास के लिये अनुचित समय

हेमन्ते शिशिरे ग्रीष्मे वर्षायां च ऋतौ तथा।

योगारम्भं न कुर्वीत कृते योगे हि रोगदः।।

– घेरण्ड संहिता 5/8

अर्थात् हेमन्त, शिशिर, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में योगाभ्यास आरम्भ नहीं करना चाहिये। यह अभ्यास रोग प्रदायक होता है।

सामान्य रूप से देखा जाय तो ये मौसम स्वास्थ्य की दृष्टि से कष्ट प्रदायक होते ही हैं। और यदि इन ऋतुओं में योगाभ्यास किया जाये तो शारीरिक समस्यायें जैसे सर्दी, अत्यधिक पसीना आना, फोड़े–फुन्सी, बुखार आदि की समस्यायें उत्पन्न हो सकती है। अतः ऋतु का ख्याल शुरूआती अभ्यासियों को अवश्य ही रखनी चाहिये।

पुराने अभ्यासियों हेतु

'तदायोगोभवतेत्सिद्धो विनायाऽऽसने कथ्यते' – अर्थात अभ्यासी साधकों के लिये अभ्यास में कोई ऋतु बाधक नहीं हो सकती है। पुराने अभ्यासियों का शरीर व मन पूर्ण रूप से परिवर्तनों के लिये तत्पर रहता है एवं अभ्यास द्वारा शरीर व मन पूर्णरूपेण सिद्ध हो चुका होता है। अतः पुराने अभ्यासियों के लिये ऋतु बाधा नहीं है।

मुख्य रूप से योगाभ्यासों में भी प्राणायाम के अभ्यास शरीर पर अधिक एवं जल्दी प्रभाव डालते हैं। प्राणायाम के प्रभाव गर्म, ठण्डे एवं समकारी होते हैं। ठण्ड के मौसम में गर्म प्रभाव वाले एवं गर्मी में ठण्डे प्रभाव वाले प्राणायाम करने से शरीर व मन सन्तुलित अवस्था में रहते हैं। समकारी प्रभाव वाले अभ्यास किसी भी ऋतु में किये जा सकते हैं।

3.5 आहार–विहार

स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से आहार–विहार का शरीर पर गहरा एवं दूरगामी प्रभाव पड़ता है। यौगिक परम्परा में आहार–विहार का अत्यधिक महत्व है। प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो अच्छा स्वास्थ्य एवं मन चाहता है, उसे इन दोनो तथ्यों का ख्याल रखना अत्यन्त आवश्यक है। योग साधक एवं सामान्य व्यक्ति दोनों के लिये उचित आहार जो पौष्टिक, सुपाच्य तथा सात्विक हो की आवश्यकता होती है। चयापचय को सुदृढ़ एवं नियमित रखने के लिये आहार–विहार का सन्तुलित होना नितान्त आवश्यक है।

योग ग्रन्थों एवं आयुर्वेद में मिताहार का वर्णन मिलता है। मिताहार अर्थात् अल्पाहार, मात्रा में कम एवं पचने में आसान भोजन।

ज्योत्सना टीका में वर्णित है –

द्वौ भागौ पूरयेदन्नैस्तोयेनैकं प्रपूरयेत्।
वायोः सन्चरणार्थाय चतुर्थभवशेषयेत्।।

अर्थात दो चौथाई ठोस आहार, एक चौथाई द्रव पदार्थ तथा एक चौथाई वायु पदार्थ से भरना चाहिये।

3.5.1 मिताहार का महत्व

आहार शरीर का पोषण करता है एवं यौगिक ग्रन्थों के अनुसार यह मन का भी पोषणकर्ता है। स्थूल अन्न के स्थूल भाग से शरीर का पोषण होता है एवं सूक्ष्म भाग से मन का पोषण होता है। योग साधना शरीर के द्वारा ही की जाती है। योग साधना का आधार शरीर ही है। अतः शरीर की रक्षा हमारा कर्त्तव्य है।

आचार्य चरक ने चरक सूत्र में कहा है –

आहारसम्भवं वस्तु रोगाश्चहारसम्भवाः।

– चरक सूत्र 28/45

अर्थात शरीर आहार से ही उत्पन्न हुआ है और सभी रोग भी आहार के दोष से ही होते हैं। किसी व्यक्ति के लिये जो आहार लाभप्रद होता है वह पथ्याहार कहलाता है। और जो आहार लाभप्रद नहीं होता वह अपथ्याहार कहलाता है। पथ्य अर्थात् हितकर एवं अपथ्य अर्थात अहितकर। हितकर भोजन मन के लिये प्रसन्नता का कारण बनता है, शरीर को पुष्टि प्रदान करता है।

निम्नलिखित संगठन किसी भोजन को पथ्यकारी बनाते हैं –

1. मात्रा
2. काल
3. क्रिया
4. भूमि
5. देह
6. देश

मात्रा अर्थात् कितनी मात्रा हो कि भोजन पथ्यकारी हो, समय दूसरी महत्वपूर्ण शर्त है प्रातः, सायं, अपराह्न। क्रिया से तात्पर्य भोजन बनाते समय रसोइये के भाव हैं, भूमि अर्थात् किस स्थान, मौसम में भोजन बनाया जा रहा है। देह से तात्पर्य उस व्यक्ति के शरीर से है जो भोजन ग्रहण करने वाला है, देश से तात्पर्य व्यक्ति और समाज दोनों से है, व्याष्टि और समष्टि दोनों का समावेश है।

उपरोक्त संगठन यदि सही हैं, तो आहार शरीर व मन को स्वास्थ्य एवं आनन्द प्रदान करने वाला होता है। आहार हमारे शरीर के लिये उतना ही आवश्यक है जितना गाड़ी के लिये ईंधन। ईंधन में खराबी, मिलावट होने की स्थिति में गाड़ी में खराबी आना स्वाभाविक है, ठीक उसी प्रकार भोजन अथवा आहार के विषय में भी सत्य है।

आयुर्वेद के अनुसार, ''शरीर का हम पोषण करते हैं तो शरीर हमारा पोषण करता है।'' अन्यत्र भी कहा गया है – ''जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन''।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी वर्णन मिलता है कि ''यह योग न तो बहुत अधिक खाने वाले को और न बिल्कुल न खाने वाले को, न बहुत शयन करने वाले को और न सदा जागने वाले स्वभाव के व्यक्ति को सिद्ध होता है।''

– गीता 6/16

आहार की शुद्धि से ही चित्त की शुद्धि होती है।

यौगिक साहित्यों में मिताहार का वर्णन

आचार्य शंकर के अनुसार, ''जो इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जाये, वह आहार है।''

मिताहार

मित → संतुलित

आहार → ग्रहण करना

अर्थात संतुलित मात्रा में जो ग्रहण किया जाये, वह मिताहार है। यह न अधिक मात्रा में लिया जाये और न कम ही लिया जाये। हठाभ्यास में शरीर को संतुलित रखने के लिये आहार पर विशष ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

मिताहार के विषय में अर्जुन को उपदेश करते हुए भगवान श्री कृष्ण कहते हैं –

युक्ताहारविहारस्य

युक्तश्रेष्टस्यकर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य

योगो भवेत् दुःखहा।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 6/17)

अर्थात् दुःखों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार–विहार करने वाले का, कर्मों में यथायोग्य चेष्ठा करने वाले का और यथायोग्य सोने तथा जागने वाले का सिद्ध होता है।

युक्त आहार–विहार का तात्पर्य है कि – ''खाने–पीने की वस्तुऐं ऐसी होनी चाहिये जो अपने वर्ण और आश्रम धर्म के अनुसार सत्य और न्याय के द्वारा प्राप्त हो। रजोगुण

और तमो गुण को बढ़ाने वाला न हो तथा योगसाधन में सहायता देने वाला हो। उसी प्रकार घूमना, टहलना भी उतना ही होना चाहिये जितना अपने लिये आवश्यक व हितकारी हो।''

3.5.2 मिताहार का वर्गीकरण

पूर्व वर्णित छः भावों को समाहित करते हुए मिताहार को तीन भागों में बांटा जा सकता है–

1. मात्रा के दृष्टिकोण से
2. गुणवत्ता के दृष्टिकोण से
3. मनःस्थिति के दृष्टिकोण से

1. मात्रा के दृष्टिकोण से

मिताहार का तात्पर्य कम और सुपाच्य भोजन से है। घेरण्ड संहिता में कहा भी गया है –

शुद्धं सुमधुरं स्निग्धमधुरार्धविवर्जितम्।
भुज्यते सुरसम्प्रीत्या मिताहारमिमं विदुः।।21।।
अन्नेन पूरयेदर्धं तोयेन तु तृतीयकम्।
उदरस्य तृतीयांशं संरक्षेद्वायुचारण।।22।।

अर्थात् शुद्ध, सुमधुर, स्निग्ध भोजन को सन्तोषपूर्वक आधा पेट भरना और आधा खाली रखना चाहिये। विद्वानों ने इसे मिताहार कहा है। पेट के आधे भाग को अन्न से, तीसरे भाग को जल से भरना और चौथे भाग को वायु संचलन के लिये खाली रखना चाहिये। 'अष्टांग योग' में चरणदास जी मिताहार को परिभाषित करते हुए कहते हैं – ''प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति ने तृप्तता के भाव को दिया है। प्रत्येक व्यक्ति का तृप्तता का पैमाना अलग–अलग है। किसी को कम एवं किसी को अधिक भूख लगती है, अथवा कम एवं अधिक खाने से तृप्तता का एहसास होता है। मिताहार के अभ्यास द्वारा इस गुण को विकसित किया जा सकता है।''

कहीं–कहीं प्रत्येक आश्रम के अनुसार भोजन के ग्रास अथाव कौर की व्यवस्था की गई है। दर्शनोपनिषद में वर्णन मिलता है कि ''भाग्य में रखे गये भोजन के एक चौथाई भाग को छोड़कर भोजन ग्रहण करना चाहिये।''

हठप्रदीपिका में कहा गया है, स्निग्ध तथा मधुर भोजन भगवान को अर्पित कर अपने पूर्ण आहार का चतुर्थांश कम खाया जाये, उसे मिताहार कहते हैं।

भोजन की मात्रा वास्तव में व्यक्ति के पाचन शक्ति पर निर्भर करती है। अतः अलग–अलग व्यक्तियों के हिसाब से भोजन की मात्रा भी अलग–अलग होती है।

2. **गुणवत्ता के दृष्टिकोण से**

गुणवत्ता के दृष्टिकोण से भोजनअथवा आहार दो वर्गों में बांटा गया है –

A. पथ्याहार – जो पचाया जा सके।

B. अपथ्याहार – जो न पचाया जा सके।

A. **पथ्याहार**

पथ्यं पथोऽपनेत पद्यच्चोक्तं मनसः प्रियम्

यच्चाप्रियमपथ्यं च नियतं तन्न लक्षयेत्।।

– चरक सूत्र 25/44

अर्थात पथ्य वह है जो सर्वशरीर के हितकर हो तथा मन के लिये प्रसन्नता व आनन्दकर हो और साथ–साथ पचभौतिक संगठन की दृष्ठि से भी सही हो।

महर्षि चरक ने (चि0वि01) में निम्न नियमों का निर्देश दिया है –

1. आहार को ऊष्ण/गर्म अवस्था में ग्रहण करें।
2. स्निग्ध आहार का ही सेवन करें।
3. आहार को उचित मात्रा में ही सेवन करें।
4. पूर्व भोजन के पचने के बाद ही पुनः भोजन करें।
5. विरूद्धाहार न करें।
6. उपयुक्त स्थान तथा उपयुक्त यन्त्र से ही आहार लें।
7. बहुत तेजी से भोजन न करें।
8. अत्यधिक सुस्ती से भोजन न करें।
9. शान्तिपूर्वक, एकाग्रचित्त एवं बिना वार्तालाप के भोजन करें।
10. स्वमूल्यांकन के साथ ही भोजन करें।

घेरण्ड संहिता में पथ्यकारी भोजन के सम्बन्ध में महर्षि घेरण्ड कहते हैं – साधक को चावल, जौं का सत्तू, गेहूँ का आटा, मूँग, उड़द, चना आदि का भूसी रहित, स्वच्छ कर के भोजन ग्रहण करना चाहिये। परवल, कटहल, ओल मानकन्द, कंकोल, करेला, कुन्दस, अरबी, ककड़ी, केला, गुलर और चौलाई आदि का शाक भक्षण करें। कच्चे या पक्के केले के गुच्छे का दण्ड और उरूका मूल, बैंगन, ऋद्धि, कच्चा शाक, ऋतु का शाक, परवल के

पत्ते, बथुआ और हुरहुर का शाक खा सकते हैं। उस स्वच्छ, सुमधुर, स्निग्ध और सुरस द्रव्य से सन्तोषपूर्वक आधा पेट भरना और आधा खाली रखना चाहिये। (घेरण्ड संहिता 5/17–20)

हठप्रदीपिका में पथ्य के विषय में चर्चा मिलती है कि योगाभ्यासी को सुमधुर, स्निग्ध, गाय के दूध से बनी वस्तु, धातु को पुष्ट करने वाला, मनोनुकूल तथा विहित भोजन करना चाहिये। उत्तम योग साधकों के लिये महर्षि ने चावल, जौं, दूध, घी, मक्खन, मिश्री, शहद, सूंठ, परवल जैसे फल, पाँच प्रकार के साग (जीवती, चौलाई, बथुआ, मेघनाथ पुनर्नवा) मूँग, हरा चना, आदि तथा वर्षा का जल (वर्तमान में यह जल प्रदूषण के कारण उपयोगी नहीं है।)

B. अपथ्याहार

जो आहार सर्व शरीर के लिये हितकर न हो, मन को आनन्द और प्रसन्नता देने में असमर्थ हो और साथ ही साथ पंच भौतिक संगठन की दृष्टि से भी ठीक न हो, वह आहार अपथ्यकारी कहलाता है।

विरूद्धाहार के सम्बन्ध में हमारे शास्त्रों में वर्णित है कि निम्न तीन पक्षों का ध्यान रखते हुए आहार को विषमाहार मान लेना चाहिये –

I- आहार के विभिन्न घटकों अर्थात विभिन्न प्रकार के आहार द्रव्य जो साथ लिये जा रहे हों, उनका आपस में जैविक या रासायनिक विरोध।

II- लिये जा रहे आहार का ग्रहण करने वाले व्यक्ति की प्रकृति, स्वभाव तथा सात्म्यासात्म्यता अर्थात सात्म्य और असात्म्य मात्रा से विरोध,

III- लिये जा रहे आहार का तात्कालिक देश–काल–जलवायु आदि से विरोध।

आहार के विभिन्न घटकों में षड्रस, त्रिदोष तथा पंच महाभूत आते हैं।

षड़ रस
1. मधुर
2. अम्ल
3. लवण
4. कटु
5. तिक्त
6. कषाय

त्रिदोष –
1. वात
2. पित्त

3. कफ

पंच महाभूत – 1. आकाश

2. वायु

3. अग्नि

4. जल

5. पृथ्वी

षड्रस, त्रिदोष एवं पंचमहाभूत आपस में सम्बन्ध रखते हैं। वास्तव में षड्रसों की पंचभौतिक प्रकृत शरीर पर अत्यधिक मात्रा में प्रभाव डालते हैं। इसी प्रभाव को हम निम्न तालिका द्वारा समझ सकते हैं –

षड्रस	चभौतिक प्रकृति	शारीरिक प्रभाव		
		कफ	पित्त	वात
1. मधुर	जल + पृथ्वी	↑↑	↓↓	↓
2. अम्ल	पृथ्वी + अग्नि	↑↑	↑↑	↓
3. लवण	अग्नि + जल	↑↑	↑↑	↓
4. कटु	वायु + अग्नि	↓	↓	↑↑
5. तिक्त	आकाश + वायु	↓	↑↑	↑
6. कषाय	वायु + पृथ्वी	↓↓	↓	↑

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि मधुर, अम्ल और लवण तीनों ही कफ, पित्त की वृद्धि के लिये उत्तरदायी हैं, कहीं ये वात के शमन के लिये भी उत्तरदायी हैं। कटु जहाँ वात प्रधान है, वहीं कफ, पित्त शामक भी है। तिक्त पित्त वर्धक है व कषाय कफ शामक है।

अपथ्य के विषय में हठयौगिक ग्रन्थों में स्पष्ट वर्णन मिलता है कि कडुवा, अम्ल, लवण और तीखा ये चार रस वाली वस्तुऐं भुने हुए पदार्थ, दही, तक्र (मट्ठा), शाक, उत्कट, मद्य, ताल, और कटहल का त्याग करें। कुल्थी, मसूर, प्याज, कुम्हड़ा, शाक–दंड, गोया, कैथ, कंकोल, ढाक, कंदवा, नींबू, बड़हड़, लहसुन, कमरख, पियार, हींग, सेम, बंडा आदि

का भक्षण योगारम्भ में वर्जित है। मार्ग गमन, स्त्री गमन तथा अग्निसेवा (ताप) भी योगी के लिये उचित नहीं। मक्खन, धृत, दूध, गुड़, शक्कर, दाल, आंवला, अम्ल रस आदि से बचें।

(घेरण्ड संहिता 5/23–26)

हठप्रदीपिका 1/59 में अपथ्य में करेला आदि कटु और इमली आदि खट्टा और मिर्च जैसी तिक्त तीक्ष्ण, लवण और गुड आदि ऊष्ण और हरित साग सब्जियों का साग, तिल का तेल, मदिरा, मांस, दही, मट्ठा, हींग, लहसुन आदि वस्तुओं को रखा है।

3. मनःस्थिति के दृष्टिकोण से

एक विशिष्ट मनःस्थिति के साथ ही भोजन करना चाहिये। भोजन का सीधे प्रभाव मन एवं अन्तःकरण पर भी पड़ता है। कहा भी गया है कि –

''जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन'', अर्थात मन के स्वस्थ रहने या न रहने के पीछे अन्न का बहुत बड़ा योगदान है। और मन स्वस्थ, स्वस्थ शरीर का कारण है। कहा भी गया है कि मनुष्य जैसा अन्न खाता है, वैसा ही अन्न उसके देवता भी खाते हैं।

आयुर्वेद में वर्णन मिलता है ''भोजन स्वयं को सन्तुष्ट करने के लिये नहीं करना चाहिये, वरन् शरीर के अन्दर विद्यमान भगवान को प्रसन्न करने के लिये करना चाहिये।'' आहार से ही सत्, रज और तामसिक गुण विशेष कमी अथवा वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

सात्विक भोजन सात्विक मन को उद्दीप्त करता है और तामसिक या राजसिक भोजन उसके अनुसार ही मन को कार्यों के लिये प्रेरित करेगा। अतः किसी भी योग के अभ्यास में अथवा सामान्य दिनचर्या में आहार–विहार का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न

सही/गलत

1. प्राकृतिक शुद्ध स्थान से तात्पर्य गाय के गोबर, मूत्र आदि से लीपकर शुद्ध किया हुआ स्थान है।
2. भोजन के तुरन्त पूर्व एवं तुरन्त बाद में हठाभ्यास हितकर है।
3. ग्रीष्म और शिशिर ऋतु में योगाभ्यास प्रारम्भ करना चाहिये।
4. कटु रस अग्नि व वायु महाभूत से मिलकर बना है।
5. तिक्त रस पित्त वर्धक होता है।
6. कषाय रस कफ शामक होता है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति

1. वह स्थान जहाँ साधक प्रारम्भ करता है, वह .... कहलाता है।
2. योगाभ्यास का सर्वोत्तम समय .... से पूर्व 1 से 1,1/2 घण्टे तक का है।
3. अल्पाहार को .... भी कहते हैं।
4. आहार की शुद्धि से ही .... की शुद्धि होती है।
5. गुणवत्ता के दृष्टिकोण से भोजन .... और .... दो वर्गों में बांटा गया है।
6. मधुर रस .... और .... प्रकृति से मिलकर बना है।

3.6 सारांश

योग मार्ग में अग्रसर होने के साथ–साथ एक सामान्य व्यक्ति यदि जीवन में आगे बढ़ना चाहता है तो उसे अपने आसपास के वातावरण, रहन–सहन एवं आहार का विशेष ध्यान रखना चाहिये। भोजन केवल शरीर ही ग्रहण नहीं करता वरन् हमारी ज्ञानेन्द्रियां भी आहार के सूक्ष्म अंश का ग्रहण करती है। अतः हर व्यक्ति को जो योग मार्ग में आगे बढ़ना चाहता है, अथवा स्वस्थ व समृद्धशाली जीवन यापन करना चाहता है, स्थान, काल व आहार–विहार का ज्ञान अति आवश्यक है।

3.7 शब्दावली

हठप्रदीपिका–स्वात्माराम जी कृत हठ योग पर लिखा गया एक अनुपम ग्रन्थ

घेरण्ड संहिता–हठयोग का एक अनुपम ग्रन्थ

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

सही/गलत

1. गलत
2. गलत
3. गलत

4. सही
5. सही
6. सही

रिक्त स्थानों की पूर्ति

1.मठ 2.सूर्योदय 3.मिताहार 4.चित्त 5.पथ्याहार, अपथ्याहार 6.जल, पृथ्वी

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता – गीता प्रेस, गोरखपुर
2. पातन्जल योग सूत्र – गीता प्रेस, गोरखपुर
3. घेरण्ड संहिता – स्वामी निरंजनानेद सरस्वती विहार, योग भारती, मुंगेर, बिहार
4. हठप्रदीपिका – स्वरकावन कृत, कैवल्यधाम, लोनावला
5. स्वस्थवृत्त विज्ञान – प्रो0 राम हर्ष सिंह, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
6. योग एवं यौगिक चिकित्सा – प्रो0 राम हर्ष सिंह, चौखम्बा प्रकाशन, दिल्ली
7. श्वेताश्वतर उपनिषद
8. चरक सूत्र

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. एक योग मठ प्रारम्भिक योगभ्यासी के लिये कितना आवश्यक है यह समझाइये।
2. योगाभ्यास के लिये उचित समय की चर्चा विभिन्न ग्रन्थों में किस प्रकार दी गई है, व्याख्या कीजिये।
4. मिताहार से क्या समझते हैं।

इकाई– 4 हठप्रदीपिका के अनुसार विविध आसनों की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 हठयोग प्रदीपिका का सामान्य परिचय
4.4 आसन का अर्थ एवं परिभाषा
4.5 आसनों का उद्देश्य
4.6 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित आसन
4.6.1 स्वस्तिकासन–विधि,लाभ,सावधानियाँ
4.6.2 गोमुखासन– विधि,लाभ,सावधानियाँ
4.6.3 वीरासन– विधि,लाभ,सावधानियाँ
4.6.4 कूर्मासन– विधि,लाभ,सावधानियाँ
4.6.5 कुक्कुटासन–विधि,लाभ,सावधानियाँ
4.6.6 उत्तानकूर्मासन–विधि,लाभ,सावधानियाँ
4.6.7 धनुरासन–विधि,लाभ,सावधानियाँ
4.6.8 मत्सेन्द्रासन–विधि,लाभ,सावधानियाँ
4.6.9 पश्चिमोत्तानासन–विधि,लाभ,सावधानियाँ
4.6.10 मयूरासन–विधि,लाभ,सावधानियाँ
4.6.11 शवासन–विधि,लाभ,सावधानियाँ
4.6.12 सिद्धासन–विधि,लाभ,सावधानियाँ
4.6.13 पद्मासन–विधि,लाभ,सावधानियाँ
4.6.14 सिंहासन–विधि,लाभ,सावधानियाँ
4.6.15 भद्रासन–विधि,लाभ,सावधानियाँ
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

वैदिक काल से ही सदैव मनुष्य अपने शरीर को स्वस्थ रखने का प्रयास करता था और उसी प्रयास के अन्तगर्त प्राचीन ऋषि मुनियों, मनिषियों ने अपनी साधना के दौरान अपने शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए और मन को स्थिर करने के लिए कुछ विशेष स्थितियों का अविष्कार किया, जिसे हम आसनों के रूप में जानते हैं। आसन मूलतः ऋषि मुनियों के ध्यान को आकृष्ट करने का प्रमुख कारण इसलिए बने क्योंकि उन्होनें अपनी साधना के दौरान यह महसूस किया कि कोई भी पशु पक्षी या वृक्ष किसी भी प्रकार से असवस्थ होने पर किसी भी प्रकार के अप्राकृतिक साधनों का प्रयोग नहीं करते, वह किसी प्रकार की शल्यचिकित्सा पर विश्वास नहीं करते और ना ही स्वस्थ रहने के लिए किसी भी प्रकार की औषधि का उपयोग करते हैं। इसीलिए हठयोग में आसनों को शरीर का संवर्द्धन करने वाले और शक्तिशाली बनाने वाले अभ्यास के रूप में जाना जाता है।

4.2 उद्देश्य

1. प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप हठयोग प्रदीपिका का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

2. आसन शब्द का अर्थ एवं परिभाषा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3. आसनों के उद्देश्य के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

4. हठप्रदीपिका में वर्णित 15 आसनों की विधि का विस्तार से अध्ययन कर सकेंगे।

5. हठप्रदीपिका में वर्णित 15 आसनों के लाभ एवं सावधानियों का अध्ययन कर सकेंगे।

4.3 हठयोग प्रदीपिका का सामन्य परिचय–

हठयोग प्रदीपिका हठयोग का एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ की रचना स्वामी स्वात्माराम जी ने की थी। इस ग्रंथ में चार उपदेश दिए गए हैं।

प्रथम उपदेश में सिद्ध हठयोगियों की लम्बी परम्परा का वर्णन किया गया है साथ ही हठयोग के उच्च अभ्यास के लिए उपयुक्त स्थान तथा अभ्यास में साधक–बाधक तत्वों का वर्णन किया गया हैं। इसके बाद हठयोग के प्रथम अंग के रूप में 15 आसनों (स्वस्तिकासन, गोमुखासन, वीरासन, कूर्मासन, कुक्कुटासन, उत्तानकूर्मासन, धनुरासन, मत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन, शवासन, सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन, भद्रासन) का वर्णन किया गया है। इस उपदेश के अंत में स्वामी स्वात्माराम जी ने अभ्यासीयों के लिए आहार का विस्तृत वर्णन किया है।

द्वितीय उपदेश में स्वामी स्वात्माराम जी ने 8 प्राणायामों (सूर्यभेदी, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भ्रस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा, प्लाविनी) का वर्णन किया है। तथा साथ ही साथ छह शोधन क्रियाओं (धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, कपालभाति) का भी उल्लेख किया है।

तृतीय उपदेश में कुण्डली जागरण का महत्व बताते हुए स्वामी स्वात्माराम जी ने 10 मुद्राओं (महामुद्रा, महाबन्ध मुद्रा, महावेध मुद्रा, खेचरी मुद्रा, उड्डीयान, मूल बन्ध, जालन्धर, विपरीतकरणी, वज्रोली मुद्रा, शक्तिचालन) का भी विस्तृत वर्णन किया है।

अंतिम चतुर्थ उपदेश में समाधि का वर्णन कुण्डली जागरण तथा उसके परिणाम, लय की परिभाषा तथा अंत में नादानुसंधान का वर्णन किया गया है। जिसमें नादानुसंधान के चारों स्तरों आरम्भावस्था, घटावस्था, परिचयावस्था, निष्पत्त्यवस्था में विभक्त किया गया है।

4.4 आसन का अर्थ एवं परिभाषा

आसन शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है जैसे शरीर के द्वारा बनाये गये विशेष स्थिति, बैठने का विशेष तरीका, हाथी के शरीर का अगला भाग, घोड़े का कन्धा आदि परन्तु हठयोग में आसन शब्द का अर्थ मन को स्थिर करने हेतु बैठने की विशेष स्थिति माना जाता है। महर्षि पतंजलि आसन की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि –

''स्थिरसुखमासनम्'' योगसूत्र 2/46

अर्थात् जिस स्थिति में व्यक्ति स्थिरता एवं सुखपूर्वक लम्बे समय तक बैठे उसे आसन कहते हैं।

4.5 आसनों का उद्देश्य

आसनों का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का शारीरिक तथा मानसिक विकास करना हैं। आसनों का नियमित अभ्यास शरीर एवं मन को सन्तुलित रखता है, शरीर को लचीला बनाता है, मांसपेशियों में खिंचाव उत्पन्न करता है, आन्तरिक अंगों की मालिश करता है, तथा अन्तःस्रावी ग्रन्थियों को सक्रिय बनाता है। इसके अभ्यास से शरीर में स्थित सभी तन्त्रों पर सकरात्मक प्रभाव पड़ता है, जिससे सभी तन्त्र सुचारू रूप से कार्य करते रहते हैं। आसनों के अभ्यास से शरीर निरोगी रहता है साथ ही साथ आसनों का अभ्यास शरीर को दृढ़ता भी प्रदान करता है। हठयोग के ग्रन्थों में कहा भी गया है कि **''आसनेन रूजो हन्तिः''** , **''आसनेन भवेद् दृढ़म्''** ।आसन करने से शरीर में स्थित विषैले पदार्थ जल्दी ही बाहर निकल जाते हैं। आध्यात्मिक पक्ष से देखने पर हमें ज्ञात होता है कि आसनों का अभ्यास शरीर में स्थित कुण्डलिनी शक्ति जों कि मूलाधार चक्र में सोयी हुई हैं उसे भी जाग्रत करने में सहायक होता है। शरीर में स्थित सुषुम्ना नाड़ी (प्रमुख नाड़ी) को क्रियाशील बनाता हैं, जिससे साधक की आध्यात्मिक उन्नति होती हैं।

4.6 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित आसन

हठयोग प्रदीपिका के प्रथम उपदेश में ही **15 आसनों** का विस्तृत वर्णन मिलता है। साधक–बाधक तत्वों के वर्णन के बाद आसनों का वर्णन करते हुए स्वामी जी कहते है कि–

हठस्य प्रथामड्.गत्वादासनं पूर्वमुच्यते।
कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाड्त्रगलाघवम्।।

ह0प्र0 1/17

अर्थात् आसन हठयोग का प्रथम अंग है, इसलिए सबसे पहले आसनों का ही वर्णन करते है। आसनों का अभ्यास निरंतर करते रहने से शरीर में स्थिरता आती है। सम्पूर्ण शरीर को आरोग्यता प्राप्त होती है तथा शरीर हल्का हो जाता है क्योंकि शरीर में स्थित विषैले पदार्थ शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

सर्वप्रथम स्वस्तिकासन का वर्णन करते हुए कहा गया है कि–

4.6.1 स्वस्तिकासन–

विधि–

जानुर्वोरन्तरे सम्यक्कृत्वा पादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत् प्रचक्षते।।

ह0प्र0 1/19

अर्थात् सर्वप्रथम दोनों पैरों को सीधे सामने, फैलाकर दण्डासन की स्थिति में आ जाएँ। धीरे से बाएं पैर को मोड़कर उसके तलवों को दांए पैर के घुटने और जंघा के मध्य स्थित करे तथा ठीक उसी तरह दांए पैर को मोड़कर उसके तलवों को भी बाएं पैर के घुटने और जंघा के मध्य में स्थित करें। कमर, गर्दन को सीधा रखें। यह स्वस्तिकासन है।

लाभ– यह एक ध्यानात्मक आसन है, इसके निरंतर अभ्यास से अभ्यासी को शारीरिक तथा मानसिक स्थिरता प्राप्त होती है। मन शान्त होता हैं । घुटने, जंघा पुष्ट होते हैं। मन की चंचलता समाप्त होती है।

सावधानी–स्वस्तिकासन को घुटने में सूजन, दर्द अदि रोगों से पीड़ित रोगी न करें। साइटिका से ग्रस्त रोगी भी इसका अभ्यास न करें।

4.6.2. गोमुखासन–

इस आसन को करते समय शरीर की स्थिति गाय के मुख के समान प्रतीत होती है। इसलिए इसे गोमुखासन कहते हैं।

विधि–

सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत्।
दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं गोमुखाकृति।।

ह0प्र0 1/20

अर्थात् सर्वप्रथम दण्डासन में बैठे जाए। दांए पैर को मोड़कर कटि (कमर) के बांए ओर रखें तथा बाएं पैर को मोड़कर कटि (कमर) के दांई ओर रखें। दोनों घुटनों को एक के ऊपर एक रखने का प्रयास करें। यह स्थिति गाय के मुख के समान बनती हैं इसलिए इसका नाम गोमुखासन है।

लाभ– इस आसन के नियमित अभ्यास से अण्डकोष की वृद्धि की समस्या दूर हो जाती है। पैरों, हाथों, तथा नितम्बों में जमा अतिरिक्त चर्बी कम होती है। छाती का विस्तार होता है। अस्थमा आदि श्वास सम्बन्धी रोगों के साथ–साथ प्रजनन तंत्र सम्बंधी रोगों का भी निदान होता है। इसका अभ्यास कन्धों की जकड़न को भी दूर करता है।

सावधानी– जिन व्यक्तियों को स्लिप डिस्क, साइटिका, घुटनों का दर्द हो वो इसका अभ्यास न करें।

4.6.3. वीरासन–

इस आसन का नियमित अभ्यास करने से अभ्यासी के अंदर धैर्य की वृद्धि होती है। इसलिए इस आसन का नाम वीरासन है।

विधि–

एकं पादमथैकस्मिन् विन्यसेदूरुणि स्थिरम्।
इतरस्मिंस्तथा चोरूं वीरासनमितीरितम्।।

ह0प्र0 1/21

सर्वप्रथम दण्डासन में बैठ जाएं तथा एक पैर को मोड़कर दूसरी पाँव की जँघा के ऊपर रखें तथा दूसरे पैर को मोड़कर पहली जंघा के नीचे रखें। इसे वीरासन कहते हैं।

लाभ– इस आसन के अभ्यास से पैर तथा घुटने पुष्ट एवं लचीले बनते हैं। मन धैर्यवान तथा दृढ़ बनता है।

सावधानी– जिन व्यक्तियों को स्लिप डिस्क, साइटिका घुटनों कूल्हें का दर्द हो। वो इसका अभ्यास न करें।

4.6.4 कूर्मासन–

कूर्म का अर्थ है कछुआ, जिस आसन में शरीर की स्थिति कछुए के सामान सी प्रतीत होती है उसे कूर्मासन कहते हैं।

गुदं निरुध्य गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण समाहितः।
कूर्मासनं भवेदेतदिति योगविदो विदुः।।

ह0प्र0 1/22

विधि– सर्वप्रथम दण्डासन में बैठे। धीरे से बाएँ पैर को मोड़कर बाएं नितम्ब के नीचे रखे तथा दाएँ पैर को भी मोड़कर दाएं नितम्ब के नीचे रखें। दोनों पैरों की एड़िया नितम्बों (गुदा) पर दबाव बनाएं। इसे कूर्मासन कहते है।

लाभ– इस आसन से घुटने, तथा एड़ी के जोड़ मजबूत व लचीले बनते हैं। जंघाएं पुष्ट होती है। शरीर में उष्णता तथा इन्द्रिय निग्रह की स्थिति प्राप्त होती है।

सावधानी–जिन व्यक्तियों को घुटने तथा एड़ी के जोड़ो में दर्द हो अथवा साइटिका दर्द हो वो इसका अभ्यास न करें।

4.6.5. कुक्कुटासन–

इस आसन में शरीर की स्थिति मुर्गे के समान **प्रतीत** होती है इसलिए इसे कुक्कुटासन कहते है।

पद्मासनं तु संस्थाप्य जानूर्वोरन्तरे करौ।
निवेश्य भूमौ संस्थाप्य व्योमस्थं कुक्कुटासनम्।।

ह0प्र0 1/23

विधि– सर्वप्रथम पद्मासन लगाएं । तत्पश्चात् धीरे से जंघाओं तथा पिण्डलियों के बीच अपने दोनों हाथों को डाले तथा दोनों हाथ की हथेलियों को भूमि पर अच्छी तरह से जमा लें (टिका दें)। धीरे से श्वास ले तथा शरीर को ऊपर उठा लें।

लाभ– इस आसन के नियमित अभ्यास से हाथ, पैर तथा कन्धे की मांसपेशियां पुष्ट होती हैं। निचले उदर के अंग पुष्ट होते हैं।

सावधानी– जोड़ो के दर्द से ग्रस्त व्यक्ति इसका अभ्यास न करें। जिन व्यक्तियों के हाथ तथा कन्धे कमजोर हो वे इसका अभ्यास सम्भल कर करें।

4.6.6. उत्तानकूर्मासन–

कूर्मासन को उठाना ही उत्तानकूर्मासन की स्थिति है। उत्तान शब्द का अर्थ उठाने से हैं।

विधि–

कुक्कुटासनबन्धस्थो दोर्भ्यां सम्बध्य कन्धराम्।
शेते कूर्मवदुत्तान एतदुत्तानकूर्मकम्।।

ह0प्र0 1/24

सर्वप्रथम कुक्कुटासन लगा ले तत्पश्चात् दोनों हाथों से गर्दन को अच्छी तरह/भली प्रकार से पकड़ ले तथा कछुएं के समान भूमि पर पीठ के बल लेट जाने को ही उत्तानकूर्मासन कहते हैं।

लाभ– इस आसन के अभ्यास से हाथ, पैर पुष्ट होते हैं। जोड़ लचीले बनते हैं। मेरूदण्ड की हल्की मालिश होती है।

सावधानी– जिन व्यक्तियों को घुटने, एड़ी के जोड़ो के दर्द हो या रीड़ की हड्डी में कोई विकार हो, साइटिका हो वो इस आसन का न करें।

4.6.7. धनुरासन–

इस आसन में शरीर की स्थिति धनुष के समान हो जाती है। इसलिए इसे धनुरासन कहते है।

विधि–

पादाङ्गुष्ठौ तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणावधि।
धनुराकर्षणं कुर्यात् धनुरासनमुच्यते।।

ह0प्र0 1/25

सर्वप्रथम पेट के बल भूमि पर लेट जाए। फिर दोनों पैर के अंगूठों को हाथों से पकड़े तथा पैरों को खींचकर कानों तक लेकर आएं। यहीं धनुरासन है।

लाभ– इसके नियमित अभ्यास से हाथ, पैर एंव कन्धों के जोड़ मजबूत तथा लचीले होते हैं। पेट की मासपेशियां बलिष्ठ होती है तथा पेट के आन्तरिक अंगों की मालिश होती है। नाभी टलना तथा मेरूदण्ड के रोग दूर होते हैं। यह आसन छाती का भी विस्तार करता है।

सावधानी– कमर दर्द, साइटिका, स्लिप डिस्क, जोड़ों में दर्द वाले रोगी इसका अभ्यास न करें। इस आसन का अभ्यास किसी योग्य गुरु के निर्देशन में ही करें।

4.6.8. मत्सेन्द्रासन–

इस आसन का नाम मत्सेन्द्रनाथ नामक प्रसिद्ध हठयोगी के नाम पर रखा गया है। इसलिए इस आसन को मत्सेन्द्रासन कहते हैं।

विधि–

वामोरुमूलार्पित दक्षपादं जानोर्बहिर्वेष्टितवामदाम्।

प्रगृह्य तिष्ठेत् परिवर्तितताङ्गः श्रीमत्स्यनाथोदितमासनं स्यात्।।

ह0प्र0 1/26

सर्वप्रथम दाएं पैर को मोड़कर बायीं जंघा के मूल पर रखें तथा बाएं पैर को मोड़कर दाएँ पैर के घुटने के बाहर रखते हुए विपरीत हाथ से बाएं पैर को पकड़े तथा बाएं हाथ को पीछे घुमाकर पीठ पर रखें तथा बाएं ओर गर्दन व कमर मोड़कर पीछे की ओर देखें। यही मत्सेन्द्रासन है।

मत्स्येन्द्रपीठं जठरप्रदीप्तिं प्रचण्डरुग्मण्डलखण्डनास्त्रम्।

अभ्यासतः कुण्डलिनीप्रबोधं चन्द्रस्थिरत्वं च ददाति पुंसाम्।।

ह0प्र0 1/27

लाभ– हठप्रदीपिकानुसार मत्सेन्द्रासन का नियमित अभ्यास करने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। इससे सभी रोगों का नाश होता है। इसके अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है तथा चन्द्रमण्डल में स्रावित होने वाला अमृत सूर्य में भस्म नहीं होता अर्थात् अमृत का बहाव रूक जाता है। इस आसन से पेट के आंतरिक अंगों की मालिश होती है। मधुमेह के रोगियों के लिए यह रामबाण है। हाथ, पैर पुष्ट होते हैं। इसका अभ्यास मेरूदण्ड को भी लोचवान बनाता है।

सावधानी– जोड़ो की समस्या से ग्रस्त, साइटिका, स्लिप डिस्क आदि से पीड़ित रोगी इस आसन का अभ्यास न करें। जिन लोगों का पेट आदि का ऑपरेशन हुआ हो वो भी इसका अभ्यास न करें।

4.6.9. पश्चिमोत्तानासन–

पश्चिम का अर्थ पीछे और तान का अर्थ है खींचाव। इस आसन में शरीर के पृष्ठ भाग को खींचा जाता है। यहीं पश्चिमोस्तानासन है।

विधि–

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ दोर्भ्यां पदाग्रद्वितयं गृहीत्वा।
जानूपरिन्यस्तललाटदेशो वसेदिदं पश्चिमतानमाहुः।।

ह0प्र0 1/28

सर्वप्रथम दोनों पैरो को फैलाकर दण्डासन में बैठ जाएं। आगे झुकते हुए दोनों हाथों से दोनों पैरों के अंगूठे पकड़ लें, तथा अपने माथे को घुटनों से लगा ले यह पश्चिमोस्तानासन कहलाता है।

लाभ–

इति पश्चिमतानमासनाग्र्यं पवनं पश्चिमवाहिनं करोति।
उदयं जठरानलस्य कुर्यादुदरे कार्श्यमरोगतां च पुंसाम्।।

ह0प्र0 1/29

हठ प्रदीपिका के अनुसार इस आसन को करने से प्राण का प्रवाह सुषुम्ना नाड़ी में होता है। शरीर में स्थित जठराग्नि प्रदीप्त होती है। पेट की अतिरिक्त चर्बी कम होती है तथा शरीर के सभी रोग समाप्त हो जाते हैं। मेरुदण्ड लचीला होता है। जंघाए पुष्ठ होती है।

सावधानी– किसी भी तरह का कमर दर्द, स्लिप डिस्क, साइटिका से ग्रस्त रोगी इसका अभ्यास बिल्कुल न करें।

4.6.10. मयूरासन– इस आसन में शरीर की स्थिति मोर के समान हो जाती है। इसलिए इसे मयूरासन कहते हैं।

विधि–

धरामवष्टभ्य करद्वयेन तत्कूर्परस्थापितनाभिपार्श्वः।
उच्चासनो दण्डवदुत्थितः खे मायूरमेतत् प्रवदन्ति पीठम्।।

ह0प्र0 1/30

सर्वप्रथम दोनों हाथों की हथेलियों को भूमि पर अच्छी तरह टिका लें फिर दोनों कोहनियों को नाभि के दोनों ओर (दाएं तथा बाएं) लगाकर पूरे शरीर को ऊपर उठा लें। पूरे शरीर का संतूलन दोनों हथेलियो पर रहेगा।

लाभ–

हरतिसकलरोगानाशु गुल्मोदरादीन्
अभिभवति च दोषानासनं श्रीमयूरम्।
बहु कदशनभुक्तं भस्मकुर्दिशेषं
जनयति जठराग्निं जारयेत् कालकूटम्।।

ह0प्र0 1/31

इसके लाभों का वर्णन करते हुए हठप्रदीपिका में कहा गया है कि इस आसन का नियमित अभ्यास करने से शीघ्र ही सारे रोगों का नाश हो जाता है। इससे गुल्म तथा उदर आदि के रोग भी दूर हो जाते हैं। यह शरीर में स्थित जठराग्नि को इतना प्रदीप्त करता है कि अधिक तथा विषाक्त भोजन भी आसानी से पच जाता है। इससे हाथ, कन्धें तथा छाती पुष्ट होती है। एंड्रिनल ग्रंथि से स्रावित होने वाले हारमोन संतुलित होते हैं।

सावधानी– इस आसन का अभ्यास करते हुए हथेलियों पर संतुलन बनाना अति आवश्यक है अन्यथा व्यक्ति आगे की ओर गिर सकता है। हाथ या कंधे कमजोर होने पर इसका अभ्यास सावधानीपूर्वक करें।

4.6.11. शवासन–

इस आसन में शरीर की स्थिति शव के समान होती है, (बिना किसी हलचल के) इसलिए इसे शवासन कहते हैं।

विधि–

उत्तानं शववद्भूमौ शयनं तच्छवासनम्।

शवासनं श्रान्तिहरं चित्तविश्रान्तिकारकम्।।

ह0प्र0 1/32

पीठ के बल भूमि पर बिना शरीर को हिलाएं डुलाएं लेट जाएं। यही शवासन है।

लाभ– इस आसन का अभ्यास करने से शारीरिक तथा मानसिक थकान मिट जाती है। यह उच्चरक्तचाप, अनिद्रा तथा मानसिक रोगों में अत्यंत लाभकारी आसन है।

सावधानी– निम्नरक्तचाप से पीड़ित रोगी इसका अभ्यास ज्यादा देर तक न करें, या किसी योग्य गुरु के निर्देशन में ही इसका अभ्यास करें।

4.6.12. सिद्धासन–

इस आसन के नाम से ही पता चलता है कि ये सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाला है, इसलिए इसे सिद्धासन कहा जाता है।

विधि–

पहली विधि

योनिस्थानकमङ्.घ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसेत्
मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम्।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्येद् भ्रुवोरन्तरम्
ह्येतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते।।

ह0प्र0 1/35

सर्वप्रथम दण्डासन में बैठे। बाएँ पैर को मोड़कर उसकी एड़ी को सींवनी नाड़ी में लगाएँ तथा दूसरे पैर की ऐड़ी को शिशन के ऊपर रखे। अपनी ठुड्डी को छाती पर लगाए तथा अपनी दृष्टि के दोनो भोहो के मध्य पर लगाते हुए इन्द्रियों को संयमित कर निश्चल बैठे। यही सिद्धासन है।

दूसरी विधि–

मेढ्रादुपरि विन्यस्य सव्यं गुल्फं तथोपरि।
गुल्फान्तरं च निक्षिप्य सिद्धासनमिदं भवेत्।।

ह0प्र0 1/36

हठप्रदीपिका में सिद्धासन की दो विधियाँ बताई है। दूसरी विधि के अनुसार– सर्वप्रथम दण्डासन में बैठे तत्पश्चात् बाएँ पैर को मोड़कर उसकी एडी को शिशन के ऊपर रखे तथा दाएँ पैर को मोड़कर उसकी एड़ी को बाएँ पैर की एड़ी के ठीक ऊपर रखे। यह भी सिद्धासन कहलाता है।

लाभ–

यमेष्विव मिताहरा अहिंसा नियमेष्विव।
मुख्यं सर्वासनेष्वेकं सिद्धाः सिद्धासनं विदुः।।
चतुरशीतिपीठेषु सिद्धमेंव सदाभ्यसेत्।
द्वासप्ततिसहस्राणां नाडीनां मलशोधनम्।।
तथैकस्मिन्नेव दृढ़े बद्धे सिद्धासने सदा।
बन्धत्रयमनायासत् स्वयमेवोपजायते।।
नासनं सिद्धसदृशं न कुम्भः केवलोपमः।
न खेचरीसमा मुद्रा न नादसदृशो लयः।।

ह0प्र0 1/38–39–42–43

यह सभी आसनों में सबसे महत्वपूर्ण है यह सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाला एकमात्र आसन है। इस आसन के अभ्यास से मोक्ष प्राप्त हो जाता है। साधक का मन विषय वासना से विरक्त हो जाता है, प्राण का प्रवाह उर्धगामी होता है। शरीर में स्थित 72000 नाड़ियों का शोधन होता है। इसके अभ्यास से निष्पत्ति अवस्था, समाधि की अवस्था प्राप्त होती है। इसके अभ्यास से स्वतः ही तीनों बंध लग जाते है। इसके महत्व को और अधिक बताते हुए स्वामी स्वात्माराम जी कहते है कि जिस प्रकार केवल कुम्भक के समय कोई कुम्भक नहीं, खेचरी मुद्रा के समान कोई मुद्रा नहीं, नाद के समय कोई लय नहीं उसी प्रकार सिद्धासन के समान कोई दूसरा आसन नहीं है।

सावधानी– इस आसन का अभ्यास गृहस्थ लोगों को लम्बे समय तक नहीं करना चाहिए। साइटिका, स्लिप डिस्क वाले व्यक्तियों को भी इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। जोड़ों आदि के दर्द से पीड़ित रोगी भी इसका अभ्यास न करें। गुदा सम्बन्धित रोगों से पीड़ित रोगी भी इसका अभ्यास न करें।

4.6.13. पद्मासन –

इस आसन में पैरों की स्थिति कमल के फूल की पंखुड़ियों के समान होती है, इसलिए इसे पद्मासन कहते हैं।

पहली विधि–
वमोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा
दक्षोरूपरि, पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम्।
अङ्गुष्ठौ, हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रामलोकयेत्।
एतद्व्याधिविनाशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते।।
ह0प्र0 1/44

सर्वप्रथम दण्डासन में बैठे तत्पश्चात् बाएँ पैर को मोड़कर दाईं जंघा के ऊपर तथा दाएँ पैर को मोड़कर बाई जंघा के ऊपर रखे। फिर दोनों हाथों को कमर के पीछे ले जाते हुए बाएँ हाथ से दाहिने पैर का अंगूठा तथा दाएँ हाथ से बाएँ पैर के अंगूठे को दृढ़तापूर्वक पकड़े। अंत में ठुड्डी की हृदय प्रदेश में लगाते हुए नासग्र दृष्टि रखे। यही पद्मासन है।

दूसरी विधि –
मतान्तरे तु
उत्तानौ चरणौ कृत्वा उरुसंस्थौ प्रयत्नतः।
उरुमध्ये तथोत्तानौ पाणी कृत्वा ततो दृशौ।।
नासाग्रे विन्यसेद्राजदन्तमूले तु जिह्वया।
उत्तम्भ्य चिबुकं वक्षस्युत्थाप्य पवनं शनैः।।

ह0प्र0 1/45—46

सर्वप्रथम दण्डासन में बैठे, बाएँ पैर को मोड़कर दाहिनी जंघा के ऊपर तथा दाएँ पैर को मोड़कर बाई जंघा के ऊपर रखें। ठुड्डी को हृदय प्रदेश में लगाएँ तथा ब्रह्माज्जली मुद्रा बनाकर जंघाओं के मध्य में रखें। धीरे—धीरे श्वास ले तथा नासाग्र दृष्टि रखते हुए जीभ को तालु के अग्र भाग में लगाएँ।

लाभ –

इदं पद्मासनं प्रोक्तं सर्वव्याधिविनाशनम्।
दुर्लभं येन केनापि धीमता लभ्यते भुवि।।

ह0प्र0 1/47

पद्मासन एक ध्यानात्मक आसन है। यही सभी प्रकार के रोगों को दूर करने वाला है। मानसिक शान्ति प्रदान करने वाला है। इसके अभ्यास से प्राण तथा अपान का मिलन होता है। इसके अभ्यास से विचित्र ज्ञान की प्राप्ति होती है।

सावधानी – जिस व्यक्तियों को जोड़ों का दर्द हो, साइटिका या स्लिप डिस्क की समस्या हो उन्हें ये अभ्यास नहीं करना चाहिए। जो लोग मोटे हो या जंघाएँ अत्यधिक चर्बीयुक्त हो उन्हें यह अभ्यास सावधानी से करना चाहिए।

4.6.14. सिंहासन –

इस आसन के नियमित अभ्यास से साधक सिंह के समान बलवान, निड़र हो जाता है। उसका चेहरा सिंह के समान कान्तिवान हो जाता है इसलिए इसे सिंहासन कहते हैं।

विधि

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत्।
दक्षिणे सव्यगुल्फं तु दक्षगुल्फं तु सव्यके।।
हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य स्वाङ्गुलीः सम्प्रसायं च।
व्यात्तवक्त्रो निरीक्षेत नासाग्रं तु समाहितः।।

ह0प्र0 1/50—51

दोनों पैरो को मोड़कर अण्डकोष के नीचे सीवनी नाड़ी के दोनो ओर (बाएँ से दाएँ), पैरों की एड़ियों को लगाएँ। तत्पश्चात दोनों हथेलियों को दोनों पैरों के घुटनों पर टिकाएँ तथा सभी अंगुलियों को फैला ले। मुँह को पूरा खोले तथा जिह्य को पूरा बाहर निकालते हुए नासाग्रदृष्टि रखें। यही सिंहासन है।

लाभ –

सिंहासनं भवेदेतत् पूजितं योगिपुङ्गवैः।
बन्धत्रियतयसंधानं कुरुते चासनोत्तमम्।।

ह0प्र0 1/52

हठप्रदीपिका में इस आसन को श्रेष्ठ बताया गया है। इस आसन के अभ्यास से तीनों प्रकार के बंधों को करने में सरलता होती है। गले में स्थित थायराइड

तथा पैराथायराइड ग्रंथि क्रियाशील होती है। चेहरे की माँसपेशियों की मसाज होती है, जिससे चेहरा सिंह के समान कान्तिवान होता है। इसके अभ्यास से जंघाएँ पुष्ट होती है।

सावधानी– घुटने, टखने एवं पंजे में दर्द की स्थिति में, अर्थराइटिस से पीड़ित व्यक्ति सावधानी से इसका अभ्यास करें।

4.6.15.भद्रासन–

इस आसन का अभ्यास महान् हठयोगियों तथा भद्र पुरुषों ने किया इसलिए इसका नाम भद्रासन पड़ा। इसी भद्रासन को कुछ लोग गोरक्षासन भी कहते हैं।

विधि–

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत्।
सव्यगुल्फं तथा सव्ये दक्षगुल्फं तु दक्षिणे।।
पार्श्वपादौ च पाणिभ्यां दृढं बद्ध्वा सुनिश्चलम्।

ह0प्र0 1/53

सर्वप्रथम दण्डासन में बैठें। फिर धीरे–से दोनों पैरों को मोड़े तथा दोनों पैरों की एड़ियों को अण्डकोष के नीचे सीवनी नाड़ी के दोनों ओर (बाएं एवं दाएं) रखें। प्रयास करें की दोनों पैरों के अग्र भाग आपस में मिले रहें। पैरों के अग्र भाग को हाथों से दृढ़तापूर्वक पकड़े रहें। यही भद्रासन है।

लाभ–

भद्रासनं भवेदेतत् सर्वव्याधिविनाशनम्।
गेरक्षासनमित्याहुरिदं वै सिद्धयोगिनः।।

ह0प्र0 1/54

इस आसन के अभ्यास से सभी रोग दूर हो जाते हैं। मूत्र–प्रणाली के रोग, प्रजनन संबधी दोष, मासिक धर्म सम्बन्धी दोष दूर हो जाते हैं। जोड़ लचीले एवं मजबूत बनते हैं। जंघाएँ मजबूत होती है तथा वहाँ जमी अतिरिक्त चर्बी कम हो जाती है।

सावधानी– जो व्यक्ति जोड़ों में दर्द की समस्या से ग्रस्त हों वे इसका अभ्यास न करें।

4.7 सारांश

हठयोग प्रदीपिका हठयोग का एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ की रचना स्वामी स्वात्माराम जी ने की थी। इस ग्रंथ में चार उपदेश दिए गए हैं। प्रथम उपदेश में के प्रथम अंग के रूप में 15 आसनों (स्वस्तिकासन, गोमुखासन, वीरासन, कूर्मासन, कुक्कुटासन, उत्तानकूर्मासन, धनुरासन, मत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन, शवासन, सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन, भद्रासन) का वर्णन किया गया है। वर्तमान समय में इन आसनों की उपादेयता सिद्ध हो रही है।

4.8 शब्दावली

1. कटि–कमर
2. नितम्ब–कुल्हा
3. पुष्ट–मजबुत
4. जठराग्नि–पाचक अग्नि
5. प्रदीप्त–बढ़ाना
6. विषाक्त–जहरीला
7. उदर–पेट
8. उष्णता–गर्मी

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हठयोग प्रदीपिका– स्वामी स्वात्माराम–कृत, संस्करण कर्ता– स्वामी दिगम्बर जी, प्रकाशक कैवल्यधाम।
2. आसन, प्राणायाम, मुद्राबंध– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. आसन किसे कहते हैं ? हठप्रदीपिका में वर्णित बैठकर किये जाने वाले किन्हीं दो आसनों कि विधि,लाभ एवं सावधानियों का वर्णन किजिए।
2. आसन शब्द की परिभाषा देते हुए हठप्रदीपिका में वर्णित किन्हीं दो आसनों की विधि, लाभ, एवं सावधानियों का वर्णन किजिए।
3. हठप्रदीपिका में वर्णित मेरूदण्ड को प्रमुख रूप से प्रभावित करने वाले किन्हीं दो आसनों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई–5 नाड़ी शोधन, सूर्यभेदन तथा उज्जायी प्राणायाम की विधि लाभ एवं सावधानियाँ

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 प्राणायाम का अर्थ एवं परिभाषा

5.3 प्राणायाम का उद्देश्य

5.4 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायाम

5.4.1 नाड़ीशोधन–विधि,लाभ,सावधानियाँ

5.4.2 सूर्यभेदन– विधि,लाभ,सावधानियाँ

5.4.3 उज्जायी– विधि,लाभ,सावधानियाँ

5.5 सारांश

5.6 शब्दावली

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

हठयोग के पांचवे अंग के रूप में प्राणायाम एक अत्यधिक प्रचलित अंग हैं। प्राणायाम वैदिक काल से ही साधना की उच्चतम अवस्था तक पहुंचने का एक महत्वपूर्ण मार्ग रहा है, परन्तु इसके चिकित्सकीय प्रभावों से भी हम अनभिज्ञ नहीं रहे। प्राचीन काल में मनीषियों ने अपने अथक शोधों द्वारा यह जानकारी प्राप्त की कि प्राणायाम एक ऐसा माध्यम हैं जिसके द्वारा हम शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति कर सकते हैं। इसके साथ ही साथ प्राणायाम हमारे समस्त रोगों को दूर करता है ऐसा हठयोग के ग्रन्थों में वर्णन मिलता हैं।

5.2 प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप ''प्राण'' शब्द का अर्थ एवं उसके भेदों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्राणायाम की परिभाषा एवं उसके प्रकारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्राणायामों के उद्देश्य के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

- हठप्रदीपिका में वर्णित प्राणायाम–नाड़ी शोधन, सूर्यभेदन तथा उज्जायी प्राणायाम की विधि,लाभ एवं सावधानियों की विस्तार से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

5.3 प्राणायाम का अर्थ एवं परिभाषा

'प्राण' शब्द शरीरस्थ जीवनी शक्ति का बोधक है। श्वास–प्रश्वास में उपयोग होने वाली वायु उसका स्थूल स्वरूप हैं, प्राण के स्थान एवं कर्म (कार्य) के अनुसार दस भेद हैं–

1.प्राण 2. अपान 3.समान 4.व्यान तथा 5.उदान को मुख्य तथा नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंन्जय गौण प्राण कहा गया है।

प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है– प्राण+आयाम अर्थात् प्राणों का आयाम, प्राणों का नियंत्रण ही प्राणायाम है। महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में कहा है कि

'तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतविच्छेदः प्राणायाम'

(योग सूत्र 2/49)

अर्थात श्वास तथा प्रश्वास की गति को अवरूद्व करना ही प्राणायाम है। कहा भी गया है कि प्राणायामों को करने से अज्ञान का आवरण नष्ट हो जाता है तथा धारणा में मन लगता है, जिससे समाधि एवं कैवल्य की प्राप्ति होती है।

5.4 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायाम

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्ट कुम्भकाः।।

ह0प्र0 2/44

अर्थात् सूर्यभेद, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी मूर्च्छा और प्लाविनी ये आठ प्रकार के कुम्भक हैं।

5.4.1. नाड़ी शोधन– नाड़ी शोधन प्राणायाम को हठप्रदीपिका के आठ प्राणायामों के अंतर्गत नहीं रखा गया है किन्तु इस प्राणायाम को अन्य 8 प्राणायामों से पूर्व तथा नियमित करने को बताया गया है। इस प्राणायाम को करने से साधकों के नाड़ी समूह तीन मास से कुछ अधिक समय में स्वच्छ एवं निर्मल हो जाते हैं। प्राण का प्रवाह सुषुम्ना नाड़ी में होने लगता है। इस प्राणायाम को एक दिन में चार बार करना चाहिए (प्रातः, मध्याह्न, सांय तथा अर्धरात्रि) तथा कुम्भकों की संख्या धीरे–धीरे 80 तक करनी चाहिए। कहा भी गया है कि बिना नाड़ी शुद्धि के अन्य 8 प्राणायाम सिद्ध नहीं होते। इसलिए इस प्राणायाम का अभ्यास साधक को नियमित एवं नियम से करना चाहिए।

विधि–

बद्धपद्मासनो योगी प्राणं चन्द्रेण पूरयेत्।
धारयित्वा यथाशक्ति भूयः सूर्येण रेचयेत्।।
प्राणं सूर्येण चाकृष्य पूरयेदुदरं शनैः।
विधिवत् कुम्भकं कृत्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत्।।
येन त्यजेत्तेन पीत्वा धारयेदनिरोधतः।
रेचयेच्च ततोऽन्येन शनैरेव न वेगतः।।

ह0प्र0 2/7–8–9

नाड़ी शुद्धि की विधि को बताते हुए स्वात्माराम जी ने लिखा है कि– सर्वप्रथम पद्मासन में बैठे। तत्पश्चात् चन्द्रनाड़ी (बाएँ नासारन्ध्र) से गहरी लम्बी श्वास लें यथासम्भव कुम्भक (श्वास को रोके) करें तथा सूर्य नाड़ी (दाएँ नासारन्ध्र) से श्वास को धीरे–धीरे बाहर छोड़े। पुनः श्वास को सूर्यनाड़ी से भरें पुनः कुम्भक करें तथा चन्द्रनाड़ी से प्रश्वास करें। इसी प्रक्रिया को धीरे–धीरे दोहराते रहें। विद्धानों ने इसका अभ्यास तीन महीने तक करने का निर्देश दिया है।

लाभ– नाड़ी शोधन जैसा की इसके नाम से ही विधित है– यह प्राणायाम शरीर में स्थित 72000 नाड़ियों का शोधन करता है। इड़ा तथा पिंगला की बीच संतुलन स्थापित करता है जिससे प्राण का प्रवाह सुषुम्ना में होता है। शरीर को निर्मल करता है। शरीर कान्तिवान तथा कृष होता है। इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है, नाद का अनुभव होता है तथा शरीर कभी भी रोग ग्रस्त नहीं होता।

सावधानी–जिन व्यक्तियों को उच्चरक्तचाप, हृदय संबधी विकार हो वो इस प्राणायाम में कुम्भक का अभ्यास न करें। साइटिका, स्लिप डिस्क आदि से पीड़ित व्यक्ति नीचे जमीन पर न बैठें, वे लोग इसका अभ्यास कुर्सी पर या गद्दे में बैठकर करें। सामान्य व्यक्ति यथासम्भव ही कुम्भक करें परेशानी होने पर कुम्भक को छोड़कर धीरे–धीरे रेचक कर दें। श्वास–प्रश्वास को धीरे–धीरे करें, वेग से न करें।

नाड़ी शुद्धि के बाद ही स्वामी स्वात्माराम जी ने आठ प्राणायामों को करने का निर्देश दिया है। वे आठ प्राणायाम इस प्रकार हैं–

अथ कुम्भकभेदाः
सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्ट कुम्भकाः।।

ह0प्र0 2/44

अर्थात् सूर्यभेद, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी मूर्च्छा और प्लाविनी ये आठ प्रकार के कुम्भक हैं।

5.5.2.सूर्यभेदन– सूर्यभेदन हठप्रदीपिका में पहला प्राणायाम है। इस प्राणायाम में बार–बार सूर्यनाड़ी का भेदन किया जाता है इसलिए इसे सूर्यभेदन या सूर्यभेदी कहा जाता है।

विधि–

आसने सुखदे योगी बद्ध्वा चैवासनं ततः।
दक्षनाडया समाकृष्य बहिस्थं पवनं शनैः।।
आकेशादानखाग्राच्च निरोधावधि कुम्भयेत्।।
ततः शनैः सव्यानाडया रेचयेत् पवनं शनेः।।
ह0प्र0 2/48–49

सर्वप्रथम किसी उर्प्युक्त स्थान (समतल) पर आसन बिछा लें, फिर किसी भी ध्यानात्मक आसन जैसे सिद्धासन, पद्मासन आदि लगा ले। कमर तथा गर्दन को सीधा रखते हुए दाएं हाथ से प्राणायाम की **प्रणव मुद्रा*** बना लें तथा बाएं हाथ से ज्ञान या चिन मुद्रा बनाकर उसको दूसरे पैर के घुटने के ऊपर रख लें। तत्पश्चात् दाएं नासारन्ध्र से धीरे–धीरे लम्बा श्वास ले यथासम्भव कुम्भक (जालन्धर बन्ध) लगाएं तथा गर्दन को सीधा कर कुम्भक को खोले और बाएं नासारन्ध्र से धीरे–धीरे प्रश्वास करें। इसी क्रिया को बार–बार दोहराएँ।

लाभ–

कपालशोधनं वातदोषघ्नं कृमिदोषहत्।
पुनः पुनरिदं कार्यं सूर्यभेदनमुत्तमम्।।
ह0प्र0 2/50

इस प्राणायाम के नियमित अभ्यास से मस्तक की शुद्धि होती है, सभी प्रकार के वातरोग दूर होते है। पेट में होने वाले कृमि दोष नष्ट हो जाते हैं। सर्दियों में इसे करने से सर्दी नहीं लगती क्योंकि यह शरीर को उष्णता देता है।

सावधानी– इस प्राणायाम को ग्रीष्म ऋतु में नहीं करना चाहिए। जिन लोगों को पित्त सम्बन्धी दोष हो एवं नकसीर फटने की समस्या हो उनके लिए यह अभ्यास वर्जित है।

5.5.3 उज्जायी

विधि–
मुखं संयम्य नाडीभ्यामाकृष्य पवनं शनैः।
यथा लगति कण्ठात्तु हृदयावधि सस्वनम्।।
पूर्ववत् कुम्भयेत् प्राणं रेचयेदिडया ततः।
श्लेष्मदोषहरं कण्ठे देहानलविवर्धनम्।।

ह0प्र0 2/51–52

सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठे। कमर, गर्दन को सीधा रखें। दोनों नासारन्ध्रों से कण्ठ को संकुचित करते हुए श्वास ले जिससे धीमे–धीमे आवाज(छोटे बच्चे के खरांटे, लहरों की ध्वनि) उत्पन्न हो तत्पश्चात् यथासम्भव कुम्भक करें फिर प्राणायाम की प्रणव मुद्रा बनाएं तथा बाएं नासारन्ध्र से धीरे–धीरे प्रश्वास करें। इस क्रिया को बार–बार दोहराएं, यहीं उज्जायी प्राणायाम हैं।

लाभ–

नाडीजलोदराधातुगतदोषविनाशनम्।

गच्छता तिष्ठता कार्यमुज्जाव्याख्यं तु कुम्भकम्।।

ह0प्र0 2/53

उज्जायी प्राणायाम के लाभों का वर्णन करते हुए हठप्रदीपिका में लिखा है कि इसका नियमित अभ्यास से सभी प्रकार के कफ सम्बंधी कण्ठदोष नहीं होते। शरीर में स्थित जठराग्नि प्रदीप्त होती है। इससे नाड़ी सम्बन्धी, जलोदर, धातु सम्बन्धी सभी दोष दूर हो जाते हैं। कहा गया है कि इस प्राणायाम को उठते–बैठते हमेशा करना चाहिए।

सावधानी– हृदय से सम्बन्धित किसी रोग या उच्च रक्तचाप वाले रोगियों को इस प्राणायाम में कुम्भक नहीं करना चाहिए। गले को (श्वास नली) अत्यधिक संकुचित न करें।

5.5 सारांश

मानव जीवन के उद्धार के लिए हमारे महान ऋषि, मुनियों ने अनेक उपाय बताए हैं, उनमें से प्राणायाम साधना एक महत्वपूर्ण साधन हैं। प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण शरीर में प्राणीक ऊर्जा के प्रवाह को नियन्त्रित करना हैं। प्राणायाम के नियमित अभ्यास से शरीर में स्थित समस्त नाड़ियों का शोधन होता है जिससे प्राण का प्रवाह नाड़ियों में सुचारू रूप से होता है जिसके परिणामस्वरूप साधक को भौतिक एवं मानसिक स्थिरता प्राप्त होती हैं। प्राणायाम के अभ्यास से सभी रोगों का नाश होता है साथ ही श्वसन संस्थान पूर्ण रूप से सक्रिय होता है। प्राणायाम के अभ्यास से केवल शारीरिक एवं मानसिक लाभ ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक उन्नति भी प्राप्त होती है। इसके अभ्यास से शरीर में सोयी हुयी शक्तियां भी जाग्रत होती हैं।

5.6 शब्दावली

1. पूरक– श्वास को अन्दर लेना।
2. कुम्भक– श्वास को रोकना।

3. रेचक– श्वास को बाहर छोड़ना।
4. प्रश्वास– सांस छोड़ना।
5. कृष– छोटा, हल्का।
6. सूर्यनाड़ी– दांयास्वर।
7. चन्द्रनाड़ी– बायांस्वर।
8. कण्ठ– गला।
9. नकसीर फटना– नाक से खून बहना।
10.

5.7 सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. हठयोग प्रदीपिका– स्वामी स्वात्माराम–कृत, संस्करण कर्ता– स्वामी दिगम्बर जी, प्रकाशक कैवल्यधाम।
2. आसन, प्राणायाम, मुद्राबंध– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

5.8 निबंधात्मक प्रश्न–

1.हठयोग प्रदीपिका के अनुसार नाड़ी शोधन प्राणायाम, एवं उज्जायी प्राणायाम की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2.प्राण के प्रकारों का वर्णन करते हुए सूर्यभेदन प्राणायाम की विधि लाभ एवं सावधानियों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई–6 सीतकारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा एवं प्लावनी प्राणायाम की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायाम

6.2.1 सीत्कारी

6.2.2 शीतली

6.2.3 भ्रस्त्रिका

6.2.4 भ्रामरी

6.2.5 मूर्च्छा

6.2.6 प्लाविनी

6.4 सारांश

6.5 शब्दावली

6.6 निबन्धात्मक प्रश्न

6.7 सन्दर्भग्रन्थ सूची

6.1 प्रस्तावना–

पिछली इकाई में आपने हठप्रदीपिका में वर्णित नाड़ी शोधन, सूर्यभेदन तथा उज्जायी प्राणायाम की विधि लाभ एवं सावधानियॉ के बारे में अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप हठप्रदीपिका में वर्णित सीतकारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा एवं प्लावनी प्राणायाम की विधि, लाभ एवं सावधानियो के बारे में अध्ययन करोगें। हठयोग के ये अभ्यास देखने में अवश्य सरल लगते है पर जिज्ञासु साधकों को चाहिए कि एक उचित मार्गदर्शन में इन अभ्यासो को करें।

6.2 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप हठप्रदीपिका में वर्णित प्राणायाम–सीत्कारी, शीतली, भ्रस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा एवं प्लाविनी की विधियों के बारें में विस्तार से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप हठप्रदीपिका में वर्णित प्राणायाम–सीत्कारी, शीतली, भ्रस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा एवं प्लाविनी के लाभों के बारें में विस्तार से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप हठप्रदीपिका में वर्णित प्राणायाम–सीत्कारी, शीतली, भ्रस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा एवं प्लाविनी की सावधानियों के बारें में विस्तार से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

6.3 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायाम

6.3.1 सीत्कारी– सीत्कारी प्राणायाम की विधि का वर्णन हठप्रदीपिका में इस प्रकार है।

विधि–

सीत्कां कुर्यात्तथा वक्त्रे घ्राणेनैव विजृम्भिकाम्।
एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः।।

ह0प्र0 2/54

अर्थात् सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठे। दोनों हाथों को ज्ञान या चिन मुद्रा में रखें। मुख को खोले, दोनों जबड़ों को (दांतों को) आपस में मिला ले तथा सीत्कार की आवाज उत्पन्न कर श्वास अंदर ले तत्पश्चात् यथासंभव कुम्भक करें तथा दोनों नासारन्ध्रों से प्रश्वास करें।

लाभ–

योगिनीचक्रसम्मान्यः सृष्टिसंहारकारकः।
नक्षुधा न तृषा निद्रा नैवालस्यं प्रजायते।।
भवेत् स्‍ वच्छन्ददेहस्तु सर्वोपद्रववर्जितः।
अनेन विधिना सत्यं योगीन्द्रो भूमिमण्डले।।

ह0प्र0 2–55–56

इसका नियमित अभ्यास करने से साधक कामदेव के समान सुंदर हो जाता है। साधक योगिनी समूहों द्वारा प्रशंसित होता है। वह सृष्टि और संहार करने योग्य हो जाता है। इसके अभ्यास से भूख–प्यास संतुलित होती है तथा साधक को निद्रा या सुस्ती नहीं सताती। साधक का अपने शरीर पर पूरा नियंत्रण हो जाता है। वह सभी प्रकार के उपद्रवों से बचा रहकर इस पृथ्वी पर एक महान योगी होता है। इस प्राणायाम के अभ्यास से अम्ल–पित्त आदि की समस्याएं दूर होती है। मुख की दुर्गन्ध एवं पायरिया आदि रोग नहीं होते हैं।

सावधानी– जिन व्यक्तियों को अत्यधिक ठण्ड लगती हो या कफ सम्बन्धी दोष हों उन्हें इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। यह शीत प्रकृति प्राणायाम है इसलिए इसका अभ्यास सर्दियों में नहीं करना चाहिए।

6.3.2 शीतली

विधि–

जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत् कुम्भसाधनम्।
शनकैर्घ्राणरन्ध्राभ्यां रेचयेत् पवनं सुधीः।।

ह0प्र0 2/57

अर्थात् किसी भी ध्यानात्मक आसनं में बैठे, धीरे से मुँह खोलें और जीभ को बाहर निकालें तत्पश्चात जीभ को इस प्रकार मोड़े की वह पक्षी की चोंच के समान हों जाए फिर धीरे–धीरे जीभ से ही श्वास अन्दर खींचे, जीभ को अंदर कर यथासम्भव कुम्भक करें तथा दोनों नासारन्ध्रों से धीरे–धीरे प्रश्वास करें। इस क्रिया को बार–बार दोहराए, यही शीतली प्राणायाम है।

लाभ–

गुल्मप्लीहादिकान् रोगान् ज्वारं पित्तं क्षुधा तृषाम्।
विषाणि शीतली नाम कुम्भकोऽयं निहन्ति च।।

ह0प्र0 2/58

इस प्राणायाम के नियमित अभ्यास से वायुगोला, तिल्ली जैसे भंयकर रोग नहीं होते। बुखार और पित्त सम्बन्धी विकार दूर हो जाते हैं। भूख–प्यास नियंत्रित हो जाती हैं। इससे सभी रोग तथा विष का प्रभाव भी, नष्ट हो जाता है। मुँह के छाले, दुर्गंध, दांतो के रोग दूर हो जाते हैं।

सावधानी– जिन लोगों को अत्यधिक ठण्ड लगती हो, कमजोर हो, कफ सम्बन्धी रोग हो उन्हें यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

6.3.3 भस्त्रिका

विधि–

ऊर्वोरूपरि संस्थाप्य शुभे पादतले उभे।
प्द्मासनं भवेदेतत् सर्वपापप्रणाशनम्।।
सम्यक् पद्मासनं बद्ध्वा समग्रीवोदरं सुधीः।
मुखं संयम्य यत्नेन प्राण घ्राणेन रेचयेत्।।
यथा लगति हत्कण्ठे कपालावधि सस्वनम्।
वेगेन पूरयेच्चापि हत्पद्मावधि मारुतम्।
पुनर्विरेचयेत्तद्वत् पूरयेच्च पुनःपुनः।।

यथैव लोहकरेण भस्त्रा वेगेन चाल्यते।
तथैव स्वशरीरस्थं चालयेत् पवनं धिया।।

यदा श्रमो भवेद्देहे तथा सूर्येण पूरयेत्।।
यथोदरं भवेत् पूर्ण पवनेन तथा लघु।
धारयेत्रासिकां मध्यातर्जनीभ्यां विना दृढम्।
विधिवत् कुम्भकं कृत्वा रेचयेदिडयानिलम्।।

ह0प्र0 2—59—60—61—62—63—64

अर्थात् भस्त्रिका प्राणायाम को करने से पूर्व सर्वप्रथम साधक पद्मासन में बैठे तथा गर्दन एवं शरीर को बिल्कुल सीधा रखें, मुंह को बन्द रखें तथा नासिका द्वारा श्वास को यत्नपूर्वक बाहर छोड़े। इससे साधक वायु स्पर्श का अनुभव हृदय, कण्ठ और कपाल तक करेगा। इसके बाद साधक तेजी से वायु को पूरित (अन्दर ले) करे तथा तेजी से ही छोड़े। इस क्रिया को वेग से बार—बार करें, जैसे लुहार धौंकनी को तेजी से चलाता है। जब शरीर थकान का अनुभव करें तो दाएं हाथ से प्रणव मुद्रा बनाकर, दाएं नाक से श्वास अन्दर लें, यथासम्भव कुम्भक करें (जालंधर बंध के साथ) तथा धीरे—धीरे बाएं नाक से श्वास को बाहर छोड़ दे।

लाभ—

वातपित्तश्लेष्महरं शरीराग्निविवर्धनम्।।
कुण्डलीबोधकं क्षिप्रं पवनं सुखदं हितम्।
ब्रह्मनाडीमुखेसंस्थकफाद्यर्गलनाशनम्।।
सम्यग्गात्रसमुद्भूतगन्थित्रयविभेदकम्।
विशेषेणैव कर्तव्यं भस्त्राख्यं कुम्भकंत्विदम्।।

ह0प्र0 2/65—66—67

यह प्राणायाम त्रिदोष नाशक है अर्थात् वात—पित्त—कफ से होने वाले सभी रोगों का दूर करता है। जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। यह प्राणायाम कुण्डलिनी को जागृत करता है, शरीर में स्थित तीनों ग्रन्थियों का भेदन करता है। यह शरीर को ऊष्मा प्रदान करता है। इसलिए इसका अभ्यास सर्दियों में करना चाहिए। जिन लोगों को सर्दी, खांसी, जुखाम ज्यादा या बार—बार लगता हो उन्हें इसका अभ्यास नियमित करना चाहिए।

6.3.4 भ्रामरी

विधि—

वेगाद् घोषं पूरकं भृङ्गनादम्
भृङ्गीनादं रेचकं मन्दमन्दम्।
योगीन्द्राणामेवमभ्यासयोगात्
चित्ते जाता काचिदानन्दलीला।।

ह0प्र0 2/68

अर्थात् किसी भी ध्यानात्मक आसन में शान्त भाव में बैठे । फिर भ्रमर (नर) के समान वेग से गुंजन करते हुए श्वास अंदर ले तत्पश्चात कुंभक करे फिर भ्रमरी (मादा) के समान गुंजन कर धीरे—धीरे प्रश्वास करें।

लाभ– भ्रामरी के अभ्यास से मन शान्त होता है, आनंद का अनुभव होता है। सभी प्रकार के मानसिक रोग दूर होते हैं। गले में स्थित ग्रंथियों की मसाज होती हैं।

सावधानी– पूरक तथा रेचक करते हुए धीरे–धीरे ही श्वास–प्रश्वास करें। गुंजन करते हुए स्वर को मध्यम तथा एक स्वर में रखें। अत्यधिक तेज स्वर या वेग का प्रयोग न करें। एक चक्र पूरा होना पर एक–दो सामान्य श्वास प्रश्वास करे तभी दूसरा चक्र प्रारम्भ करें।

6.3.5 मूर्च्छा

विधि–

पूरकान्ते गाढतरं बद्ध्वा जालन्धरं शनैः।
रेचयेन्मूर्च्छनाख्येयं मनोमूर्च्छा सुखप्रदा।।

ह0प्र0 2/69

अर्थात् सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठे। कुछ देर सामान्य श्वास–प्रश्वास कर शरीर–मस्तिष्क को शान्त करें (आराम दें), फिर पूरक करें तत्पश्चात् दृढ़ता से जालन्धर बंध लगाएं तथा कुछ देर बाद बहुत धीमे–धीमे श्वास को बाहर छोडे।

लाभ– इस प्राणायाम के अभ्यास से अत्यधिक मन को मूर्च्छा प्रदान करने वाले परमानंद की प्राप्ति होती है। यह स्थिति साधक के लिए बहुत ही आनंदकारी होती है।

सावधानी– जो लोग अत्यधिक कमजोर हो, मिर्गी, उच्चरक्तचाप या हृदय आघात से पीड़ित हो उन्हें यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

6.3.6 प्लाविनी

विधि–

अन्तः प्रवर्तितोदारमारुतापूरितोदरः।
प्यस्यगाधेऽपि सुखात् प्लवते पद्मपत्रवत्।।

ह0प्र0 2/70

अर्थात् किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठें। गहरा, लम्बा पूरक करते हुए उदर को अत्यधिक मात्रा में वायु से पूरी तरह से भर कर कुम्भक करना ही प्लावनी प्राणायाम कहलाता है।

लाभ– हठप्रदीपिका के अनुसार इसका नियमित अभ्यास करने वाला साधक कभी भी जल में नहीं डूबता वह तो जल में कमल के पत्ते के समान तैरता रहता है।

सावधानी– इस प्राणायाम का अभ्यास नियमित प्राणायाम करने वाले साधकों को ही करना चाहिए, अर्थात् जिन साधकों ने पूर्व के प्राणायामों को सिद्ध कर लिया हो। यह अभ्यास प्रारम्भिक या सामान्य साधक के लिए नहीं है।

6.4 सारांश

प्राणायाम हठयोग का एक महत्वपूर्ण अंग है। कई प्राणायाम त्रिदोष नाशक होते है अर्थात् वात–पित्त–कफ से होने वाले सभी रोगों का दूर करते है। कई जठराग्नि को प्रदीप्त करते है। कई प्राणायाम कुण्डलिनी को जागृत करते है तो कई शरीर में स्थित तीनों ग्रन्थियों का भेदन करते है। कई शरीर को ऊष्मा प्रदान करता है। इसलिए ऐसे प्राणायामों का अभ्यास सर्दियों में करना चाहिए। जिन लोगों को सर्दी, खांसी, जुखाम ज्यादा या बार–बार लगता हो उन्हें गरम प्राणायामों का अभ्यास नियमित करना चाहिए। जिज्ञासु पाठको को चाहिए कि एक उचित मार्गदर्शन में ही इनका अभ्यास करें।

6.5 शब्दावली

1. निद्रा–नींद
2. शीत–ठंडा
3. त्रिदोष– तीन दोष(वात,पित्त,कफ)
4. परमानन्द–अत्यधिक आनन्द
5. विकार–रोग या दोष
6. विष– जहर

6.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हठयोग प्रदीपिका– स्वामी स्वात्माराम–कृत, संस्करण कर्ता– स्वामी दिगम्बर जी, प्रकाशक कैवल्यधाम।
2. आसन, प्राणायाम, मुद्राबंध– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती।

6.7 निबंधात्मक प्रश्न

1. हठयोग प्रदीपिका में वर्णित भ्रस्त्रिका एवं शीतली प्राणायाम की विधि, लाभ एवं सावधनियों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2. हठयोग प्रदीपिका में वर्णित भ्रामरी एवं मूर्च्छा प्राणायाम की विधि, लाभ एवं सावधनियों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई–7 धौति, वस्ति, नौलि की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 षटकर्म का परिचय एवं अर्थ

7.4 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित षटकर्म

7.4.1 धौति– विधि,लाभ,सावधानियाँ

7.4.2 वस्ति– विधि,लाभ,सावधानियाँ

7.4.3 नौलि– विधि,लाभ,सावधानियाँ

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 निबंधात्मक प्रश्न

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.1 प्रस्तावना

हठयोग साधना में षटकर्मों का विस्तार से वर्णन मिलता है, क्योंकि हठयोग के मनीषियों इस बात पर बल देते हैं कि शरीर में स्थित 72,000 नाड़िया मलविहिन बनी रहें, और उनमें प्राण शक्ति बिना रूके गति से चलती रहें। यदि शरीर में वात, पित्त, कफ असन्तुलित हो जाए तो साधक सर्वप्रथम षटकर्मों का अभ्यास कर शरीर में स्थित वात, पित्त, कफ को साम्यवस्था में लाएं जिससे वह योग साधना को आसानी से करने में समर्थ हो जाएं।

7.2 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप षटकर्मों का अर्थ एवं उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- षटकर्मों के प्रकारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

- धौति, वस्ति, नौलि की विधि , लाभ एवं सावधानियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

7.3 षटकर्म का परिचय एवं अर्थ

षट्कर्म शब्द का अर्थ है, छः ऐसी क्रियायें जिनके माध्यम से शरीर का शोधन किया जाता है। षट्कर्म दो शब्दों से बना है– षट्+कर्म, षट् का अर्थ छ, कर्म का अर्थ क्रियायें। हठयोग प्रदीपिका में शरीर की शुद्धि के लिए जिन छः क्रियाओं का वर्णन किया गया है उन्हें षट्कर्म कहा जाता है। यह शोधन क्रियायें कपाल प्रदेश से गुदा द्वार तक की आन्तरिक शुद्धि के प्रयोग में लायी जाती है। जिस प्रकार आर्युवेद में शरीर के शोधन के लिए पंचकर्म चिकित्सा का वर्णन है, उसी प्रकार हठयोग के साधकों के लिए आन्तरिक शुद्धि एवं वात, पित्त, कफ को सन्तुलित करने के लिए षट्कर्मों का वर्णन मिलता है। योगी स्वात्माराम जी ने भी अपने ग्रन्थ हठयोग प्रदीपिका में भी इन शुद्धि क्रियाओं का वर्णन किया है और शरीर शुद्धि (आन्तरिक शुद्धि) के लिए इनके प्रयोग को अत्यन्त आवश्यक माना है।

7.4 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित षट्कर्म

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते।।

ह0प्रदीपिका 2/22

अर्थात–धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि एवं कपालभाति ये छः शोधन क्रियाएँ कही गई हैं।

7.5.1 धौति

हठप्रदीपिका में शरीर में स्थित 72000 नाड़ियों का शोधन करने के लिए षट् क्रियाओं का भी उल्लेख किया गया है। इन षट् क्रियाओं से आन्तरिक शोधन होता है। धौति सबसे पहला षट्कर्म है। इसकी विधि बताते हुए कहा गया है कि–

विधि–
चतुरङ्गुलविस्तारं हस्तपंचदशायतम्।
गुरूपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत्।
पुनः प्रत्याहरेच्चैतदुदितं धौतिकर्म तत्।।

ह0प्र0 2/24

अर्थात् सर्वप्रथम उत्कट आसन में बैठकर, चार अंगुल चौड़ा, पन्द्रह हाथ लम्बा, स्वच्छ कपड़ा, गुनगुने जल में भली प्रकार से भिगोकर किसी गुरू के निर्देशन के अनुसार धीरे–धीरे निगले। पूरा निगलने के बाद लगभग आधा हाथ कपड़ा मुंह के बाहर ही

छोड़े तत्पश्चात् कपड़े (निगले हुए) को धीरे–धीरे मुँह से बाहर निकालें। यही धौति क्रिया है।

लाभ–
कासश्वासप्लीहकुष्टं कफरोगाश्च विंशतिः।
धौतिकर्मप्रभावेन प्रयान्तयेव न संशयः।।

ह0प्र0 2/25

अर्थात् धौति के लाभों का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है कि जो साधक धौति का अभ्यास करता है उसे विभिन्न प्रकार के रोग जैसे खाँसी, दमा, तिल्ली तथा कुष्ठ आदि रोग नहीं होते। बीस प्रकार के कफ विकार दूर हो जाते हैं। इससे पूरी आहार नाल, आमाशय आदि की पूरी सफाई हो जाती है।

सावधानी– धौति करते समय बहुत सी सावधानी बरतनी चाहिए। सर्वप्रथम धौति करते समय गुरू का होना अति आवश्यक है। धौति खाते समय अत्यधिक धैर्य की आवश्यकता होती है, मन को दृढ़ करना पड़ता है। धौति निकलने में दिक्कत होने पर गुनगुना नमकीन जल पीएं। धौति को निकालते हुए धीरे–धीरे निकाले, तेजी से निकालने पर खून आदि निकल सकता है। जो लोग धौति को पहली बार कर रहे हैं वह धौति पर घी या शहद लगा सकते हैं। धौति करने से पूर्व रात्रि हल्का भोजन या भोजन न करें।

7.5.2 वस्ति– वस्ति शरीर की बड़ी आंत की सफाई करती है। इसको करने की विधि इस प्रकार हैं–

विधि–
नाभिदघ्नजले पायुन्यस्तनालोत्कटासनः।
आधाराकुंचन कुर्यात् क्षालनं बस्तिकर्म तत्।।

ह0प्र0 2/27

अर्थात् सर्वप्रथम साधक को नाभिपर्यन्त किसी स्वच्छ जल में जाकर गुदा में एक स्वच्छ नली डालकर उत्कटासन में बैठना चाहिए। तत्पश्चात् साधक को अपने गुदा को संकुचित कर जल को गुदामार्ग से अन्दर प्रविष्ट कराकर अन्दर के अंगों को धोना चाहिए। यही वस्ति क्रिया है।

लाभ–
गुल्मप्लीहोदरं चापि वातपित्तकफोद्भवाः।
बस्तिकर्मप्रभावेन क्षीयन्ते सकलामयाः।।
धात्विन्द्रियान्तः करणाप्रसादं दद्याच कान्तिं दहनप्रदीप्तिम्।
अशेषदोषोपचयं निहन्यादभ्यस्यमानं जलबस्तिकर्म।।

ह0प्र0 2/28–29

वस्ति के लाभों का वर्णन करते हुए हठप्रदीपिका में लिखा है कि– इसके अभ्यास से शरीर के विभिन्न रोग जैसे वायुगोला, तिल्ली, जलोदर तथा त्रिदोषों (वात, पित्त कफ) के विकृत होने से होने वाले सभी दोष दूर हो जाते हैं। शरीर की धातुएं पुष्ठ होती हैं। मन को प्रसन्नता मिलती हैं, जठराग्नि प्रदीप्त होती हैं तथा शरीर कान्तिवान तथा इन्द्रियां बलिष्ठ होती हैं।

सावधानी– जल वस्ति करते हुए ध्यान रखें कि जल रूका या प्रदूषित न हों। गुदा में जो नली डालनी हो वह शुद्ध हो। किसी भी प्रकार के गुदा के इनफैक्शन में इसका अभ्यास न करें।

7.5.3 नौलि

विधि–

अमन्दावर्तवेगेन तुन्दं सव्यापसवयतः।
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धैः प्रचक्ष्यते।।

ह0प्र0 2/34

अर्थात् सर्वप्रथम श्वास को बाहर छोड़कर हाथों को घुटनों पर रखें। कन्धों को सामने झुकाए तत्पश्चात् उड्डियान बंध लगाकर नलों को सामने की ओर इकठ्ठा करे फिर तेज गति से उदर को दाएं से बाएं तथा बाएं से दाएं घुमाएं । इसे ही नौलि कहा गया है।

लाभ–

मन्दाग्निसंदीपनपाचनादिसंधायिकानन्दकरी सदैव।
अशेषदोषामयशोषणी च हठक्रियामौलिरियं च नौलिः।।
ह0प्र0 2/35

इसके लाभों का वर्णन करते हुए कहा है कि इससे उदर प्रदेश की सभी व्याधियां जैसे मन्द–जठराग्नि, पाचन सम्बन्धी दोष आदि नष्ट हो जाते हैं। यह उदर के सभी अंगों की मालिश करता है तथा उदर की मांस पेशियों को पुष्ट करता है।

सावधानी– यह अभ्यास थोड़ा कठिन है इसलिए इसका अभ्यास संभल कर करना चाहिए। हार्निया या अल्सर आदि रोगों में इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। जिन व्यक्तियों का पेट अत्यधिक कमजोर हो उन्हें धीरे–धीरे ही इसका अभ्यास करना चाहिए। नौलि को घुमाने से पहले धीरे–धीरे घुमाएं वेग से नहीं।

7.5 सारांश

षट्कर्मों का मुख्य उद्देश्य है शरीर का आन्तरिक शोधन। षट्कर्मों का नियमित अभ्यास शरीर को आन्तरिक रूप से शुद्ध करके मलों का नाश करता है, जिससे शरीर रोग मुक्त,

स्वस्थ एवं दीर्घायु होता है। षट्कर्म के द्वारा शरीर कपाल से गुदाद्वार तक की शुद्धि को प्राप्त करता है। षट्कर्मों के अभ्यास से शरीर में स्थित वात, पित्त, कफ साम्यवस्था में रहते हैं। इसके नियमित अभ्यास से नाड़ियों निर्मल एवं स्वच्छ होती है। जिसके फलस्वरूप प्राण का प्रवाह नाड़ियों में आसानी से होता रहता है और साधक अपनी साधना को बिना किसी रूकावट के पूरा करता है।

7.6 शब्दावली

1. अमाशय–पेट
2. नाभि पर्यन्त– नाभि तक
3. प्रविष्ट– प्रवेश
4. कान्तिवान– चमक
5. विकृत– बिगड़ जाना
6. बलिष्ठ– मजबूत

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.हठयोग प्रदीपिका– स्वामी स्वात्माराम–कृत, संस्करण कर्ता– स्वामी दिगम्बर जी, प्रकाशक कैवल्यधाम।

2.आसन, प्राणायाम, मुद्राबंध– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती।

7.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. षट्कर्म का परिचय देते हुए हठयोग प्रदीपिका में वर्णित नौलि की विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए।

2. हठयोग प्रदीपिका में वर्णित धौति, एवं वस्ति की विधि, लाभ एवं सावधानियों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई–8 नेति, त्राटक एवं कपालभाति की विधि लाभ एवं सावधानियाँ

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य

8.3 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित षटकर्म

8.3.1 नेति– विधि,लाभ,सावधानियाँ

8.3.2 त्राटक–विधि,लाभ,सावधानियाँ

8.3.3 कपालभाति–विधि,लाभ,सावधानियॉ

8.4 सारांश

8.5 शब्दावली

8.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.7 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने हठप्रदीपिका में वर्णित षटकर्मो (धौति, वस्ति, नौलि) की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप नेति, त्राटक एवं कपालभाति की विधि लाभ एवं सावधानियों का वर्णन किया जा रहा है। यौगिक षटकर्म योग का एक अभिन्न अंग है। स्वात्माराम जी ने शरीर शुद्धि एवं राजयोग की प्राप्ति के लिए विविध षटकर्मो का वर्णन किया है।

8.2 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप नेति, त्राटक एवं कपालभाति की विधि की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप नेति,त्राटक, कपालभांति के लाभों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप नेति,त्राटक, कपालभांति को करते हुए किन–किन सावधानियां को ध्यान में रखना चाहिए। उनकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

8.3 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित षट्कर्म

8.3.1 नेति

विधि–

सूत्रं वितस्ति सुस्निग्धं नासानाले प्रवेशयेत्।

मुखान्निर्गमयेच्चैष नेतिः सिद्धैर्निगद्यते।।

ह0प्र0 2/30

अर्थात् स्वात्माराम जी यहाँ सूत्र नेति का ही वर्णन किया है। उन्होनें कहा है कि लगभग 9 इंच लम्बी एवं चिकनी सूत्र जो कि विशेष रूप में तैयार की गई हो, को किसी एक नासिका में डाले तथा धीरे–धीरे उसे मुख से बाहर निकालें । इसी क्रिया को पुनः दूसरी नासिका से भी करें। इसे योगीजन नेति कहते हैं।

लाभ–

कपालशोधनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी।

जत्रूर्ध्वजातरोगोघं नेतिराशु निहन्ति च।।

ह0प्र0 2/31

नेति के लाभों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि नेति करने से कपाल का शोधन होता है। इससे आंखों की रोशनी तेज होती है, साधकों को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। कन्धे के ऊपर के सभी रोग दूर हो जाते हैं जुकाम, एलर्जी, साइनोसाइटिका आदि सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। नाक की बढ़ी हुई हड्डी भी सूत्रनेति के बिल्कुल ठीक हो जाती है।

सावधानी– सूत्र नेति को नासिका में धीरे–धीरे डालें, जल्दी न करें अन्यथा नाक कें अंदर से खून निकल सकता हैं। घाव होने पर नेति न करें। सूत्र को अच्छी तरह घी आदि से चिकना कर लें। सूत्र नेति करने से पूर्व हाथ के नाखून आदि काट ले अन्यथा सूत्र को मुंह से बाहर निकालते हुए घाव हो सकता है। सूत्र को गरम पानी से धोए।

8.3.2 त्राटक–

विधि–

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।

अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम्।।

ह0प्र0 2/32

अर्थात् सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में स्थिर होकर बैठें। तत्पश्चात् अपने से तीन–चार फुट दूर कोई भी सूक्ष्म वस्तु जैसे मोमबत्ती की लौ, दीपक की लौ आदि को लगातार देखते रहें जब तक की दोनों आंखों से आंसू न आ जाए। इसके बाद दोनों हाथों को रगड़कर दोनों आंखों पर लगाएं। कुछ देर आंखों को बंद कर आराम करें उसके बाद पुनः इसी क्रिया को दोहराएं। विद्वानों ने इसे ही त्राटक कहा है।

लाभ–

मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम्।

यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेटकम्।।

ह0प्र0 2/33

इसका नियमित अभ्यास करने वाले साधक को कभी भी नेत्र सम्बन्धी रोग नहीं होता है। यह तन्द्रा आदि को भी दूर करता है। आंखों की रोशनी बहुत तेजी से बढ़ती है। साधक को भूत–भविष्य सभी अर्थात् दिव्य दृष्टि प्राप्त होती हैं। वह त्रिकालदर्शी हो जाता है। विद्वानों ने इसे स्वर्ण की पेटी के समान मूल्यवान बताया है अतः इसकी रक्षा करना अति आवश्यक है।

सावधानी– त्राटक का अभ्यास धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिए। वस्तु की उचित दूरी बनाए रखना अति आवश्यक है। आंखें थकने पर उनकों आराम देना भी बहुत जरूरी है।

8.3.3 कपालभाति

विधि–

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी।।

ह0प्र0 2/36

सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में स्थिर होकर बैठें। तत्पश्चात् वेग से लोहार की धौकनी के समान श्वास–प्रश्वास (रेचक–पूरक) करें। यहीं कपालभाति हैं।

लाभ– कपालभाति का अभ्यास कफ सम्बन्धी विकारों को दूर करता हैं। कफ बढने पर कफ को तुरंत नासिका मार्ग से बाहर फेंकता है। कपाल प्रदेश का शोधन कर उसे कान्तिवान बनाता है तथा चेहरे पर चमक लाता है।

सावधानी– कपालभाति करते हुए केवल नाक का ही प्रयोग करें। मुंह को विकृत न करें। होठों को समान्य रहने दें। उच्च रक्तचाप , हृदय आघात वाले व्यक्ति इसका अभ्यास न करें।

8.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने हठप्रदीपिका में वर्णित नेति, त्राटक एवं कपालभाति की विधि लाभ एवं सावधानियाँ का अध्ययन किया। नेति के बारे में स्वात्माराम जी कहते है 9 इंच लम्बी एवं चिकनी सूत्र जो कि विशेष रूप में तैयार की गई हो, को किसी एक नासिका में डाले तथा धीरे–धीरे उसे मुख से बाहर निकालें । इसी क्रिया को पुनः दूसरी नासिका से भी करें। इसे योगीजन नेति कहते हैं। त्राटक के बारे में स्वात्माराम जी कहते है सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में स्थिर होकर बैठें। तत्पश्चात् अपने से तीन–चार फुट दूर कोई भी सूक्ष्म वस्तु जैसे मोमबत्ती की लौ, दीपक की लौ आदि को लगातार देखते रहें जब तक की दोनों आंखों से आंसू न आ जाए। इसके बाद दोनों हाथों को रगड़कर दोनों आंखों पर लगाएं। कुछ देर आंखों को बंद कर आराम करें उसके बाद पुनः इसी क्रिया को दोहराएं। विद्वानों ने इसे ही त्राटक कहा है। कपालभाति के बारे में स्वात्माराम कहते है वेग से लोहार की धौकनी के समान श्वास–प्रश्वास (रेचक–पूरक) करें।

8.5 शब्दावली

1. तन्द्रा–आलस्य।
2. त्रिकालदर्शी– तीनों कालों को देखने वाला।
3. स्वर्ण–सोना।
4. वेग–तेजी से।
5. विकार– बिमारी।

8.6 सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. हठयोग प्रदीपिका– स्वामी स्वात्माराम–कृत, संस्करण कर्ता– स्वामी दिगम्बर जी, प्रकाशक कैवल्यधाम।
2. आसन, प्राणायाम, मुद्राबंध– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती।

8.7 निबंधात्मक प्रश्न

1.नेत्र की ज्योति बढ़ाने के लिए हठयोग प्रदीपिका में वर्णित षट्कर्म की विधि,लाभ, एवं सावधानियों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2.हठयोग प्रदीपिका के अनुसार कपालभांति का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई–9 बन्ध एवं मुद्रा का अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य एवं महत्व

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 बंध का अर्थ एवं परिभाषा

9.4 मुद्रा का अर्थ एवं परिभाषाए

9.5 मुद्रा एवं बंध का उद्देश्य

9.6 मुद्रा तथा बंध का महत्त्व

9.7 सारांश

9.8 शब्दावली

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई से हम हठयोग के महत्वपूर्ण विविध पक्षों का अध्ययन किया। हठयोग के ग्रन्थ कहते हैं कि मुद्रा बहुमूल्य साधन है जो कुण्डलिनी का जागरण करके साधक को लक्ष्य तक पहुँचाती है इसे सोने की पिटारी की तरह गुप्त रखना चाहिए। वर्तमान में मुद्राओं पर भी शोध अनुसंधान उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। मुद्राओं का सम्बन्ध शारीरिक स्वास्थ्य से है पर इसके सूक्ष्म प्रभाव हमारे मन पर भी पड़ते हैं। मुद्राओं की सिद्धि होने पर साधक कैवल्य की प्राप्ति कर लेता है।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप–

- मुद्रा का अर्थ व परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे।
- मुद्रा व बंध के उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
- मुद्रा व बन्ध के महत्व को जान सकेंगे।
- नाद को जान सकेंगे।

9.3 बंध का अर्थ एवं परिभाषा

योगाभ्यास का यह छोटा परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण वर्ग है। यह अन्तः शारीरिक प्रक्रिया है। इस अभ्यास के द्वारा व्यक्ति शरीर के विभिन्न अंगों तथा नाडियों को नियंत्रित करने में समर्थ होता है। बन्ध–बन्धने धातु में धञ् प्रत्यय करके बंध शब्द बनता है जिसका अर्थ है बाँधना या नियंत्रित करना। जिस प्रक्रिया द्वारा शरीर के विभिन्न आन्तरिक अवयवों को बांधकर अथवा नियंत्रित करके साधना में प्रवृत्ति होती है। वह क्रिया बंध कहलाती है। बंध का मतलब होता है बंद करना, बांधना, बद्ध करना, जैसे ताला लगा देना। शरीर के विशेष भाग का नाड़ी–स्नायुपेशी जाल आंकुचित किया जाता है। शरीर के भिन्न–भिन्न अंगों को धीरे से, परन्तु शक्तिपूर्वक संकुचित एवं कड़ा किया जाता है। इससे आन्तरिक अंगों की मालिश होती है।

योग के दृष्टिकोण से बंध का प्रयोग प्राणायाम के समय अति आवश्यक है। इसके द्वारा प्राण को नियंत्रित किया जाता है जिससे वह अनिच्छित जगह न जा सके। जहाँ प्राण पहुँचेगा, उसी अंग पर उसका प्रभाव पड़ेगा। अतः बन्ध का प्रयोग करके प्राण को नियंत्रित करके इच्छित स्थान पर उसको ले जाना सम्भव हो जाता है। कहा जा सकता है कि शरीर के अंगो को संकुचित करके प्राण को नियंत्रित करने के लिए वृत्तियों को अन्तर्मुखी करने की प्रक्रिया का नाम बंध है। जिससे आन्तरिक अंग व स्नायु स्वस्थ तथा क्रियाशील होते हैं। बंध शारीरिक अभ्यास हैं। बंध आध्यात्मिक शक्ति की उत्पत्ति का सूचक है।

9.4 मुद्रा का अर्थ एवं परिभाषाए

हठयोग के ग्रंथो में मुद्रा शब्द हर स्थान पर मिलता है। हठयोग के महत्त्वपूर्ण अभ्यासों में मुद्राओं का अभ्यास महत्वपूर्ण है। सर्वप्रथम मुद्रा का ज्ञान आदि गुरु शिवनी ने अपनी प्रथम शिष्या पार्वती जी को दिया।

'मुद्रा' शब्द का निर्वचन उपादि कोष में इस प्रकार किया गया है–

मोदन्ते हष्यन्ति यया सा मुद्रा यन्त्रिता सुवर्णादि धातुमया वा'

अर्थात् जिसके द्वारा सभी व्यक्ति प्रसन्न होते है। वह मुद्रा है जैसे सुवर्णादि बहुमूल्य धातुएँ प्राप्त करके व्यक्ति प्रसन्न होता है। 'मुद हर्षे' धातु में 'रक्' प्रत्यय लगाकर मुद्रा शब्द की उत्पत्ति होती है। जिसका अर्थ है प्रसन्नता को प्रदान करने वाली स्थिति।

कोष में मुद्रा शब्द के अनेक अर्थ मिलते है। जैसे मोहर, छाप, मुहरबंद करना, नामांकित अंगूठी, प्रतिभा चिन्ह, पदक, रूपया, रहस्य, अंगो की विशेष स्थिति (हाथ, या मुख की मुद्रा), नृत्य की मुद्रा आदि।

योग के विषय में मुद्रा शब्द को रहस्य तथा अंगों की विशिष्ट स्थिति के अर्थ मे लिया गया है। हठयोग के ग्रन्थों में भी इसकी चर्चा की गई है। यह उच्च अभ्यास है तथा गुरु के निर्देशन में ही इसे करना चाहिए। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में मुद्राओं का अभ्यास अत्यधिक सहायक है। अतः यह अभ्यास आसनों एवं प्राणायामों के अभ्यास से अधिक शक्तिशाली माना जाता है। यह रहस्यमयी है इसलिए देवताओं के लिए भी दुर्लभ बताई गई है। गोपनीय होने के कारण सार्वजनिक नहीं की जाने वाली है। अतः रहस्य अर्थ उचित है।

आसन व प्राणायाम के साथ बन्धों का प्रयोग करके विशिष्ट स्थिति में बैठकर 'मुद्रा' का अभ्यास किया जाता है। इसलिए इसे अंगों की विशेष स्थिति के रूप में भी लिया जा सकता है। इनमें हाथो तथा मुख की विशेष स्थिति को भी सम्मिलित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ – जानुशिरासन के बैठकर प्राणायाम (कुम्भक) तथा बंधो का प्रयोग करके महामुद्रा का अभ्यास किया जाता है।

'मुद्रा' अत्यन्त बहुमूल्य साधन है जो कुण्डलिनी शक्ति का जागरण करके साधक को लक्ष्य तक पहुँचाती है। अतः 'सुवर्ण या धन या रूपया' का भाव भी इसमें निहित है। इसकी बहुमूल्यता निःसन्देह सिद्ध होती है।

मुद्रा को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि आसन, प्राणायाम की सम्मिलित विशिष्ट स्थिति जिसके द्वारा कुण्डलिनी का जागरण सम्भव है, मुद्रा कहलाती है।

चित्त को प्रकट करने वाले किसी विशेष भाव को मुद्रा कहते हैं।

उच्च श्रेणी के भारतीय नृत्यों में मुद्रा हाथों की विशेष अवस्था है जो आंतरिक भावों या संवेदनाओं का संकेत करती है। योनिमुद्रा, चिन्मुद्रा आदि अनेक मुद्राएँ हाथ की विशेष

स्थितियाँ है। नृत्य प्रक्रियाओं की भाँति इनका उद्देश्य भी अंतरंग भावों का प्रकटीकरण या साधक के अध्यात्मिक भावों की ओर संकेत करना है।

आसन एवं प्राणायाम की अपेक्षा यह सम्मिलित अभ्यास (मुद्रा) शीघ्र फल प्रदान करता है। मुद्राओं के अभ्यास से साधक सूक्ष्म शरीर या अनैच्छिक शरीरगत प्रक्रियाओं पर और प्राणशक्ति को नियंत्रित कर लेता है। फलस्वरूप उसकी विभिन्न वृत्तियाँ अर्न्तमुखी हो जाती है तथा साधक को साधना में सफलता प्राप्त होती है। साधक अपने प्राणमय कोष और मनोमय कोष को स्वच्छ व निर्मल बना लेता है जिससे चित्त एकाग्र हो जाता है तथा कुण्डलिनी जागरण व समाधि की स्थिति प्राप्त हो जाती है।

9.5 मुद्रा एवं बंध का उद्देश्य

योगशास्त्र में जिन मुद्राओं और बंधो का वर्णन किया गया है। वे तन्त्रिका तंत्र की संवेदनाओं और उत्तेजनाओं को शान्त एवं संयत करने में सहायक सिद्ध होती है। हठयोग में मुद्राओं व बंधो का कार्य साधक को साधना पथ पर अग्रसर करना है जिसके लिए कुण्डलिनी जागरण आवश्यक है। इन मुद्राओं व बंधो के अभ्यास करने से कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है जो हठयोगी की साधना का मुख्य उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त आन्तरिक अवयवों को नियंत्रित करके साधक की अन्तःस्त्रावी गन्थियों तथा प्राणशक्ति को प्रभावित करती है। इनके संतुलित रहने पर शारीरिक व मानसिक सुदृढ़ता प्राप्त होती है। मुद्रा के अभ्यास में 'स्थिरता' की बात घेरण्ड संहिता में कही गई है और कहा गया है कि– "मुद्रया स्थिरता चैव"। स्नायु संस्थान को वशीभूत करके इच्छित ऊर्जा का उत्पादन एवं प्रयोग करके स्थिरता का भाव प्राप्त किया जा सकता है। यह भाव साधक को साधना के पथ पर अग्रसर करता है क्योंकि इससे शारीरिक एवं मानसिक स्थिरता या संतुलन प्राप्त होता है। इससे इन्द्रियों में भी स्थिरता आती है और वह अन्तर्मुखी हो जाती है।

इन मुद्राओं के अभ्यास संतंत्रिका तंत्र के द्वारा मस्तिष्क को भेजे जाने वाले संदेश चेतना को जागृत करने में सफल हो जाते हैं।

बन्ध का प्रयोग तंत्रिकाओं को प्रभावित करता है। गले, उदर अथवा गुदाद्वार पर जो तंत्रिकांए कार्यरत है, उन्हें सक्रिय करके अवरोध उत्पन्न कर दिया जाए तो प्राण के लिए ऊर्ध्व, अधो या मध्य मार्ग बंद हो जायेगे और प्राण का सुषुम्ना में गमन होने लगेगा। इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने तथा प्राण पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

मुद्राएँ व बंध साधक की बाह्यवृति को समाप्त कर अन्तःवृत्ति को जाग्रत करते हैं जिससे वह संसार की ओर से विमुख होकर साधना पथ पर बढ़ता रहे। इनके अभ्यास से वीतराग होकर साधक लक्ष्य प्राप्ति के प्रति सजग हो जाता है। ऐसा एकाग्रचित्त साधक साधकों की श्रेणी में सम्मान का अधिकारी होता है। स्वामी कुवलयानन्द कहते हैं– 'मुद्रा तथा बंध हठयोग की खास विशेषताएँ है। ये अनेक तंत्रिकापेशी, बंध लगाकर किए जाते हैं। इनमें आन्तरिक दबाव से शरीर में बहुत अधिक परिवर्तन होते है। बंध के अभ्यास से विभिन्न अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। साथ ही साथ कुछ तंत्रिका समूहों को

भी प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। प्राचीन पुस्तकों में यह दावा किया गया है कि इस प्रकार के यौगिक व्यायाम से पेशाब तथा पाखाने की मात्रा कम हो जाती है।

9.6 मुद्रा तथा बंध का महत्त्व

हठयोग के ग्रन्थों में मुद्रा तथा बंध के महत्त्व को बताते हुए कहा है कि मुद्रा का अभ्यास कुण्डलिनी जागरण में अत्यधिक लाभकारी सिद्ध होता है। मुद्राओं का अभ्यास साधक को सूक्ष्म शरीर स्थित प्राण–शक्ति की तरंगों के प्रति जागरूक बनाता है। अभ्यासी इन शक्तियों पर चेतन रूप से नियंत्रण प्राप्त करता है। फलतः व्यक्ति अपने शरीर के किसी अंग में उसका प्रवाह ले जाने या अन्य व्यक्ति के शरीर में उसे पहुँचाने की क्षमता प्राप्त करता है। मुद्राओं के अभ्यास से बाह्य जगत से सम्बन्ध टूट जाता है, इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी होकर प्रत्याहार की स्थित निर्मित करती है। इसलिए ये अभ्यास आध्यात्मिक साधको के लिए अत्यधिक उपयोगी है। चित्त को एकाग्र करने में भी ये अभ्यास समर्थ है। यद्यपि मुद्राओं का प्रथम उद्देश्य आध्यात्मिक है परन्तु जैसा कि हम जानते हैं कि इनसे मानसिक एवं शारीरिक लाभ प्राप्त होते है। इसके साथ–साथ मुद्राओं के चिकित्सकीय लाभ भी हैं।

बंध योग का एक छोटा परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण वर्ग है। यह अन्तः शारीरिक प्रक्रिया है, परन्तु अभ्यासी के सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त विचारों एवं आत्मिक तरंगों में प्रवेश कर ये चक्रों पर सूक्ष्म प्रभाव डालते हैं। सुषुम्ना नाड़ी में प्राण के स्वतंत्र प्रवाह में अवरोध उत्पन्न करने वाली ब्रह्म ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि तथा रूप ग्रन्थि इसके अभ्यास से खुल जाती है। इस प्रकार आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न होती है।

बंध के अभ्यास वास्तव में स्नायविक अवरोध है, जो शरीर और मस्तिष्क के भीतर जितनी तंत्र–तंत्रिकाए है, उनमें उत्पन्न हो रही संवेदनाओं को अवरुद्ध कर देते हैं और दूसरे प्रकार की संवेदना को जाग्रत करते है। आन्तरिक अंगों में जहाँ पर भी संकुचन या प्रसारण की क्रिया होती है, चाहे गर्दन में हो, चाहे कण्ठ में हो, चाहे जननेन्द्रिय के क्षेत्र में हो या गुदा द्वार के क्षेत्र में हो, वह आन्तरिक अंगों से सम्बन्धित प्रक्रियाओं को बदल देती है, संवेगो को बदल देती है। शरीर को अन्य प्रकार की उत्तेजनात्मक या शान्त अवस्था में ले जाती है, जिसके कारण आन्तरिक स्थिरता का आभास होता है।

बंध का महत्त्व आज चिकित्सा में भी है। योग चिकित्सा में बंधो द्वारा कई बीमारियों को ठीक किया जाता है जैसे मूलबंध के अभ्यास से कब्ज एवं बवासीर ठीक हो जाते हैं। यह बहुमूत्र तथा प्रजनन सम्बन्धी बीमारियों को ठीक करता है। ऐसा अनेको चिकित्सकीय लाभ है जो बंधो के निरंतर अभ्यास से शीघ्र ही ठीक हो जाते हैं।

स्वामी निरंजनानन्द की मान्यता है कि योग शास्त्र में जिन मुद्राओं और बंधो का वर्णन किया गया है। वे तन्त्रिका तंत्र की संवेदनाओं और उत्तेजनाओं को शांत एवं संयत करने में सहायक सिद्ध होती है। कुण्डलिनी योग या क्रिया योग में जिन मुद्राओं का अभ्यास किया जाता है जैसे अश्विनी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, तडागी मुद्रा इत्यादि, उनका प्रभाव प्राणमय कोश पर पड़ता है और वे प्राण के प्रवाह को परिवर्तित करने का प्रयास करती है। उनका प्रभाव मस्तिष्क पर भी पड़ता है और वे चित्त के भीतर भाव विशेष को जाग्रत करने

में सहायक होती है ताकि हम पूर्णता अन्तर्मुखी हो सकें। इनका अभ्यास एकाग्रता प्राप्ति में सहायक होता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि बंध एवं मुद्राएँ हमें ब्राह्म या भौतिक जगत से हटाकर अन्तर्गत में ले जाती है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय कोश पर विजय प्राप्त करने के बाद ही विज्ञानमय कोश में पहुँचने की स्थिति होती है। आसन, प्राणायाम, मुद्रा बंध के माध्यम से अन्नमय, प्राणमय व मनोमय कोश पर नियंत्रण किया जाना सम्भव है। अतः अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु मुद्राओं का अभ्यास अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

तस्मान् सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम्।

ब्रह्मद्वारमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत्।। ह०प्र० 3/4

अर्थात् ब्रह्मद्वार पर सोती हुई कुण्डलिनी शक्ति को जगाने के लिए सब प्रयत्न करके मुद्राओं का अभ्यास करना चाहिए क्योंकि मुद्राएँ ही कुण्डलिनी को जगाने के लिए एकमात्र सर्वोत्तम उपाय है। इससे ही मुद्रा के अभ्यास की उपयोगिता सिद्ध होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

सत्य असत्य बतायें–

1– (क) मुद्रा शब्द की उत्पत्ति मुद् धातु से हुई है।

(ख) मुद्रा से आनन्द की प्राप्ति नहीं होती।

(ग) मुद्राओं के अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो सकती है।

(घ) बंध प्राणायाम के अभ्यास में आवश्यक है।

(ङ) नाद के अभ्यास से बाहरी ध्वनि लुप्त हो जाती है।

(च) साधक का मन नाद ध्वनियों में स्थिर भाव होकर आनन्द प्राप्त नहीं करता है।

9.7 सारांश

हठयोग के ग्रन्थों में मुद्रा व बंध की उपयोगिता को स्वीकार किया है। साथ ही नाद की उपयोगिता को भी स्वीकारा है। वास्तव में मुद्रा व बंध हठयोग के अभ्यास में अंतिम पराकाष्ठा को प्राप्त करने में नींव की ईट सिद्ध हो रहे हैं। मुद्रा, बंधों व नाद के अध्ययन से जिज्ञासु पाठक तथा जन सामान्य भी निश्चित हठयोग के अभ्यासों के प्रति रुचि बैठाकर

असीम आनन्द की प्रापित करेंगे और कुण्डलिनी शक्ति का जागरण कर समाधि की प्रापित करेंगे।

9.8 शब्दावली–

कोष	–	खजाना
विशिष्ट	–	विशेष
चित्त	–	मन बुद्धि तथा अहंकार का सम्मलित
अनैच्छिक	–	जो बिना इच्छा के हैं।
प्रवाह	–	गति
ध्वनि	–	आवाज

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

(क) सत्य
(ख) असत्य
(ग) सत्य
(घ) सत्य
(ङ) असत्य

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दिगम्बर स्वामी (2001) स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम, श्रीमन्माधव, योग मन्दिर समिति, लोनावाला
2. निरंजनानन्द स्वामी (2003) महर्षि घेरण्ड कृत घेरण्ड संहिता योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार
3. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द – आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध (2003) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार
4. भारद्वाज डॉ० ईश्वर (2005) सरल योगासन, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.मुद्रा व बन्धों से आप क्या समझते हैं? इनके उद्देश्यों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
2.मुद्रा व बंधों का अर्थ समझाते हुए इनके महत्व पर भी चर्चा कीजिए।
3.नाद की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

इकाई– 10 निम्नलिखित बन्धों की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ – मूल बन्ध, जालन्धर बंध, उड्डयान बंध, महाबंध

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 हठप्रदीपिका के अनुसार मूल बन्ध प्रकरण

10.4 हठप्रदीपिका के अनुसार जालन्धर बंध प्रकरण

10.5 हठप्रदीपिका के अनुसार उड्डीयान बंध प्रकरण

10.6 हठप्रदीपिका के अनुसार महाबंध प्रकरण

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम हठयोग के महत्वपूर्ण अभ्यासों बन्धों की जानकारी प्राप्त करेंगे। हठयोग प्रदीपिका में 10 बन्ध व मुद्राओं का वर्णन है लेकिन हम इस इकाई में केवल चार बन्धों का अध्ययन करेंगे। हठयोग के ग्रन्थ कहते हैं कि बन्ध बहुमूल्य साधन है जो साधक को लक्ष्य तक पहुँचाता है। प्राणायाम के अभ्यासों मे जब कुम्भक किया जाता है तो बन्धों का लगना अति आवश्यक है योग के दृष्टिकोण से बन्धों का प्रयोग प्राणायाम के समय अति आवश्यक है।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप–

- बन्धों की विधि व लाभों का जान सकेंगे।
- बन्धों की सावधानियों को भी समझ सकेंगे।
- हठयोग प्रदीपिका में वर्णित विविध चारों बन्धों का विश्लेषण कर सकेंगे।

10.3 हठप्रदीपिका के अनुसार मूल बन्ध प्रकरण

विधि–

पार्ष्णिभागेन सम्पीड्य योनिमाकुंचयेद्गुदम्।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धोऽभिधीयते।। ह०प्र० 3/60

एडी से सीवनी नाड़ी, जो कि गुदा द्वार में स्थित है, पर दबाब बनकर उसे संकुचित करे तत्पश्चात् अपान वायु को ऊपर की ओर खींचे। यही मूलबंध है।

लाभ–

अपानप्राणयोरैक्यं क्षयो मूत्रपुरीषयोः।
युवा भवति वृद्धोऽपिसततं मूलबन्धनात्।।
अपाने ऊर्ध्वगे जाते प्रयाते वह्निमण्डलम्।
तदाऽनलशिखा दीर्घा जायते वायुनाऽऽहता।।
तेन कुण्डलिनी सुप्ता सन्तप्ता सम्प्रबुध्यते।
दण्डाहता भुजङ्गीव निःश्वस्य ऋजुतां व्रजेत्।।
बिलं प्रविष्टेव ततो ब्रह्मनाड्यन्तरं व्रजेत्,
तस्मान्नित्यं मूलबन्धः कर्तव्यो योगिभिः सदा।। ह०प्र० 3/64 65 67 68

लगातार प्रतिदिन मूलबंध का अभ्यास करने से अपान और प्राण की एकता होती है, शरीर में मल–मूत्र की कमी आती है। बूढ़ा व्यक्ति भी जवान हो जाता है। शरीर की अग्नि प्रज्जवलित होती है। अग्नि, अपान प्राण को उष्ण बनाती है जिससे प्रभावित होकर सोई हुई

कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाती है। और ब्रह्मनाड़ी में प्रविष्ट हो जाती है। इसलिए इसका अभ्यास नित्यप्रति आवश्यक है।

सावधानी– एड़ी का दबाव केवल सीवनी पर ही पड़ना चाहिए अन्य किसी स्थान पर नहीं। गृहस्थ व्यक्ति को इसका अभ्यास लम्बे समय तक नहीं करना चाहिए। ऋतुस्त्राव होने पर भी इसका अभ्यास न करे। जिस साधकों में अग्नि तत्त्व की अधिकता हो वो इसका अभ्यास गुरू के निर्देशन में ही करें।

10.4 हठप्रदीपिका के अनुसार जालन्धर बंध प्रकरण

विधि–

कण्ठमाकुंच्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढम्।
बन्धो जालन्धराख्योऽयं जरामृत्युविनाशकः।।

किसी भी सुविधाजनक आसन में बैठे तथा कण्ठ को संकुचित कर ठुड्डी को हृदय (छाती) में दृढ़तापूर्वक लगाए। यह जालन्धर बंध है।

लाभ– बध्नाति हि शिराजालमधोगामिनभोजलम्।
ततो जालन्धरो बन्धः कण्ठदुःखौघनाशनः।।
जालन्धरे कृते बन्धे कण्ठसंकोचलक्षणे।
न पीयूषं पतत्यग्नौ न च वायुः प्रकुप्यति।।
कण्ठसंकोचनेनैव द्वे नाड्यौ स्तम्भयेद् दृढम्।
मध्यचक्रमिदं ज्ञेयं षोडशाधारबन्धनम्।। ह०प्र० 3/70 71 72

इसके अभ्यास से जरा–मृत्यु का भय नहीं रहता। यह कण्ठ सम्बन्धी सभी रोगों को दूर करता है। यह सोम रस, जो प्रत्येक क्षण नाभी में भस्म होता है उसे भस्म होने से रोकता है। इससे ही शरीर के सोलह आधारों का नियंत्रण होता है। दूसरे वायु के प्रकोप नहीं होते।

सावधानी– सरवाइकल स्पांडिलाइटिस होने पर इसका अभ्यास न करें।

10.5 हठप्रदीपिका के अनुसार उड्डीयान बंध प्रकरण

विधि–

बद्धो येन सुषुम्नायां प्राणस्तूड्डीयते यतः।
तस्मादुड्डीयनाख्योऽयं योगिभिः समुदाहृतः।। ह०प्र० 3/54

सुषुम्ना नाड़ी के भीतर जो निरूद्ध प्राण प्रवाहित हो रहा है उसे इस अभ्यास द्वारा ऊपर उठाया जाता है इसलिए साधक इस अभ्यास को उड्डीयान बंध का नाम देते हैं।

आगे के सूत्रों में भी यही व्याख्या देखने को मिलती है।

लाभ– **उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वं च कारयेत्।**
उड्डीयानो ह्यासौ बन्धों मृत्युमातङ्गकेसरी।।
उड्डीयानं तु सहजं गुरुणा कथितं यथा।
अभ्यसेत् सततं यस्तु वृद्धोऽपि तरुणायते।।
नाभेरूर्ध्वमधश्चापि तानं कुर्यात् प्रयत्नतः।
षण्मासमभ्यसेन्मृत्युं जयत्येव न संशयः।।
सर्वेषामेव बन्धानामुत्तमो ह्युड्डियानकः।
उड्डीयाने दृढे बद्धे मुक्तिः स्वाभाविकी भवेत्।। **ह०प्र० 3/56 57 58 59**

इसके लाभों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यह बंध मृत्यु रूपी हाथी के सामने सिंह के समान है। यदि कोई वृद्ध व्यक्ति भी इसका अभ्यास गुरु के द्वारा बताई गई विधि से करे तो वह भी युवक के समान हो जाता है। कहा भी गया है कि यदि कोई साधक इसका छह महीने लगातार अभ्यास करें तो वह मृत्यु को जीत लेता है। इस बंध को सभी बंधों में श्रेष्ठ कहा गया है। इसके अभ्यास से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सावधानी–आंतों के रोग, हर्निया और उच्च रक्त चाप से पीडित रोगियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही प्राण को ऊपर खींचे।

10.6 हठप्रदीपिका के अनुसार महाबंध प्रकरण

विधि–

पार्ष्णिं वामस्य पादस्य योनिस्थाने नियोजयेत्।
वामोरूपरि संस्थाप्य दक्षिणं चरणं तथा।
पूरयित्वा ततो वायुं हृदये चिबुकं दृढम्।
निष्पीड्य योनिमाकुंच्य मनोमध्ये नियोजयेत।।
धारयित्वा यथाशक्ति रेचयेदनिलं शनैः।
सव्याङ्गे तु समभ्यस्य दक्षाङ्गे पुनरभ्यसेत्।। **ह०प्र० 3/18 19 20**

सर्वप्रथम बांये पैर को मोड़कर उसकी एड़ी को सीवनी पर लगाए तत्पश्चात् दाएँ पैर को बाँयी जंघा पर रखे। धीरे से वायु का पूरक कर अपनी ठुड्डी को छाती से लगाए (जालन्धर बंध) और मूलस्थान (योनि) को संकुचित करे। अपना सारा ध्यान सुषुम्ना पर लगाए। यथाशक्ति कुम्भक् करे तथा धीरे–धीरे वायु का रेचक कर दें। पुनः इसी अभ्यास को पैर बदलकर दोहराए। यह अभ्यास महाबंध कहलाता है।

लाभ–

अयं तु सर्वनाडीनामूर्ध्वगतिनिरोधकः।
अयं खलु महाबन्धो महासिद्धिप्रदायकः।।

कालपाशमहाबन्धविमोचनविचक्षणः।
त्रिवेणीसंगमं धत्ते केदारं प्रापयेन्मनः।। ह०प्र० 3/22 23

महाबंध सभी महान् सिद्धियों को देने वाला है। यह साधक को मृत्यु के भय से दूर कर शरीर में स्थित तीनो नाडियाँ, इडा, पिंगला, सुषुम्ना का जो संगम स्थान है तथा दोनों भौहो के बीच का स्थान जो शिवस्थान है वहाँ मन को लगाती है अर्थात् यहाँ प्राणिक धाराएँ मिलती है।

सावधानी– सरवाईकल स्पाडिलाइटिस से पीड़ित रोगी, साइटिका या जोड़ो से पीड़ित रोगी इसका अभ्यास न करें। दोनों पैरो को बढ़कर इसका अभ्यास करें, समय सीमा को भी ध्यान में रखे।

अभ्यास प्रश्न–

एक शब्द में उत्तर दीजिए–

(1) (क) हठयोगप्रदीपिका के अनुसार बन्धों की संख्या कितनी है।
(ख) किस बन्ध के सिद्ध हो जाने पर अफन और प्राण की एकता होती है।
(ग) किस बन्ध के सिद्ध हो जाने पर कण्ड सम्बन्धी रोग दूर हो जाते हैं।
(घ) किस बंध के अभ्यास को हर्निया, उच्च रक्त चाप व आँतों के रोग से पीड़ित रोगियों को नहीं करना चाहिए।
(ङ) किस बंध के अभ्यास से सभी महान सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

10.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि हठयोग के गन्थों में बन्धों की उपयोगिता को स्वीकार किया है। वास्तव में बन्ध साधक को योग की अन्तिम पराकाष्ठा तक पहुँचानें में सहायक है अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति करेंगे।

10.8 शब्दावली

उष्ण	–	तेज
सिंह	–	शेर
वृद्ध	–	बुढ़ा
पूरक	–	श्वास लेना
कुम्भक	–	श्वास रोकना, प्राणायाम
रेचक	–	श्वास छोड़ना

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

(क) 04 (ख) मूलबंध (ग) जालन्धर बंध
(घ) उड्डियान बंध (ङ) महाबंध

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दिगम्बर स्वामी (2001) स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम, श्रीमन्माधव, योग मन्दिर समिति, लोनावाला

2. निरंजनानन्द स्वामी (2003) महर्षि घेरण्ड कृत घेरण्ड संहिता योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार

3. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द – आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध (2003) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार

3. भारद्वाज डॉ० ईश्वर (2005) सरल योगासन, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.जालन्धर बंध व उड्डियान बंध की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

2.मूल बन्ध व महाबन्ध की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

इकाई–11 निम्नलिखित मुद्राओं की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ – महामुद्रा, महावेध, खेचरी,विपरीत करणी,वज्रोली, शक्तिचालिनी

इकाई की संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 हठप्रदीपिका के अनुसार मुद्रा प्रकरण

11.3.1 महामुद्रा

11.3.2 महावेध मुद्रा

11.3.3 खेचरी मुद्रा

11.3.4 विपरीत करणी मुद्रा

11.3.5 वज्रोली

11.3.6 शक्ति चालिनी मुद्रा

11.4 सारांश

11.5 शब्दावली

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.8 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम हठयोगप्रदीपिका में वर्णित मुद्राओं का अध्ययन करेगे। साधक मुद्राओं को सिद्ध करके ब्रह्मद्वार (मूलस्थान) पर सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है अतः इनका अभ्यास गुप्तनीय बताया है योग के दृष्टिकोण से मुद्राओं का प्रयोग भी प्राणायाम के समय अति आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई में आप मुद्रा की विविध अवधारणा का अध्ययन करेंगे।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप–

- मुद्राओं की विविधयाँ तथा लाभों को जान सकोगे।
- मुद्राओं की सावधानियों का भी अध्ययन करेंगे।

11.3 हठप्रदीपिका के अनुसार मुद्रा प्रकरण

हठप्रदीपिका में निम्नांकित मुद्राओं का वर्णन किया गया है।

11.3.1 महामुद्रा

विधि–

पादमूलेन वामेन योनिं सम्पीड्य दक्षिणम्।
प्रसारितं पदं कृत्वां कराभ्यां धारयेद्दृढम्।
कण्ठे बन्धं समारोप्य धारयेद्वायुमूर्ध्वतः।।
ततः शनैः शनैरेव रेचयेन्न तु वेगतः।
इयं खलु महामुद्रा महासिद्धैः प्रदर्शिता।। ह०प्र० 3/9 12

सर्वप्रथम बाये पैर को मोड़कर उसकी एड़ी से सीवनी नाड़ी पर दबाव बनाए तथा दाहिने पैर को सीधा रखकर दोनों हाथों से पकड़े। जालन्धर बंध लगाकर वायु का पान कर, उसका कुम्भक करें। यथासम्भव कुम्भक करने के बाद श्वास को धीरे–धीरे बाहर छोड़े। श्वास को तेजी से न छोड़े। योगियों द्वारा यह महामुद्रा बताई है। इसका अभ्यास पैर बदलकर, समय की समानता रखकर ही करना चाहिए।

लाभ– महाक्लेशादयो दोषाः क्षीयन्ते मरणादयः।
महामुद्रां च तेनैव वदन्ति विबुधोत्तमाः।।
न हि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेऽपि नीरसाः।
अपि भुक्तं विषं घोरं पीयूषमिव जीर्यति।।
क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः।

तस्य दोषाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु योऽभ्यसेत्।।
कथितेयं महामुद्रा महासिद्धिकरी नृणाम्।
गोपनीया प्रयत्नेन न देया यस्य कस्यचित्।।ह०प्र० 3/13 15 16 17

इसके लाभों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इसके अभ्यास से सभी क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश) दूर हो जाते है। मृत्यु का डर भी दूर हो जाता है। इस मुद्रा को योगीजन श्रेष्ठ कहते हैं। साधक के लिए किसी भी तरह का भोजन पथ्य या अपथ्य नहीं रहता। हर वस्तु रसयुक्त हो जाती है। उसकी पाचन शक्ति, क्षमता इतनी बढ़ जाती है कि भयानक से भयानक विष भी पच जाता है। इसका नियमित अभ्यास करने से क्षय (तपेदिक), कुष्ठरोग (चर्मरोग, कोष्ठबद्धता (कब्ज), वायुगोला, अजीर्ण तथा अन्य सभी रोग दूर हो जाते हैं। यह सभी महासिद्धियों को प्रदान करती हूँ, किन्तु इसके अभ्यास को गुप्त रखना चाहिए।

सावधानी– इसका मुद्रा का अभ्यास एकान्त में ही करने का निर्देश दिया है तथा साथ ही इसे गोपनीय रखने को भी कहा है। यह एक उच्च अभ्यास है साधारण जन मानस के लिए इसका अभ्यास उचित नहीं है। उच्च रक्तचाप से पीड़ित रोगियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। ह्रदय रोगियों को भी इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। कुम्भक यथासम्भव, यथाशक्ति ही करें, जबरदस्ती श्वास को न रोके। पूरक तथा रेचक करते हुए श्वास को धीरे–धीरे ही ले व छोड़े। फेफड़ों पर अत्यधिक दबाव न डाले।

11.3.2 महावेध मुद्रा

इस मुद्रा की विधि बताने से पूर्व इसकी विशेषता तथा महत्व के बारे में बताया गया है कि जिस प्रकार एक सुन्दर स्त्री का यौवन बिना पुरुष के बेकार, निष्फल है उसी प्रकार बिना महावेध के महामुद्रा तथा महाबन्ध दोनों बेकार है।

विधि

महाबन्धस्थितो योगी कृत्वा पूरकमेकधीः।
वायूना गतिमावृत्य निभृतं कण्ठमुद्रया।।
समहस्तयुगो भूमौ स्फिचौ संताडयेच्छनैः।।
पुटद्वयमतिक्रम्य वायुः स्फुरति मध्यगः।।
सोमसूर्याग्निसम्बन्धो जायते चामृताय वै।
मृतावस्था समुत्पन्ना ततो वायुं विरेचयेत्।। ह०प्र० 3/25 26 27

सर्वप्रथम साधक को दृढ़तापूर्वक महाबन्ध लगाकर मन को शान्त कर एकाग्र करना चाहिए। तत्पश्चात् जालन्धर बंध द्वारा, श्वास को पूरक कर कुम्भक लगाना चाहिए। दोनों हथेलियों को भूमि पर टिका दे (तुलासन की तरह) तथा शरीर का संतुलन बनाते हुए भूमि से नितम्बों को ऊपर उठाकर धीरे–धीरे भूमि पर ताड़न करें। ऐसा करने से वायु दोनों स्वरो, नाड़ियों (इड़ा, पिंगला) को छोड़कर सुषुम्ना में बहने

लगती है। वायु के सुषुम्ना में बहने से अमरत्व की प्राप्ति होती है। मृतावस्था की स्थिति उत्पन्न होने पर कुम्भक को खोल दे तथा वायु का रेचन कर दें (मृतावस्था का अर्थ है जन कुम्भक असहज होने लगें, बैचेनी की स्थिति)।

लाभ– महावेधोऽयमभ्यासान्महासिद्धिप्रदायकः।
वलीपलितवेपघ्नः सेव्यते साधकोत्तमैः।।
एतत् त्रयं महागुह्यं जरामृत्युविनाशनम्।
वह्निवृद्धिकरं चैव ह्यणिमादिगुणप्रदम्।।
अष्टधा क्रियते चैव यामे यामे दिने दिने।
पुण्यसंभारसंधायि पापौघभिदुरं सदा।
सम्यक् शिक्षावतामेवं स्वल्पं प्रथमसाधनम्।। ह०प्र० 3/ 28 29 30

इसके लाभों के विषय में कहा गया है कि इसके नियमित अभ्यास करने वाले साधक को अनेक महान् सिद्धियाँ प्राप्त होती है। इसके अभ्यास से शरीर में झुर्री पड़ना, बाल का असमय सफेद हो जाना तथा शरीर का कम्पन दूर होते है इसलिए यह बड़ा ही उत्तम अभ्यास है। आगे चर्चा करते हुए कहा गया है कि ये तीनों (महाबन्ध, महामुद्रा, महावेध) उच्च अभ्यास है इसलिए इनकी चर्चा नहीं करनी चाहिए, इन्हें गुप्त ही रखना चाहिए। ये जरा और मृत्यु का नाश करती है, शरीरस्थ जठराग्नि को प्रदीप्त करती है, अणिमा आदि अनेक सिद्धियों को देने वाली है। कहा भी गया है कि जो साधक नित्यप्रति तीन घंटे में आठ बार इनका अभ्यास करता है उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे सभी पुण्य प्राप्त होते हैं। किन्तु प्रारम्भ में इसका अभ्यास कम ही करें और धीरे–धीरे अपनी क्षमता अनुसार अभ्यास को बढ़ाए। इसके अतिरिक्त यह चेतना द्वारा शरीर में स्थित षट्चक्रों को बेधन करती है। इसके द्वारा आत्मा से सम्बन्ध भी स्थापित होता है। उदर सम्बन्धित सभी रोगों को दूर करती है। पूरे शरीर में प्राण के संचार को बढ़ाती है।

सावधानी– महावेध मुद्रा एक उच्च अभ्यास है और इसके अधिकारी भी उच्च कोटि के ही है। इसका अभ्यास एकान्त में गुप्त ही रखना चाहिए। यथासम्भव ही कुम्भक का प्रयास करें, फेफडों पर अतिरिक्त दबाव न डाले। सूत्र में भी कहा गया है कि नित्यप्रति इसका अभ्यास तीन घंटे में आठ बार करें किन्तु प्रारम्भ से ही ऐसा न करे, धीरे–धीरे ही अभ्यास को बढाए। मेरुदण्ड से सम्बन्धित रोगों में इसका अभ्यास वर्जित है। जोड़ों में दर्द होने पर भी इसका अभ्यास न करे। हथेलियों को भूमि पर अच्छी तरह टिकाए।

11.3.3 खेचरी मुद्रा

विधि– कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी।। ह०प्र० 3/31

सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन् में बैठे तथा जीभ को पलटकर, कपालकुहर के अन्दर लगाना चाहिए और दृष्टि को भूमध्य (दोनों भौहों के मध्य का स्थान) पर लगाना ही खेचरी मुद्रा है। पहले सूत्र में खेचरी मुद्रा की विधि बताने के बाद, आगे के सूत्रों में जीभ को लम्बा कैसे करे यह बताया गया है।

छेदनचालनदोहैः कलां क्रमेण वर्धयेत्तावत्।
सा यावद्भ्रूमध्यं स्पृशति तदा खेचरी सिद्धिः।।
स्नुहीपत्रनिभं शस्त्रं सुतीक्ष्णं स्निग्धनिर्मलम्।
समादाय ततस्तेन रोममात्रं समुच्छिनेत्।।
ततः सैन्धवपथ्याभ्यां चूर्णिताभ्यां प्रघर्षयेत्।
पुनः सप्तदिने प्राप्ते रोममात्रं समुच्छिनेत्।।
एवं क्रमेण षण्मासं नित्ययुक्तः समाचरेत्।
षण्मासाद्रसनामूलशिराबन्धः प्रणश्यति।। ह०प्र० 3/32 33 34

जीभ को किस प्रकार लम्बा करे कि वो सीधे कपाल कुहर में प्रवेश करे, इसके निम्नलिखित तरीके बताए गए हैं। काटना, चालन और दोहन इन तीन क्रियाओं द्वारा ही जीभ बढ़ती है, उसे इतना बढ़ाना है कि वह भूमध्य को स्पर्श करे। ऐसा करने से ही खेचरी सिद्ध होती है। थूअर (स्नुही) के धारदार पत्ते को लेकर, स्निग्ध तथा स्वच्छ (कीटानु रहित) शस्त्र लेकर उससे जिह्वा के तालु को बाल बराबर काँटे। कांटने के बाद उस स्थान (जिह्वा तालु) पर सेंधा नमक तथा हरणे का चूर्ण, सात दिन तक लगाए और फिर से बाल बराबर काँटे। इसी विधि को छह महीने लगातार करें, ऐसा करने से जिह्वा कामूल (तालु) का शिराबन्ध हट जाता है। इस प्रकार जिह्वा बढ़ जाती है और आसानी से कपालकुहर में प्रवेश करती है।

लाभ—

रसनामूर्ध्वगां कृत्वा क्षणार्धमपि तिष्ठति।
विषैर्विमुच्यते योगी व्याधिमृत्युजरादिभिः।।
न रोगो मरणं तन्द्रा न निद्रा न क्षुधा तृषा।
न च मूर्च्छा भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्।।
पीड्यते न स रोगेण लिप्यते न च कर्मणा।
बाध्यते न स कालेन यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्।।
खेचर्या मुद्रितं येन विवरं लम्बिकोर्ध्वतः।
न तस्य क्षरते बिन्दुः कामिन्याश्लेषितस्य च।।
ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा सोमपानं करोति यः।
मासार्धेन न सन्देहो मृत्युं जयति योगवित्।।

ह०प्र० 3/37—49

खेचरी मुद्रा का अभ्यास करने वाला साधक विष, रोग, मृत्यु, बुढ़ापे से कभी पीड़ित नहीं होता। अतः वह इन सब पर विजय स्थापित करता है। आगे कहा गया है कि उसे तन्द्रा, निद्रा, भूख, प्यास, मूर्च्छा आदि भी नहीं सताती है। साधक किसी भी कर्म में आसक्त नहीं रहता उसका चित्त शून्य में विचरण करता है। जो साधक खेचरी मुद्रा को करता है उसका

बिन्दु सून्दर स्त्री के स्पर्श मात्र या आलिंगन से भी स्खलित नहीं होता। इस प्रकार का अभ्यास आधे महीने भर मात्र करने से मृत्यु नहीं आती। तक्षक सर्प जिसको सर्पो में बहुत भयानक सर्प माना गया है। कहा जाता है कि खेचरी सिद्ध होने पर अगर सर्प (तक्षक) साधक को काट ले तो उस भयंकर विष का भी साधक पर कोई असर नहीं होता है। साधक को सभी प्रकार के स्वाद जैसे नमकीन, तीखा, खट्टा, दूध, शहद तथा घी आदि अनुभव होते हैं। साधक के शरीर पर शस्त्र–प्रहार को कोई फर्क नहीं पड़ता, उसे अणिमा आदि अन्य आठ सिद्धियाँ प्राप्त होती है।

सावधानी– खेचरी मुद्रा का अभ्यास बहुत कठिन माना जाता है इसलिए इसे बिना गुरू के निर्देशन के नहीं करना चाहिए। जिह्वा को काटते वक्त बहुत सावधानी बरतें। पहले धीरे–धीरे ही काटे, कॉंटने के बाद उस पर सेंधा नमक तथा हरड़े के चूर्ण से अच्छी तरह घर्षण करें।

11.3.4 विपरीत करणी मुद्रा–

विधि–

तत्रास्ति करणं दिव्यं सूर्यस्य मुखवंचनम्।
गुरूपदेशतो ज्ञेयं न तु शास्त्रार्थकोटिभिः।। ह०प्र० 3/77

विपरीतकरणी मुद्रा की विधि बताने से पूर्व सोमरस की चर्चा की गई है तथा उसका महत्व बताया गया है। कहा गया है कि सोममण्डल से जो अमृत का स्त्राव होता है वो नाभि में स्थित सूर्य द्वारा भस्म हो जाता है। ऐसा होने से व्यक्ति को बुढ़ापा आ जाता है। इस प्रक्रिया को रोकने के लिए एक दिव्य क्रिया बताई गई है जिसे गुरु द्वारा ही सीखना चाहिए, यह क्रिया विपरीतकरणी मुद्रा है। इसकी विधि इस प्रकार है–

ऊर्ध्वनाभिरधस्तालुरूर्ध्वं भानुरधः शशी।
करणी विपरीताख्या गुरुवाक्येन लभ्यते।। ह०प्र० 3/78

पीठ के ऊपर (बल) लेटकर, दोनों पैरो को धीरे–धीरे उठाए जिससे नाभि ऊपर और तालु नीचे हो जाता है अर्थात् सूर्यमण्डल ऊपर और सोममण्डल नीचे होने की प्रक्रिया ही विपरीतकरणी कहलाती है। इसे केवल गुरु द्वारा ही सीखना चाहिए।

लाभ–

नित्यमभ्यासयुक्तस्य जठराग्निविवर्धिनी।
आहारो बहुलस्तस्य सम्पाद्यः साधकस्य च।
अल्पाहारो यदि भवेदग्निर्दहति तत्क्षणात्।।
वलितं पलितं चैव षण्मासोर्ध्वं न दृश्यते।
याममात्रं तु यो नित्यमभ्यसेत् स तु कालजित्।। ह०प्र०3/79 81

नित्य प्रति इसका अभ्यास करने वाले साधक की जठराग्नि बढ़ती है। इसके छह माह के अभ्यास से ही शरीर की झुर्री तथा सफेद बाल काले हो जाते हैं। जो साधक प्रतिदिन तीन घंटे तक इसका नियमित अभ्यास करे वह मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है। उसे बुढ़ापा भी नहीं सताता।

इसके अतिरिक्त इससे शरीर में प्राण के प्रवाह में संतुलन आता है। मुख्यतः प्राण का प्रवाह मणिपुर चक्र से विशुद्धि चक्र की ओर होता है। इससे शरीर की शुद्धि होती है। जिससे शरीर में किसी भी प्रकार की व्याधी नहीं होती। यह ओज–शक्ति को ऊपर के केन्द्रों में ले जानी की एक महत्वपूर्ण मुद्रा है।

सावधानी–इसका नित्यप्रति अभ्यास करने वाले साधक को अभ्यास काल में पर्याप्त भोजन करना चाहिए क्योंकि इस अभ्यास से जठराग्नि प्रदीप्त होती है अगर भोजन कम किया जाए तो वह अग्नि शरीर को जलाने लगती है इसलिए भोजन को सही मात्रा में लेना जरूरी है। इसका अभ्यास धीरे–धीरे बढ़ाएँ।

उच्च रक्त चाप, हृदय की किसी बीमारी से पीडित, थाइराइड ग्रन्थि के बढ जाने पर इसका अभ्यास न करें। ऋतुस्त्राव होने पर भी इसका अभ्यास न करें। मेरूदण्ड से सम्बन्धित रोगों में भी इसका अभ्यास न करे। अत्यधिक स्थूल व्यक्ति को इसका अभ्यास (दीवार) किसी के सहारे से ही करना चाहिए।

11.3.5 वज्रोली

विधि बताने से पूर्व हठयोग प्रदीपिका में इसके महत्व को बताया गया है। योगशास्त्र के नियमों को न मानने वाला साधक यदि इस मुद्रा के विषय में जानता है तो वह योग में सफलता प्राप्त करता है। यहाँ दो दुर्लभ वस्तुओं का वर्णन किया है– सोममण्डल का स्त्राव, स्वाधीनाडी (चित्रा नाड़ी) वज्रोली की विधि बताते हुए कहा है–

मेहनेन शनैः सम्यगूर्ध्वाकंचनमभ्यसेत्।
पुरुषोप्यथावा नारी वज्रोलीसिद्धिमाप्नुयात्।।
यत्नतः शस्तनालेन फूत्कारं वज्रकन्दरे।
शनैः शनैः प्रकुर्वीत वायुसंचारकारणात्।।
नारीभगे पतद्बिन्दुमभ्यासेनोर्ध्वमाहरेत्।
चलितं च निजं बिन्दुमूर्ध्वमाकृष्य रक्षयेत्।। ह०प्र० 3/84–86

धीरे–धीरे अच्छी तरह से योनिमण्डल को संकुचित करने का अभ्यास करें। ऐसा करने से दोनों ही (पुरुष तथा नारी) वज्रोली का फल प्राप्त करते हैं। इस मुद्रा को करने के लिए सीसे या चाँदी से बनी नली को धीरे–धीरे मूत्र–नलिका (लिंग छिद्र) में प्रवेश कराए। इस नली की लम्बाई 12–14 इंच होनी चाहिए। पहले दिन 1 इंच या 1 अंगुल ही प्रविष्ट कराए, धीरे–धीरे अभ्यास परिपक्व हो जाने पर पूरी नली (12–14 इंच/अंगुल) को लिंग के भीतर डाले, फिर नली से वायु का प्रवेश कराएँ। इससे लिंग शुद्ध हो जाता है। वायु के बाद शुद्ध व थोड़ा उष्ण जल प्रवेश करवाएँ। तत्पश्चात् बिन्दु का आकर्षण करवाएँ। बिन्दु का आकर्षण हो जाने पर वज्रोली मुद्रा सिद्ध हो जाती है। इसको सिद्ध कर लेने के अनन्तर योनिमण्डल में आकर गिरने वाले बिन्दु को अभ्यास के द्वारा ऊपर उठाए और उस चलायमान बिन्दु को ऊपर

खींच कर सुरक्षित रखें। स्त्रीयोगिनी के लिए भी कहा गया है कि अभ्यास की कुशलता के साथ नारी भी पुरुष के वीर्य का भली प्रकार आकर्षण कर अपने रज का वज्रोली मुद्रा के द्वारा रक्षण करती है तो ऐसी नारी योगिनी प्रशंसनीय है।
वज्रोली मुद्रा के बाद ही दो अन्य मुद्राओं का भी वर्णन किया गया है– सहजोली, अमरोली। सहजोली का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वज्रोली अभ्यास के प्रयोजन से की गई मैथुन प्रक्रिया के अनन्तर गाय के जले हुए गोबर की भस्म को जल में मिलाकर अपने अंग में लगाकर क्रियामुक्त हो विश्राम करने का नाम सहजोली है।

अमरोली का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वज्रोली साधक की पित्त की उत्कटना के कारण शिवाम्बु (स्वमूत्र) की प्रथम धारा तथा मूत्रोत्सर्ग की समाप्ति की धारा को छोड़ कर मध्य की शीतल व पित्त दोष से रहित धारा का पान करना चाहिए। इसी को अमरोली कहा गया है।

लाभ– एवं संरक्षयेद्बिन्दुं मृत्युं जयति योगवित्।
मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।।
सुगन्धो योगिनो देहे जायते बिन्दुधारणात्।
यावद्बिन्दुः स्थिरो देहे तावत् कालभयं कुतः।।ह०प्र० 3/87 88

वज्रोली मुद्रा का लाभो का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जो साधक अपने बिन्दु की रक्षा करता है वह अकाल मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है क्योंकि बिन्दु का क्षरण ही मृत्यु है और अगर बिन्दु की रक्षा करे तो जीवन की प्राप्ति होती है। जो साधक बिन्दु का क्षय होने से उसका बचाव करता है उसके शरीर से सुगन्ध पैदा होती है। उसे मृत्यु का भय नहीं रहता। इसके अतिरिक्त यह वज्र नामक नाडी को, जो प्रजनन अंगो में प्राण शक्ति का प्रवाह करती है उसको प्रभावित करती है। ब्रह्मचर्य पालन के लिए भी यह बहुत उपयोगी हैं। इससे शरीर पर नियंत्रण स्थापित होता है।

सावधानी– वज्रोली मुद्रा साधारण अभ्यास नहीं है इसलिए इसका अभ्यास धैर्यपूर्वक तथा गुरू के सानिध्य में ही करें।

11.3.6 शक्ति चालिनी मुद्रा– इस मुद्रा की विधि को बताने से पूर्व कुण्डलिनी को कई नामों से सम्बोधित किया गया है जैसे– कुटिलाङ्गी, कुण्डलिनी, भुजङ्गी, शक्ति, ईश्वरी, कुण्डली, अरूंधती ये सभी एक ही शब्द के पर्यायवाची हैं– जिसे मार्ग से क्लेश रहित ब्रह्मपद को जाया जाता है। उस मार्ग को मुख से ढककर कुण्डलिनी शक्ति सोई हुई है। कन्द के ऊपरी भाग से सोई हुई यह कुण्डलिनी योगियों के लिए मोक्ष देने वाली होती है किन्तु मूढ़ लोगों के लिए यही बन्धन का कारण है। कुण्डलिनी सर्प के समान टेढ़ी–मेढ़ी आकार वाली बतायी गयी है। शरीर में इसकी उपस्थिति इड़ा व पिंगला के मध्य में मानी गयी है। शक्ति चालन की विधि बताते हुए कहा गया है।

विधि

पुच्छे प्रगृह्य भुजगीं सुप्तामुद्बोधयेच्च ताम्।

निद्रां विहाय सा शक्तिरूर्ध्वमुत्तिष्ठते हठात्।।
अवस्थिता चैव फणावती सा प्रातश्च सायं प्रहरार्धमात्रम्।
प्रपूर्य सूर्यात् परिधानयुक्त्या प्रगृह्यनित्यं परिचालनीया।।
ऊर्ध्वं वितस्तिमात्रं तु विस्तारं चतुरङ्गुलम्।
मृदुलं धवलं प्रोक्तं वेष्टिताम्बरलक्षणम्।।
सति वज्रासने पादौ कराभ्यां धारयेद् दृढम्।
गुल्फदेशसमीपे च कन्दं तत्र प्रपीडयेत्।।
वज्रासने स्थितो योगी चालयित्वा च कुण्डलीम्।
कुर्यादनन्तरं भस्त्रां कुण्डलीमाशु बोधयेत्।।
भानोराकुंचनं कुर्यात् कुण्डलीं चालयेत्ततः।
मृत्युवक्त्रगतस्यापि तस्य मृत्युभयं कुतः।।
मुहूर्तद्वयपर्यन्तं निर्भयं चालनादसौ।
ऊर्ध्वमाकृष्यते किंचित् सुषुम्नायां समुद्गता।। ह०प्र० 3/107–113

अर्थात् उस सोती हुई शक्ति को पूँछ पकड़ कर जगाना चाहिए। ऐसा करने से वह शक्ति निद्रा छोड़कर एकाएक ऊपर की ओर उठती है। मूलाधार में स्थित उस शक्ति को सुबह–शाम तीन घंटे तक सूर्य नाड़ी से वायु का पूरक कर प्रतिदिन करना चाहिए। शरीर के मूलस्थान से एक बिला (9 इंच) ऊँचाई पर तथा चार अंगुल (3 इंच) विस्तार वाला, कोमल, सफेद वस्त्र को कन्द पर लपटे और शक्ति का चालन करे। वज्रासन में बैठकर दोनों हाथों से टखनों को दृढ़ता से पकड़े और उससे कन्द को दबाए। तत्पश्चात् कुण्डलिनी को चलाने की क्रिया करें और भ्रस्त्रिका प्राणायाम करें। इसे करने से वह शक्ति शीध्र ही जागृत हो जाती है। नाभि प्रवेश में स्थित सूर्य–नाड़ी की आकुंचन करें, तब कुण्डलिनी को चलावें। इससे मृत्यु के मुख में गये हुए भी उस साधक को मृत्यु का भय कैसा? अर्थात् उसे मृत्यु का भय नहीं रहता। ऐसा दो मुहूर्त तक करे जिससे वह शक्ति ऊपर की ओर खिंच जाती है।

लाभ– येन संचालिता शक्तिः स योगी सिद्धिभाजनम्।
किमत्र बहुनोक्तेन कालं जयति लीलया।।
ब्रह्मचर्यरतस्यैव नित्यं हितमिताशनः।
मण्डलाद् दृश्यते सिद्धिः कुण्डल्यभ्यासयोगिनः।। ह०प्र० 3/116–117

जो साधक इस शक्ति का चालन करता है, वही योगी सिद्धि प्राप्त करता है। वह साधक अनायास ही वह मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है। सदैव ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, पथ्यकारक और परिमित भोजन करने वाले, कुण्डलिनी चालन के अभ्यासी साधक को एक मण्डल (40 दिन) में ही सिद्धि के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं। इसके अभ्यास से शरीर में स्थित 72000 नाडियों का शोधन होता है, यह

मूलशोधन का श्रेष्ठ उपाय है। इस मुद्रा में भ्रस्त्रिका प्राणायाम से सभी लाभ मिलते हैं।

सावधानी–

यह मुद्रा अत्यन्त गोपनीय है इसका अभ्यास एकान्त में ही करें। इसका अभ्यास गुरु के निर्देशन में ही करें। जोड़ो में दर्द रहने वाले रोगियों, साइटिका से पीड़ित रोगियों को इसका अभ्यास वर्जित हैं।

अभ्यास प्रश्न

(1) एक शब्द में उत्तर दीजिए–

(क) किस मुद्रा के अभ्यास से पंच क्लेश दूर हो जाते हैं।

(ख) किस मुद्रा के अभ्यास से झुर्री पड़ना, बालों का सफेद हो जाना तथा शरीर का कम्पन दूर हो जाता है।

(ग) किस मुद्रा के सिद्ध हो जाने पर साधक को भूख, प्यास, मूर्च्छा, तन्द्रा व निद्रा नहीं सताती।

(घ) किस मुद्रा के सिद्ध होने पर साधक के अकाल मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है।

(ङ) किस मुद्रा के अभ्यास में भस्त्रिाका प्राणायाम की क्रिया की जाती है।

11.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि हठयोगप्रदीपिका में मुद्राओं की उपयोगिता को स्वीकार किया है। मुद्रा हठयोग की एक महत्वपूर्ण साधन है। मुद्रा के अभ्यास से काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि कषायों की निवृत्ति होकर चित्त में पवित्रता आती है। साधक भाव से रहित होकर सम्पूर्ण सृष्टि में आत्मभाव देखता है तथा धीरे–धीरे साधक चरम लक्ष्य कैवल्य की प्राप्ति मुद्रा के अभ्यास से सहज रूप से करता है।

11.5 शब्दावली–

कुम्भक – श्वास रोकना

विष – जहर

अभिनिवेश – मृत्यु का डर

तन्द्रा – आलस्य

व्याधी – रोग

11.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

(क) महामुद्रा (ख) महावेध मुद्रा (ग) खेचरी मुद्रा,

(घ) वज्ररोली मुद्रा (ङ) शक्ति चालिनी मुद्रा

11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दिगम्बर स्वामी (2001) स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम, श्रीमन्माधव, योग मन्दिर समिति, लोनावाला
2. निरंजनानन्द स्वामी (2003) महर्षि घेरण्ड कृत घेरण्ड संहिता योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार
3. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द – आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध (2003) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार
4. भारद्वाज डॉ० ईश्वर (2005) सरल योगासन, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

11.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. खेचरी व महावेध की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
2. शक्तिचालिनी मुद्रा व वज्रोली की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
3. महामुद्रा व विपरीतकरणी मुद्रा की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

इकाई—12 नाद की अवधारणा, नाद का स्वरूप एवं अवस्थायें

इकाई की संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 नाद की अवधारणा

12.4 विविध ग्रन्थों में नाद का स्वरुप

12.5 नाद की अवस्थायें

12.5.1 आरम्भावस्था

12.5.2 घटावस्था

12.5.4 निष्पत्ति अवस्था

12.5.3 परिचयावस्था

12.6 नाद के लाभ

12.7 सारांश

12.8 शब्दावली

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना–

पिछली इकाई में आपने हठप्रदीपिका में वर्णित विविध मुद्रा एवं वंधो के बारे में जाना। नाद के स्वरूप के बारे में स्वामी स्वात्मा राम जी ने हठयोग के प्रमुख ग्रंथ हठयोग प्रदीपिका के चतुर्थ उपदेश या चतुर्थ अध्याय में चर्चा की है। नाद के विषय में केवल हठयोग में ही नहीं अपितु उपनिषद् में भी कहा गया है। गोरक्षनाद जी ने तत्त्वज्ञान को पाने में असमर्थ साधकों के लिए हठयोग में नाद की उपासना बताई है। प्रिय पाठकों संसार का माया मोह बंधन भी आत्मा के चारो ओर अन्धकार फैलाता है किन्तु साधना करने से, प्राणायाम का अभ्यास करने से, आत्मा में आवाज सुनाई देती है इसी का नाम नाद है जो परब्रह्म का देवीप्यमान स्वरूप है। प्रस्तुत इकाई में आप नाद तथा नादानुसंधान का अध्ययन करेगे।

12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप

- नाद की अवधारणा को समझ सकेगे।
- विविध शास्त्रो के परिपेक्ष्य में नाद के अर्थ का विश्लेषण कर सकोगें।
- नाद की विविध अवस्थाओ को जान सकोगें।
- नाद के लाभो का अध्ययन करेगें।

12.3 नाद की अवधारणा

नाद के स्वरूप के बारे में स्वामी स्वात्मा राम जी ने हठयोग के प्रमुख ग्रंथ हठयोग प्रदीपिका के चतुर्थ उपदेश या चतुर्थ अध्याय में चर्चा की है। नाद के विषय में केवल हठयोग में ही नहीं अपितु उपनिषद् में भी कहा गया है। हठयोग प्रदीपिका में ज्योत्सना में ब्रह्मानन्द ने काँसे के घण्टे की ध्वनि की गूँज को नाद कहा है तथा नाद का अंशरूप आत्मा ही कला है।

12.4 विविध ग्रन्थो में नाद का स्वरुप

नाद बिन्दु उपनिषद् में कहा गया है कि–

ब्रह्मप्रणवसंधानं .... मेधापार्येऽशुमानिव।। (नाद बिन्दु उपनिषद) 3/30

अर्थात् आकाश में काले घने बादल फैलकर अन्धकार कर देते हैं किन्तु सूर्य इन काले बादलों से अन्धकार को दूर करता है। संसार का माया मोह बंधन भी आत्मा के चारो ओर अन्धकार फैलाता है किन्तु साधना करने से, प्राणायाम का अभ्यास करने से, आत्मा में आवाज सुनाई देती है इसी का नाम नाद है जो परब्रह्म का देवीप्यमान स्वरूप है।

हठयोगप्रदीपिका के चतुर्थ अध्याय मे नाद के बारे में कहा गया है कि–

अशक्यतत्त्वबोधानां मूढानामपि सम्मतम्।
प्रोक्तं गोरक्षनाथेन नादोपासनमुच्यते।। ह०प्र० 4/65

अर्थात् तत्त्वज्ञान को पाने में असमर्थ साधकों के लिए हठयोगी गोरक्षनाद जी ने नाद की उपासना बताई है।

नाद के विषय में बनाते हुए आगे के सूत्रों में कहा गया है–

मुक्तासने स्थितो योगी मुद्रां सन्धाय शाम्भवीम्।
शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्तस्थमेकधीः।। ह०प्र० 4/67

अर्थात् मुक्तासन (सिद्धासन) में स्थित होकर अर्थात् बैठकर, शाम्भवी मुद्रा करे, मन को एकाग्र एवं शांत करे साधक अपने दाहिने कान से शरीर के अन्तर्गत ध्वनि को सुनने का प्रयास करे।

नाद को सुनने और महसूस करने की विधि को स्वात्मा राम जी ने बताते हुए कहा है कि–

श्रवणपुटनयनयुगल घ्राणमुखानां निरोधनं कार्यम्।
शुद्धसुषुम्नासरणौ स्फुटममलः श्रूयते नादः।। ह०प्र० 4/68

दोनों हाथों की अंगुलियों से दोनों कानों को, दोनों आँखों, दोनों नासिका को तथा मुख को (षण्मुखी मुद्रा) बंद करने का प्रयास कर साधक को कुछ समय बाद सुषुम्ना जो प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से मलरहित हो चुकी है उसमें से स्पष्ट और पवित्र नाद सुनाई पड़ने लगता है।

12.5 नाद की अवस्थायें

महर्षि स्वात्माराम जी ने नाद की चार अवस्थाएँ बताई है– आरम्भावस्था घटावस्था, परिचयावस्था, निष्पत्ति अवस्था।

12.5.1 आरम्भावस्था – आरम्भावस्था में ब्रह्मग्रन्थि के भेदन के फलस्वरूप आनन्द का अनुभव होता है तथा शरीर अर्थात् अन्तः शरीर में शून्यसम्भूत असाधारण क्षण क्षण रूप अनाहत शब्द सुनाई पड़ता है। वह योगी तब दिव्य देह, ओजस्वी, दिव्यगंध वाला, निरोगी, प्रसन्नचेतस् एवं शून्यचारी हो जाता है।

12.5.2 घटावस्था– घटावस्था में योगी के आसन में दृढ़ होने पर विष्णुग्रन्थि के भेदन से निबद्धवायु का सुषुम्ना में संचार होता है तब अतिशून्य अर्थात् कपालकुहर में परमानन्द का सूचक भेरी (वाद्ययंत्र) एवं आघात जन्य शब्द सुनाई देते है तब योगी ज्ञानी तथा देवतुल्य हो जाता है।

12.5.3 परिचयावस्था– परिचयावस्था (तृतीय अवस्था) में साधक को भ्रूमध्याकाश में ढोल की ध्वनि जैसा नाद सुनाई देता है। और तब प्राण, सभी सिद्धियाँ प्रदान करने वो महाशून्य (अन्तराकाश) में पहुँचता है।

12.5.4 निष्पत्ति अवस्था– निष्पत्ति अवस्था (चतुर्थ अवस्था) में जब वायु रूप ग्रन्थि का भेदन कर आज्ञा चक्र – स्थित शिव के स्थान में पहुँचता है तब साधक की वीणा का झंकृत शब्द सुनाई देता है।

12.6 नाद के लाभ

नाद से उत्पन्न लय तत्क्षण ही आनन्द को देने वाला होता है। नाद के विषय में एवं उसकी ध्वनि के विषय में नाद बिन्दु उपनिषद में कहा है कि यह नाद कभी तेज तो कभी बहुत धीरे सुनाई देता है कभी यह नाद सुनाई देता है तो कभी बंद हो जाता है। नाद को सुनने का अभ्यस्त होने पर ही योगी समाधि अवस्था में पहुँचता है। जब नाद प्रथम बार सुनाई देता है तो यह तेज एवं अलग–अलग प्रकार का सुनाई देता है किन्तु जैसे –जैसे अभ्यास बढ़ता जाता है यह ध्वनि हल्की और सूक्ष्म हो जाती है। पहली नाद, समुद्र में उठने वाली भयंकर लहरों की टकराहट से उत्पन्न ध्वनि जैसी प्रतीत होती है मध्य भाग में मांदल और घंटा ध्वनि जैसी सदृश होती है और अंत में यह बंसी की मधुर वाणी और भंवरो की गूँजने की आकर्षित ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है। जो साधक कर्करा आवज से घबरा जाते हैं उन्हें यह नाद बाद में सुनाई नहीं देता किन्तु जो साधक धैर्यपूर्वक इस कर्कश नाद को सुनते हैं उन्हीं को यह नाद मधुर से मधुरतम सुनाई पड़ता है। और धीरे–धीरे साधक का मन नाद ध्वनियों में स्थिर भाव होकर मन आनन्द प्राप्त करने लगता है।

हठप्रदीपिका में बताया गया है कि–

अभ्यस्यमानो नादोऽयं बाह्यमावृणुते ध्वनिम्।
पक्षाद्विक्षेपमखिलं जित्वा योगी सुखी भवेत्।। ह०प्र० 4/83

इस नाद का अभ्यास करने से बाहरी ध्वनि लुप्त हो जाती है और 15 दिनो के अन्दर ही साधक सभी प्रकार के विघ्नों को जीत कर सुखी हो जाता है।

श्रूयते प्रथमाभ्यासे नादो नानाविधो महान्।
ततोऽभ्यासे वर्धमाने श्रूयते सूक्ष्मसूक्ष्मकः।। ह०प्र० 4/84

अर्थात् अभ्यास के प्रथम चरण में विविध प्रकार के गम्भीर नाद सुनाई देते हैं। बाद में अभ्यास बढ़ने पर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर नाद सुनाई देते हैं। सर्वप्रथम समुद्र, मेघ, भेरी, झर्झर–नाद के समान, मध्य में ढोल, शंख, घण्टा तथा घड़ियाल से उत्पन्न के समान और अंत में किड्किणी, वणु, वीणा तथा भ्रमर गुंजार के समान सुषुम्ना में उद्भूत नाना प्रकार के नाद सुनाई देते हैं।

गम्भीर–ध्वनि बाद में सूक्ष्म से सूक्ष्म होती जाती है। मन भी स्थिर होने लगता है, जिस प्रकार मकरन्द (फूलों का रस) का पान कर भ्रमर उसके गंध की अपेक्षा नहीं रखता उसी प्रकार नाद में लीन चित्त बाह्य–विषयों की अपेक्षा नहीं रखता।

मनोमत्तगजेन्द्रस्य विषयोद्यानचारिणः।
नियन्त्रणे समर्थोऽयं निनादनिशिताङकुशः।। ह०प्र० 4/91

अर्थात् विषय रूपी उद्यान में विचरण करने वाले इस चित्त रूपी मदोन्मल हाथी को वश में करने के लिए वह नाद रूपी अतितीक्ष्ण अंकुश सर्वथा समर्थ है।

नाद के स्वरूप को उदाहरण देते हुए कहा गया है कि नाद रूपी बन्धन से बंधा हुआ अर्थात् नाद में आसक्त हुआ चित्त सम्यक प्रकार से अपनी चंचलता को छोड़ देता है अर्थात् क्षण–क्षण में विषय ग्रहण एवं परित्याग रूप चंचलता छोडकर मन भली प्रकार से स्थिरता को प्राप्त होता है। जैसे उदाहरण के लिए आकाश में उड़ने वाले पक्षी के यदि पंख काट लिए जाए तो वह एक ही स्थान पर बैठा रहेगा, ठीक उसी प्रकार प्रतिक्षण विषय बदलते रहने वाला चित्त एकमात्र नाप में आसक्त होकर स्थिरता को प्राप्त होता है।

अभ्यास प्रश्न

एक शब्द में उत्तर दीजिए–

1– क. नाद की कितनी अवस्थायें है।

ख. नाद की किस अवस्था में ब्रह्मग्रन्थि का भेदन होता है।

ग. नाद की किस अवस्था में विष्णुग्रन्थि का भेदन होता है।

घ. नाद की किस अवस्था में वीणा की आवाज सुनाई देती है।

12.7 सारांश

नद का हठयोग की साधना में बडा महत्व है। नाद से उत्पन्न लय तत्क्षण ही आनन्द को देने वाला होता है। नाद के विषय में एवं उसकी ध्वनि के विषय में नाद बिन्दु उपनिषद में कहा है कि यह नाद कभी तेज तो कभी बहुत धीरे सुनाई देता है कभी यह नाद सुनाई देता है तो कभी बंद हो जाता है। नाद को सुनने का अभ्यस्त होने पर ही योगी समाधि अवस्था में पहुँचता है। जब नाद प्रथम बार सुनाई देता है तो यह तेज एवं अलग–अलग प्रकार का सुनाई देता है किन्तु जैसे –जैसे अभ्यास बढ़ता जाता है यह ध्वनि हल्की और सूक्ष्म हो जाती है। नाद की निम्न चार अवस्थायें है।

- आरम्भावस्था – ब्रह्मग्रन्थि का भेदन फल– आनन्द, दिव्य देह, ओजस्वी, दिव्यगंध वाला, निरोगी, प्रसन्नचेतस् एवं शून्यचारी हो जाता है।
- घटावस्था– विष्णुग्रन्थि का भेदन

  फल– वायु का सुषुम्ना में संचार कपालकुहर में परमानन्द का सूचक भेरी (वाद्ययंत्र) एवं आघात जन्य शब्द सुनाई देते है योगी ज्ञानी तथा देवतुल्य हो जाता है।

- परिचयावस्था– भ्रूमध्याकाश में ढोल की ध्वनि जैसा नाद सुनाई देता है। अ फल– सभी सिद्धियाँ प्रदान करने वो महाशून्य (अन्तराकाश) में पहुँचता है।
- निष्पत्ति अवस्था– वायु रूप ग्रन्थि का भेदन

  फल– वीणा का झंकृत शब्द सुनाई देता है।

12.8 शब्दावली

तत्त्वज्ञान– आत्मा का ज्ञान
अनाहत नाद – बिना आवाज के साथ
आहत नाद – आवाज के साथ
घट– घडा
देह– शरीर
मकरन्द– फूलों का रस
मेघ– बादल
भेरी– एक वाद्य यन्त्र

12.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1– क. चार ख. आरम्भावस्था ग.घटावस्था घ. निष्पत्ति अवस्था

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दिगम्बर स्वामी (2001) स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम, श्रीमन्माधव, योग मन्दिर समिति, लोनावाला
2. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द – आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध (2003) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार।

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. नाद से आप क्या समझते है। विविध शास्त्रो के अनुसार नाद की अपधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. नाद की विविध अवस्थाओ का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

इकाई–13 कुण्डलिनी का स्वरूप तथा कुण्डलिनी जागरण के उपाय

इकाई की संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 कुण्डलिनी शक्ति एक परिचय

13.4 कुण्डलिनी का अर्थ

13.5 कुण्डलिनी का स्वरूप

13.6 कुण्डलिनी का स्थान तथा आकार

13.7 कुण्डलिनी शक्ति का जागरण

13.8 सारांश

13.9 शब्दावली

13.10 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.12 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयो में आपनें बन्ध व मुद्राओं के विविध पक्षों के साथ–साथ नाद की अवधारणा का अध्ययन किया तथा प्रस्तुत इकाई से हम हठयोग के ग्रन्थों में वर्णित कुण्डलिनी शक्ति की जानकारी प्राप्त करेंगे। हठयोग के सभी ग्रन्थों में इस शक्ति का सबसे अधिक वर्णन मिलता है। ग्रन्थकारों ने कुण्डलिनी को सर्प के समान टेढ़ी–मेढ़ी आकार वाली बताया है साधक का मुख्य लक्ष्य कुण्डलिनी जागरण ही है। हम उसे समाधि, निर्वाण, मोक्ष, कैवल्य या मुक्ति कुछ भी कह सकते हैं। इसलिए कुण्डलिनी शक्ति को सोने की पिटारी की तरह गुप्त रखना चाहिए। यह गोपनीय विद्या है।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप–

- कुण्डलिनी के उद्देश्य को समझ सकेंगे।
- कुण्डलिनी के स्थान और अत्कार को जान सकेंगे।
- कुण्डलिनी जागरण का अध्ययन करेंगे।
- हठयोग के ग्रन्थ में वर्णित कुण्डलिनी का विश्लेषण कर सकेंगे।

10.3 कुण्डलिनी शक्ति एक परिचय

हठयोग की परम्परा मे कुण्डलिनी शब्द सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। हठयोग के सभी ग्रंथो में इस शक्ति का सबसे अधिक वर्णन मिलता है। चाहे वह घेरण्ड संहिता हो चाहे शिव संहिता, सभी ग्रंथकारो ने इसका बड़े विस्तार से वर्णन किया है। जैसा कि हम सब जानते हैं कि हठयोग का मुख्य उद्देश्य कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करना है जिसके द्वारा साधक इस संसार के सभी प्रकार के माया–मोह छोड़कर परमात्मा के साथ एकाकार हो जाता है अर्थात् उच्च स्थिति को प्राप्त करता है। इस शक्ति को पश्चिमी विद्वान भी मानते हैं वह इसे सर्पवत् व लयान्विता अग्नि (Serpent Fire) कहते हैं।

मैडम बलैवेट्स्की ने इसे विश्वव्यापी विद्युत शक्ति (Cosmic Electricity) कहा है–

'Kundalini is called the serpentine or annular power, on account of its spiral - like working or progress in the body of the ascetic, developing the power in himself. It is an electric firy ocult for fohatic power, the great pristine force which underlines all organic and inorganic matter.'

(The Voice of the Silence, P. 27)

अर्थात् कुण्डलिनी सर्पाकार या बलयान्विता शक्ति कही जाती है क्योंकि इसकी गति वलयाकार सर्प की जैसे है। योगाभ्यासी के शरीर में यह चक्राकार चलती है और उसमें शक्ति का संचार बढ़ाती है। यह एक वैद्युत अग्निमय गुप्त शक्ति है। यह प्राक्तन शक्ति है जो सेन्द्रिय और निरीन्द्रय सृष्ट पदार्थ मात्र के मूल में है। (कल्याण योगांग पृष्ठ 203)

13.4 कुण्डलिनी का अर्थ

प्रत्येक व्यक्ति को कुण्डलिनी शक्ति के विषय में अवश्य जानना चाहिए क्योंकि यह मानव की उच्च चेतना का प्रतीत है। इस शक्ति को जानने के बाद कुछ और जानने को शेष नहीं रह जाता यही बन्धन और मोक्ष का कारण है।

संस्कृत में 'कुण्डल' का अर्थ होता है– घेरा बनाए हुए। 'कुण्डलिनी' शब्द 'कुण्ड' से बना है तथा इसका अर्थ – कोई गहरा स्थान, छेद या गढ्ढा है। यहाँ कुण्ड का अर्थ है– वह खोखला गढ्ढा जिसमें मस्तिष्क की स्थिति कुण्डली मार कर सोए हुए सर्प की भाँति हैं और यही कुण्डलिनी का वास्तविक अर्थ है।

'कुण्डलिनी' शब्द का तात्पर्य उस शक्ति से है जो गुप्त एवं निष्क्रिय अवस्था में है। किन्तु इस शक्ति के प्रकट होने पर अपनी अनुभूति के आधार पर उसे देवी, काली, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी या अन्य किसी भी नाम से जाना जा सकता है। आध्यात्मिक जीवन में जो कुछ भी होता है, वह कुण्डलिनी जागरण से सम्बन्धित है। किसी भी प्रकार के आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य कुण्डलिनी जागरण ही है। हम उसे समाधि, निर्वाण, मोक्ष, कैवल्य या मुक्ति कुछ भी कह सकते हैं।

13.5 कुण्डलिनी का स्वरूप

हठयोग के प्रत्येक/हर ग्रन्थ में कुण्डलिनी शक्ति को सर्प, सर्पिणी कहा है। हठयोग के ग्रन्थों में कुण्डलिनी शक्ति को एक ऐसी सर्पिणी के रूप में वर्णित किया गया है जिससे सुप्तावस्था में रहने से व्यक्ति को तत्वज्ञान नहीं होता तथा वह संसार के मोह–माया अर्थात् भव–बन्धन में ही फंसा रहता है। जैसे ही साधक इस विषय के बारे में जानता है उसमें तत्वज्ञान के साथ–साथ बहुत सी महान् सिद्धियाँ आ जाती है। वह संसार के सभी बन्धनों को पार कर/छोड़कर मोक्ष का भागी होता है–

कन्दोर्ध्वं कुण्डलीशक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम्।
बन्धनाय च मूढानां यस्तां वेत्ति स योगवित्।। ह०प्र० 3/103

हठयोग के प्रमुख ग्रन्थ हठ प्रदीपिका में जहाँ शक्ति चालिनी मुद्रा का वर्णन प्रारम्भ किया है वहाँ पर ही इस शक्ति की विशेष चर्चा हुए है क्योंकि शक्तिचालिनी मुद्रा द्वारा भी इसका जागरण किया जा सकता है। वहाँ प्रारम्भ में इसके अनेक पर्यायवाची शब्द कहे हैं–

कुटिलाङ्गी कुण्डलिनी भुजङ्गी शक्तिरीश्वरी।
कुण्डल्यरुन्धती चैते शब्दाः पर्यायवाचकाः।। ह०प्र० 3/100

अर्थात् कुटिलांगी, कुण्डलिनी, भुजंगी, शक्ति ईश्वरी, कुण्डली, अरुन्धती आदि शब्दों का प्रयोग सिर्फ इसी शक्ति के लिए किया गया है।

आगे चर्चा करते हुए बताया गया है कि–

उद्घाटयेत् कपाटं तु यथा कुंचिकया हठात्।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत्।। ह०प्र० 3/101

अर्थात् जिस प्रकार चाबी द्वारा ही किवाड़ का ताला खोला जाता है उसी प्रकार योगी कुण्डलिनी के द्वारा मोक्ष द्वार का भेदन करता है।

अन्य ग्रन्थों में भी कहा गया है कि यह शक्ति जागृत होने पर मूलाधार से प्रत्येक चक्र का भेदन करके सहस्रार में पहुँचकर शिव से मिलती है। यह स्थिति प्राप्त करके योगी

धन्य हो जाता है। "जब सहस्रार पूर्ण रूप से जग उठता है तब देहाभिमानी आत्मा में चाहे जब देह से अपने आपको खींच लेने और चाहे जब देह में लौट आने की शक्ति आ जाती है और यह सब करते हुए चित्त में चैतन्य बना रहता है।" (कल्याण योगांक, पृष्ठ 406)

इस स्थिति को प्राप्त करने के बाद साधक का शरीर, चित्त आदि पर नियंत्रण प्राप्त करके रोग, शोक आदि से मुक्त हो जाता है। तब द्रष्टा की स्वरूपस्थिति हो जाती है– तदा द्रष्टुः स्वरूपे उवस्थानम।। (योग सूत्र – 1/3)

13.6 कुण्डलिनी का स्थान तथा आकार

कुण्डलिनी हमारे शरीर में रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले हिस्से में सोई हुई एक गुप्त शक्ति है। पुरुष के शरीर में इसकी स्थिति मूत्राशय और मलाशय के बीच पेरीनियम में है। जबकि स्त्रियों के शरीर में यह गर्भाशय – ग्रीवा यानि सर्विक्स में स्थित है। वस्तुतः यह केन्द्र एक स्थूल संरचना है जिसे मूलाधार चक्र कहते हैं।

हठ योग प्रदीपिका में इसके स्थान को बताते हुए कहा गया है कि–

कन्दोर्ध्वं कुण्डली शक्तिः ह०प्र० 3/103

अर्थात् कन्द के ऊपर और उपस्थ के नीचे इस कुण्डलिनी शक्ति का स्थान है।

इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी।
इडापिङ्गलयोर्मध्ये बालरण्डा च कुण्डली।ह०प्र० 3/106

इड़ा भगवती गंगा है तथा पिंगला यमुना नदी हैं, इड़ा–पिंगला के बीच में स्थित बालरण्डा कुण्डली है।

योगयाज्ञवल्क्यम् में भी कहा गया है कि मूलाधार चक्र के ऊपन नाभि के पास इसका स्थान है–

तस्योर्ध्वं कुण्डलीस्थानं नाभेस्तिर्यगथोध्वर्तः।। (योगयाज्ञ० 4/21)

भक्तिसागर में इसका स्थान नाभि को बनाया गया है–

नाभिस्थान नागिन रहै कुण्डल शशी अकार।
प्राणपियारा वही है आगे सुनौ विचार।। (भ०सा०अ०यो० – 106)

तथा

ब्रह्मनाडिका के छिद्र माँही।
रोकि रही मुख दे रही छाँही।।
लाय लपेटे नाभि ठाहीं।
दृढ छै बैठि सरकै नाहिं।। (भ०सा०अ० योग – 101)

अर्थात् सुषुम्ना से स्थित ब्रह्मनाड़ी के अंतिम छोर पर उसके छिद्र में मुँह लगाकर सोई हुई है। उसने नाभि में लपेट लगा रखी है जिससे ऊपर की तरफ नहीं जाती। तथा–

नाभिठौर ताका है वासा।। (वही – 107)

कुण्डलिनी शक्ति का आकार

कुण्डलिनी शक्ति के आकार के बारे में बताते हुए कहा गया है कि–

कुण्डली कुटिलाकारा सर्पवत् परिकीर्तिता।
सा शक्तिश्चालिता येन स मुक्तो नात्र संशयः।। ह०प्र० 3/104

अर्थात् कुण्डलिनी सर्प के सामान टेढ़ी–मेढ़ी आकार वाली बतायी गई है।

आकार के सम्बन्ध में भक्ति सागर में कहा है–

सवाविलस्त की जाकी देही।
तामें अस्थित नीव सनेही।। (भ०सा०अ०यो० – 101)
नागिन सूक्ष्म जानिए बाल सहसवाँ भाग।
शुकदेव कहै आकार ही, रक्त चरण ज्योंनाग।। (वही – 108)
नाभिठौर ताका है वामा। पराग मणिज्यों परकासा।
आठ लपेटे वाई जानौ। तातै शक्ति कुण्डली मानौ।। (वही – 108)

अर्थात् सवा बालिश्त (लगभग एक फुट) लम्बी, बाल के हजारवें भाग के बराबर नागिन की तरह अत्यन्त सूक्ष्म लाल रंग की है। पराग मणि की तरह रक्तिम् प्रकाशयुक्त, कुण्डलिनी आठ लपेटे वेकर नाभिस्थान में सुप्तावस्था में स्थित है। योगयाज्ञवल्क्यम् में भी आठ प्रकृति रूप आठ कुण्डल (लपेट) की चर्चा की गई है। यहाँ सर्पिणी रूपी कुण्डलिनी द्वारा आठ लपेट लगाने की चर्चा की गई है तथा उसे नाभिस्थान में अवस्थित कहा है।

13.7 कुण्डलिनी शक्ति का जागरण

कुण्डलिनी शक्ति को जगाने के लिए योगाभ्यासो जैसे– आसन, प्राणायाम, मुद्रा, क्रिया योग और ध्यान के द्वारा तैयारी करनी पड़ती है। जब हम प्राणों के प्रवाह को कुण्डलिनी के निवास तक प्रेषित करने में सफल हो जाते हैं तो इस शक्ति का जागरण होता है तथा यह मुख्य नाड़ी, सुषुम्ना के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुँचती है। कुण्डलिनी अपनी उर्ध्व गमन के समय सभी चक्रो का भेदन करती है।

कुण्डलिनी जागरण के कई उपाए बताए गए है। स्वामी सत्यानन्द द्वारा लिखी गई पुस्तक कुण्डलिनी योग में निम्नलिखित उपायों का वर्णन किया है–

(1) जन्मजात कुण्डलिनी जागरण
(2) मंत्र द्वारा जागरण
(3) तपस्या द्वारा जागरण
(4) जड़ी–बूटियों द्वारा जागरण
(5) राजयोग साधना द्वारा जागरण
(6) प्राणायाम द्वारा जागरण
(7) क्रिया योग द्वारा जागरण
(8) तांत्रिका दीक्षा द्वारा जागरण
(9) शक्तिपात द्वारा जागरण
(10) आत्मसमर्पण द्वारा जागरण

इन उपायों में जन्मजात कुण्डलिनी जागरण पूर्वजन्म की साधना के संस्कारों से होता है। शक्तिपात द्वारा जागरण गुरु की इच्छा पर निर्भर होता है। अन्य उपायों में साधक स्वयं परिश्रम करता है। इनमें प्राणायाम द्वारा शक्ति जागरण हठयोग द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त है।

हठयोगप्रदीपिका में कुण्डलिनी जागरण को मोक्ष प्राप्ति का एक मात्र साधन माना है इसलिए इसके जागरण पर अत्यधिक बल दिया गया है–

उद्घाटयेत् कपाटं तु यथा कुंचिकया हठात्।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत्।।
येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम्।
मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।। ह०प्र० 3/101
102

अर्थात् जैसे चाबी के द्वारा आसानी से द्वार को खोला जा सकता है, उसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने पर मोक्षद्वार का भेदन किया जा सकता है। जिस मार्ग से ब्रह्मस्थान को सुगमतापूर्वक जाया जा सकता है, उस द्वार को अपने मुख से ढककर यह परमेश्वरी शक्ति (कुण्डलिनी) सुप्त पड़ी है। इसको जगाने की विधि का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इस शक्ति की पूँछ पकड़कर जगाना चाहिए जिससे यह उर्ध्व गति करें–

पुच्छे प्रगृह्य भुजगीं सुप्तामुद्बोधयेच्च ताम्।

निद्रां विहाय सा शक्तिरूर्ध्वमुत्तिष्ठते हठात्।। ह०प्र० 3/107

हठयोग प्रदीपिका में इस शक्ति को जगाने के लिए कन्दपीडासन करके भस्त्रिका प्राणायाम (शक्तिचालिनी भुद्रा) करने को कहा है–

सति वज्रासने पादौ कराभ्यां धारयेद् दृढम्।

गुल्फदेशसमीपे च कन्दं तत्र प्रपीडयेत्।। ह०प्र० 3/110

वज्रासने स्थितो योगी चालयित्वा च कुण्डलीम्।

कुर्यादनन्तरं भस्त्रां कुण्डलीमाशु बोधयेत्।। ह०प्र० 3/111

उसे दो मुहूर्त (40 मिनट) तक इस विधि को करे। इससे वह शक्ति सुषुम्ना मुख को छोड़ देती है जिससे सुषुम्ना में प्राणसंचरण हो जाता है–

मुहूर्तद्वयपर्यन्तं निर्भयं चालनादसौ।
ऊर्ध्वमाकृष्यते किंचित् सुषुम्नायां समुद्गता।। ह०प्र० 3/113
तेन कुण्डलिनी तस्याः सुषुम्नायां मुखं ध्रुवम्।
जहाति तस्मात् प्राणोऽयं सुषुम्नां व्रजति स्वतः।। ह०प्र० 3/114

स्वामी चरणदास भस्त्रिका प्राणायाम की महत्ता बताते हुए कहते है–

कुण्डलिनी देवै जगाय यह कुम्भक सुखदाय।
करजु हित व्रत धारिकै चरणदास चितलाय।।
शिव शक्ति मेला भवै रहे न दूजो भाव।

कुण्डलिनी परबोधका जो कोई करै उपाव।।

अर्थात् यह भस्त्रिका प्राणायाम कुण्डलिनी को जगाने वाला है। मन में निष्ठा से व्रत धारण कर इसका अभ्यास करना चाहिए। इसके द्वारा ही शिव–शक्ति का मिलन होकर साधक को एकत्व भाव की प्राप्ति होती है। कुण्डलिनी शक्ति जागरण की प्रक्रिया में जब शक्ति जागृत होकर उर्ध्वगमन करती है तो क्रमशः चक्रों में चेतय व्याप्त हो जाती है। चेतना आने पर अधोमुख कमल (चक्र) उर्ध्व मुख हो जाते हैं। प्रत्येक चक्र में कुण्डलिनी शक्ति के पहुँचने पर तत्सम्बन्धी नाडियाँ प्रकाशमान होकर अत्यधिक गतिशील हो जाती है। आज्ञाचक्र पर पहुँचने पर ध्यान की स्थिति प्रगाढ़ होकर सम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है तथा सहस्रार चक्र में पहुँचने पर असम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध हो जाती है। पूर्ण ज्ञान की स्थिति भी तभी प्राप्त हो जाती है तथा साधक में अनेकानेक योग्यताएँ (सिद्धियाँ) आ जाती है। किन्तु चक्र भेदन सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। इसके लिए ध्यान की प्रगाढ़ता आवश्यक है तथा महर्षि पतंजलि प्रणीत चतुर्थ प्राणायाम (बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी) को भली भाँति दृढ़ कर लेना चाहिए। भोजन शुद्ध, सात्विक, सुपाच्य, अल्पमात्रा में लेना चाहिए। अभ्यास की दृढ़ता तथा गुरु–निर्देशन आवश्यक है। यह गोपनीय विद्या है। अतः प्रकट नहीं करनी चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

एक शब्द में उत्तर दीजिए–

(क) किस वैज्ञानिक ने कुण्डलिनी को Cosmic Electricity कहा है।

(ख) किस ग्रन्थ में कुण्डिलनी का स्थान कन्द के ऊपर और उपस्य के नीचे बताया गया है।

(ग) किस ग्रन्थ में कुण्डलिनी का स्थान नाभि बताया गया है।

(घ) भक्ति सागर में कुण्डलिनी का आकार कितना बताया गया है।

(ङ) कुण्डलिनी जागरण के लिए किस प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

13.8 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके ळें कि हठयोग के ग्रन्थों में कुण्डलिनी की उपयोगिता को स्वीकार किया है। वाक्तव में कुण्डलिनी हठयोग के अभ्यास में अंतिम पराकाष्ठा को प्राप्त करने में सहायक है। कुण्डलिनी के अध्ययन से जिज्ञासु पाठक तािा जन सामान्य भी असीम आनन्द की प्रापित करेंगे और कुण्डलिनी शक्ति का जागरण कर समाधि की प्रापित करेंगे।

13.9 शब्दावली—

प्राक्तन शक्ति	—दैवीय शक्ति
निर्वाण	— मुक्ति,समाधि
कन्द	— जमीन के अन्दर का फल
इड़ा	—चन्द्र नाड़ी
पिंगला	—सूर्य नाड़ी
निष्ठा	— किसी चीज पर अखण्ड विश्वास
एकत्व भाव	— एक भाव
ऊर्ध्वगमन	— ऊपर की और जाना
सुपाच्य	— पचने योग्य
मुहूर्त	— शुभ समय

13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर—

(क) मैडम बलैवेट्स्की

(ख) हठयोगप्रदीपिका

(ग) भक्तिसागर

(घ) सवा वालिश्त (लगभग एक फुट)

(ङ) भस्त्रिका प्राणायाम

13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दिगम्बर स्वामी (2001) स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम, श्रीमन्माधव, योग मन्दिर समिति, लोनावाला

2. निरंजनानन्द स्वामी (2003) महर्षि घेरण्ड कृत घेरण्ड संहिता योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार

3. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द – आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध (2003) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार

13.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कुण्डलिनी शक्ति से आप क्या समझते हैं? कुण्डलिनी का अर्थ तथा स्वरूप की विस्तार से चर्चा कीजिए।

2. कुण्डलिनी शक्ति के स्थान तथा आकार की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

3. कुण्डलिनी शक्ति जागरण का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

इकाई– 14 घेरण्ड संहिता में वर्णित धौति की विधि लाभ एवं सावधानियॉ

इकाई की संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 धौति

14.3.1 अन्तः धौति

14.3.2 दन्त धौति

14.3.3 ह्रद धौति

14.3.4 मूलशोधन

14.4 सारांश

14.5 शब्दावली

14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.8 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

योग वस्तुतः प्राचीनतम आर्ष ग्रन्थों से निकलना नवनीत है। योग की विविध विधाओं (ज्ञान, योग, कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, हठयोग इत्यादि) के माध्यम से योगी अपने अभीष्ठ की प्राप्ति करता है। हठयोग योग की एक महत्वपूर्ण शाखा है। जिसमें शुद्धिकरण की क्रियाओं में षटकर्मो का उल्लेख किया गया है। महर्षि घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता नामक पुस्तक में छ कर्म घट रूपी शरीर को शुद्धि के लिए बताये गये हैं जिनमें घौति कर्म सबसे पहला कर्म है। घौति का अर्थ धोने अर्थात शुद्धिकरण के रूप में प्रयुक्त होता है।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप

- धौति कर्म क्या है समझ सकोगे।
- धौति के विविध प्रकारों का विश्लेषण करेंगे।

- धौति के विविध लाभों को जान सकोगे।
- धौति कर्म करते समय सावधानियों का अध्ययन करेंगे।

14.3 धौति

प्रस्तुत इकाई में धौति कर्म का विस्तार से वर्णन किया गया है। धौति षटकर्मो में सबसे पहला कर्म है। योग की अभीप्सा रखने वाले विद्यार्थियों में धौति के बारे में निम्न प्रश्नों के उत्तर जानने की अभिलाषा रहती है।

- धौति कर्म वस्तुत क्या है ?
- धौति कर्म की विधि क्या है और यह कैसे की जाती है ?
- धौति कर्म के शरीर पर क्या प्रभाव पढते हैं ?
- धौति करते समय मुख्यत कौन–कौन सी सावधानियॅा बरतनी चाहिए ?

अगले पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के बाद आप उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जान लेने में सक्षम हो जायेगें। धौति अर्थात धोना वाहय रूप से शरीर की शुद्धि के लिए हम तरह–तरह के उपाय करते हैं जैसे स्नान इत्यादि। पर अन्तःकरण की सफाई के लिए शरीर को शुद्ध करने के लिए महर्षि घेरण्ड ने घौति कर्म किया है। धौति कर्म के माध्यम से योगी विविध तत्वों जल, वायु, अग्नि, के माध्यम से घडे रूपी शरीर की सफाई करता है।

महर्षि घेरण्ड ने घर रूपी शरीर की शुद्धि के लिए निम्न चार प्रकार की धौतियों का वर्णन किया है और पहले अध्याय के 13 वें श्लोक में कहा है।

'अन्त धौंतिर्दन्त धौतिर्हद्धौतिर्मूलशोधनम
धौतिंचतुर्विद्यांकृत्वाघटं कुर्वन्ति निर्मलम्

घेरण्ड संहिता 1/13

अन्तः धौति,दन्त धौति, हृद धौति और मूलशोधन के भेद से धौति कर्म चार प्रकार का माना गया है। इसके द्धारा योगी जन अपने शरीर को स्वच्छ कर अच्छा स्वास्थ्य बनाते हैं।

14.3.1 अन्त धौति – वस्तुतः शरीर और मन को विकार रहित बनाने के लिए शुद्धिकरण अत्यन्त आवश्यक है। विविध रोग भी अशुद्धि की अवस्था में ही जन्म लेते हैं। अन्तः धौति का अर्थ है– अन्तः अर्थात आन्तरिक या भीतरी तथा धौति का कार्य है धोना अर्थात आन्तरिक सफाई के रूप में अन्तः धौति का प्रयोग किया जाता है। अन्त धौति के निम्न चार प्रकार हैं।

(क) वातसार अन्त धौतिः वात अर्थात हवा या वायु और सार का अर्थ है तत्व अर्थात वायु तत्व से अन्तःकरण की सफाई करना वातसार अन्तः धौति का प्रमुख उददेश्य है। महर्षि घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता में वातसार धौति की निम्न विधि बताई है।

काकचक्ष्चु वदास्योन पिबेद्धायुं शनै शनै

अर्थात कौवे की चोंच के समान दोनों ओठों को करके शनैः शनैः वायु को पीयें। पूर्णरूप से पान कर लेने पर पेट में उसका परिचालन करें और फिर उस वायु को निकाल दे।

क्रियाविधि–

(1) सर्वप्रथम किसी अभ्यस्थ ध्यान के आसन में बैठ जाये। (2) कमर सिर व गर्दन को एकदम सीधा रखें। (3) मुंह से कौवे की चोंच सा आकार बनायें। (4) धीरे–धीरे वायु का पान करते हुए पेट में भरने का प्रयत्न करें। (5) जब पूरी श्वास से पेट भर जाये तब शरीर ढीला कर वायु को उदर में घुमायें (6) धीरे.धीरे श्वास को दोनों नासाछिद्रों से बाहर निकाल दें।

लाभ –

(1) इस गोपनीय क्रिया से शरीर निर्मल होता है। (2) यह कफ दोष को दूर करती है।

(3) सभी रोगों को नष्ट करती है। (4) पाचन शक्ति को बढाती है तथा जठराग्नि को भी तेज करती है।

(5) अम्लर पित्त में बेहद लाभकारी है।

सावधानियॉ –

(1) यह क्रिया हमेशा खाली पेट करें।

(2) यह अभ्यास अधिकतम पॉच बार ही करना चाहिए।

(3) अधिक वृद्ध व्यक्ति कमजोर व्यक्ति यह अभ्यास न करें।

(4) हृदय रोगी या कोई बडा आपरेशन हुआ हो तो वह व्यक्ति इस अभ्यास को न करे।

(ख) वरिसार अन्तः धौति : वारि अर्थात जल तथा सार का अर्थ है तत्व इस धौति में जल तत्व से अन्तःकरण की सफाई की जाती है अत इसे वारिसार अन्तः धौति कहा जाता है। महर्षि घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता के 17 वें व 18 वें श्लोक में कहा है।

''आकण्यं पूरयेद्धारि वक्त्रे्ण च पिबेच्छदनै

चालये दुदरेणैव चोदराद्रेचयेदधः

वारिसारे पर गोप्यें देहनिर्मल कारकम्

साधयेन्तपत्र यलेन देवदेहं प्रपधते''

घेरण्ड संहिता 17,18

अर्थात :– मुख से धीरे–धीरे जल पीतें हुए कण्ठ तक जल से भर लेना है। इसके बाद उदर को चला कर जल को अधोमार्ग से निकाल देना है। यह वारिसार नामक धौति परम गोपनीय एवं शरीर को स्वच्छ करती है। इसका प्रयत्नपूर्वक साधन करने वाले योगी को देवताओं के समान शरीर की प्राप्ति होती है।

क्रियाविधि–

इस क्रिया को शंखप्रक्षालन भी कहते हैं।

(1) एक बाल्टी में गुनगुना पानी लें तथा उसमें स्वादानुसार नमक डाल दें।

(2) सर्वप्रथम दो गिलास गुनगुना पानी पीये फिर निम्न पॉच आसन त्वरित गति से करें।

- ताडासन
- तिर्यक ताडासन
- कटि चक्रासन
- तिर्यक भुजगांसन
- उदराकर्षण

(3) फिर पुनः 2 गिलास पानी पीकर उपरोक्त आसनों को करें।

(4) जब तक शौच की इच्छा न हो उन क्रिया दोहराते रहें।

(5) 10–15 गिलास पानी पीकर जब उक्त क्रिया हो जाये तो विश्राम करें।

(नोट– उक्त यौगिक क्रिया का वर्णन आपको सिर्फ अध्ययन करने के लिये बताया जा रहा है। इस क्रिया को कुशल मार्गदर्शन में ही करें।)

लाभ–

यह शरीर की शुद्धि की सबसे महत्वपूर्ण क्रिया है इसके मुख्य लाभ निम्नांकित है–

(1) इस क्रिया से समस्त पाचन संस्थान की सफाई होती है।

(2) शरीर में अपशिष्ट पदार्थ (मल) पूर्ण रूप से निकल जाता है।

(3) इस क्रिया से देव देह की प्राप्ति होती है।

(4) योगी देवता के समान दिव्य, कान्तिमान, ओजस्वी हो जाता है।

(5) मोटापे को कम करता है तथा शरीर हल्का हो जाता है।

सावधानियॉ –

(1) इस अभ्यास को हमेशा कुशल, योगगुरू के सलाह में ही करें।

(2) उच्च रक्तचाप ह्दय रोग में यह अभ्यास सोंफ के पानी के साथ उचित मार्गदर्शन में किया जाता है।

(3) गर्भवती स्त्री, हार्निया से पीडित व्यक्ति बिल्कुल इस अभ्यास को न करें।

(4) अभ्यास के बाद व पहले दिन से ही रसाहार पतली खिचडी का सेवन ही करना चाहिए।

(5) चूंकि वारिसार धौति (शंखप्रक्षालन) से शरीर नाजुक हो जाता है। अतः 40 दिनों तक कोई एलोपैथिक दवाइयों का सेवन ना करें।

(ग) अग्निसार अन्तः धौतिः– अग्नि शब्द से आप सर्वविदित होगें और सार का अर्थ है तत्व चूंकि इस अभ्यास से जठराग्नि बढती है तथा पाचन क्रिया बढती है इसलिए इसे अग्निसार अन्तः धौति कहा जाता है। महर्षि घेरण्ड कहते है।

'नाभिग्रन्थि मेरूपृष्ठ रूतवारं चकारयेत्
अग्निसारमियं धौतियागिनां योगसिद्धदा
उदरामयजं त्व क्यायिं जठराग्नि विवर्द्धियेत
एसा धौतिरूपरा गोप्या देवानापि दुर्लभा
केवलं धौतिमाद्त्रेण देवदेहं भवेद ध्रुवम्'
घेरण्ड संहिता 19–20

अर्थात प्राण वायु को रोक कर नाभि को पृष्ठ भाग में लगायें। इससे अग्निसार धौतिकर्म सम्पन्न होता है। इससे सभी उदर रोग नष्ट होते हैं जठराग्नि तीव्र होती है। यह धौति कर्म अत्यन्त गोपनीय और देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। केवल इस कर्म के करने मात्र से देवताओं जैसा शरीर हो जाता है। इसमें सन्देह नही है।

क्रियाविधि–

(1) वज्रासन, अर्धपद्मासन या सिंहासन में बैठें।

(2) रीढ की हडडी एक सीध में रखिए।

(3) दोनों हाथ को तानकर घुटनों में रखिए।

(4) मुंह खोलकर जीभ बाहर निकालकर पूरी श्वास को बाहर निकाल दीजिए।

(5) श्वास को बाहर रोककर पेट को जल्दी–जल्दी अन्दर–बाहर करें। यह प्रयास रहे कि नाभि प्रदेश पृष्ठ भाग पर लगे।

(6) कुछ पल आराम के बाद इस क्रिया को पुनः उचित मार्गदर्शन में दोहराये।

लाभ

(1) पाचन सम्बन्धी विकारों को नष्ट करता है।

(2) उदर गत मॉसपेशियों को मजबूत बनाता है।

(3) जठराग्नि को तेज कर पाचक रसों का नियंत्रण करता है।

(4) मानसिक रोंगों में अवसाद की अन्तर्मुखी अवस्था में लाभकारी है।

(5) योग के आध्यात्मिक लाभ कुण्डलीनी जागरण में भी सहायक है।

सावधानियॉ

(1) वस्तुतः योग की सभी क्रियायें खाली पेट की जानी हैं। अतः भोजन के बाद इसे नही करें।

(2) उच्चत चाप व ह्दय रोगी इस अभ्यास को बिल्कुल ना करें।

(3) अल्सर, हार्नियॉ, दमा के रोगियों के लिए वर्जित है।

(4) शारीरिक क्षमता के अनुसार गुरू के निर्देश में ही करें।

(घ) बहिष्कृत अतःधौतिः– बहिष्कृत का अर्थ त्यागने छोडने या निकालने के अर्थ में प्रयोग होता है। इस धौति में अन्त.करण से अवशिष्ट वायु को गुदा मार्ग से बाहर निकालते हैं। महर्षि घेरण्ड, घेरण्ड संहिता 1/21 में कहते है– अर्थात कौवे की चोंच के समान ओठों को करके उनके द्धारा वायु–पान करते हुए उदर को भर लें। उस पान की हुई वायु को आधे प्रहर (1) घंटे तक उदर में रोक कर परिचालित करते हुए अधोमार्ग से निकाल दें। यह परम गोपनीय वहिष्कृत धौति कहलाती है।

क्रियाविधि–

यह क्रिया सहज नही की जा सकती एक योग्य शिक्षक की देखरेख में करें अन्यथा परेशानियॉ हो सकती है। (1) ध्यान के कोई आसन में बैठ जाये

(2) दोनों हाथों को घुटने पर रखें।

(3) काकी मुद्रा (कोवे की चोंच के समान) में वायु का धीरे–धीरे पान करें।

(4) 1 घंटे वायु का परिचालन पेट पर होने दें। अन्त में अधोमार्ग से उसे बाहर निकाल दें।

लाभ–

(1) उदरगत विकार दूर होते है।

(2) शरीर हल्का, कान्तिमान हो जाता है।

(3) कुण्डलीनी शक्ति जागरण में लाभकारी है।

(4) प्रजनन संस्थान को बलिष्ठ बनाती हैं।

सावधानियॉ–

वही व्यक्ति इस अभ्यास को करे जिसे 1 घंटे श्वास रोकने का अभ्यास हो। इसे एक योगी ही कर सकता है। अतः इस अभ्यास में विशेष मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

14.3.2 दन्त धौति–

सामान्य रूप से आप दन्ते धौति का अर्थ दॉतों की सफाई के रूप में समझ रहे होगें। लेकिन दन्त–धौति को महर्षि घेरण्ड ने शीर्ष प्रदेश की सम्पूर्ण स्वच्छता के रूप में प्रयुक्त है। इस धौति के निम्न प्रकार है।

(क) दन्त मूल धौतिः– दन्त मूल अर्थात दॉतों की जड और धौति का अर्थ है धोना। अर्थात इस अभ्यास में दॉतों की जड की स्वच्छता की जाती है। महर्षि घेरण्ड कहते हैं।

'खादिरेण रसेनाथं शुद्धमृक्तिकया तथा
मार्जयेदन्तामूलं च यावत्किल्विषमाहरेत्
दन्त मूलं पराधौतियोगिनां योग साधने
नित्यौ कुर्यात्प्रकभाते च दन्तसरक्षाच योगवित्

दन्त मूंल धावनादिकार्येष योगिनां मतम'

घेरण्ड संहिता 26/27

जब तक मैल न छूटे तब तक खादिर के रस अथवा विशुद्ध मिट्टी से दॉतों की जडों को मॉजना चाहिए। योगियों को यह साधन अपने दॉतों की रक्षा के लिए नित्या प्रातःकाल अवश्य करना चाहिए। योग को जानने वाले पुरूष इस दन्तमूल धौति को प्रमुख कर्म मानते हैं।

क्रियाविधि–

प्राचीन समय में दन्तमंजन चूर्ण बनाने की विधि आयुर्वेद में बताई गई है। दन्तमंजन चूर्ण के अलावा शुद्ध चिकनी मिट्टी (जिसे घर में लिपने में प्रयोग करते हैं) या खादिर (कत्थे) के रस को मिट्टी में मिलाकर तर्जनी अंगुली से दॉतों की जडों को साफ करते हैं। फिर शुद्ध पानी से कुल्ला कीजिए। यह क्रिया प्रातःकाल व सांय भोजन के बाद भी की जा सकती है।

लाभ–

नित्य इस अभ्यास को करने से दॉतों की सफाई तो होती ही है साथ ही साथ दॉतों मं फॅसा मल भोजन के टुकडे बाहर निकल जाते है। मुंह में कहीं छाले पडे हो तो खादिर का रस औषधि का काम भी करता है।

सावधानियॉ–

(1) जिस भी चूर्ण (दंत मंजन, खादिर, मिट्टी) का उपयोग कर रहे हो वह बारीक पीसा गया हो।

(2) दॉतों में पीब, कीडे या छेद हो तो आयुर्वेदिक औषधि चिकित्सा के बाद ही इस अभ्यास को करें।

विशेषः– दन्त मंजन चूर्ण बनाने की एक सस्ती व सरल प्रक्रिया है। बादाम के छिलकों को आग में जलाकर कोयला बना लें फिर उस कोयले का पाउडर बनाकर उसमें पीसी लोंग, सेंधा नमक, नीम के पत्तों का पाउडर मिला दें। इस चूर्ण का प्रयोग भी दॉतों के लिए लाभकारी है।

(ख) जिहवाशोधन धौतिः– जीभ के शोधन की यह प्रकिया जीभ की लम्बाई बढाने तथा अनेकानेक रोगों में लाभकारी है।
महर्षि घेरण्ड कहते है

'तर्जनीमध्य मानामा अंगगुलित्रययोगतः
वेशयेप्रलमध्येय तु मार्जयेल्ल, म्बिकामूलम्
शनैशनैः मार्जयित्वां कफदोषं निवारयेत्
मार्जयेन्नरतनीतेन दोहयेच्च्ं पुनः पुनः
तदगं लोहयन्त्रे ण कर्षयित्वान शनैःशनैः
नित्यं कुर्यात्प्रनयत्नेरून खेः दयकेइस्तरूके
एवं कृते च नित्यंर सा लम्बिका दीर्घना ब्रजेत'

घेरण्ड संहिता 29/30/31

अर्थात तर्जनी, मध्यमा और अनामिका, तीनों अंगुलियों को मिलाकर कंठ में डाल जिह्वा की जड को स्वच्छ करना चाहिए। धीरे–धीरे कोमलता से रगडने से कफ दोष का निवारण होता है। जब वह सफाई रगडना हो जाये तब जीभ में थोडा मक्खन लगा लें। पुनः दूध दोहने जैसी क्रिया करें। तद्पश्चात लोहे की चिपटी से जीभ को पकडकर बाहर खीचें। अभ्यास को प्रतिदिन सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय, करने से जिह्वा की लम्बाई बढ जाती है।

क्रियाविधि– यह एक सहज प्रक्रिया है दोहन क्रिया में जीभ में मक्खन डाल लें। बाजार में प्लास्टिक या स्टील की जिह्वा निर्लेखनी मिलती है उससे भी जीभ की सफाई की जा सकती है।

लाभ –

(1) इस क्रिया से जीभ की लम्बांई बढती है जिससे भाषा की स्पष्टता रहती है।

(2) जीभ के दोहन से गले व श्वास नली में एकत्र श्लेष्मा निकल जाता है।

(3) इससे व्याधि, बुढापा व मृत्यु को दूर भगाया जा सकता है।

(4) खेचरी मुद्रा की सिद्धि में लाभकारी है।

सावधानियॉ–

(1) जीभ में छाले हो तो इस अभ्यास को नही करें।

(2) अपनी अंगुलियों को मुंह के ज्यादा अन्दर ना डालें।

(3) नाखुन अवश्य कटे हो अन्यथा मैल तो जायेगा ही स्वर यंत्र या मुंह में चोट लग सकती है।

(ग) कर्णरन्ध्र धौतिः– चुंकि इससे कान के छिद्रों की सफाई की जाती है इसलिए इसे कर्णरन्ध्र धौति कहते हैं। महर्षि घेरण्ड कहते हैं।

तर्जन्यणनामिका योगान्मारजयेत्कइर्णस्धियोः

नित्याभ्यास योगेन नादान्त्र प्रकाशयेत्

घेरण्ड संहिता 1/32

अर्थात तर्जनी और अनामिका को मिलाकर योगी जन दोनों कानों के छिद्रों की सफाई करते हैं। इस विधि के नित्य अभ्यास से नाद की अनुभूति होती है।

क्रियाविधि–

(1) तर्जनी या अनामिका अंगुली को गीला कर लें। तद्पश्चात कान के अन्दर डालकर उसे घुमायें अंगुली को गीला करने के लिए सरसों के तेल में लहसुन डालकर उसका उपयोग भी कर सकते हैं।

लाभ– कानों की सफाई होती है दिव्यं नाद की अनुभूति होती है इसलिए इसके अध्यात्मिक लाभ भी हैं।

सावधानियॉ

(1) माचिस की तिल्ली से इस क्रिया को ना करें।

(2) अंगुलियों के नाखुन अवश्य कटें होने चहिए।

(घ) कलालरन्ध्र धौतिः– कपालरन्ध्र अर्थात नवजात बच्चे के सिर पर वह स्थान जो पिचकता महसूस होता है उस स्थान की इससे सफाई होती है। अतः इसे कपालरन्ध्र धौति कहते हैं।

महर्षि घेरण्ड कहते हैं।

वृद्धागुष्ठे न दक्षेण मार्जयेद्धालस्धु कम

एवमभ्या ससयोगेन कफदोष निवारयेत्

नाडी निर्मलतां याति दिव्यकदृष्टिरू प्रजायते

निद्रान्तोंभिजनान्त् च दिवान्तेय च दिने–दिने

घेरण्ड संहिता 1/33,34

अर्थात अपने दाहिने हाथ की अंगुलियों को समेटकर कप की आकृति बनानी चाहिए और उस कप की आकृति वाले हाथ में पानी भरकर अपने कपालरन्ध्र में थपकी देनी चाहिए। इस प्रकार के अभ्यास से कफ दोष से मुक्ति मिलती है। खोपडी के ऊपर जो नाडियॉ हैं वे निर्मल बनती हैं और दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है। निद्रा की समाप्ति पर भोजन करने के बाद और निद्रा के पहले तथा दिन की समाप्ति पर अपनी खोपड़ी को थपकी देनी चाहिए।

क्रियाविधि

इस धौति की विधि स्पष्ट है दाहिने हाथ का कटोरा बनाकर उसमें पानी भरे तथा शीर्ष प्रदेश (ब्रह्मरन्ध्र) पर धीरे–2 थपकी दें।

लाभ

(1) मस्तिष्क में शीतलता प्रदान होती है मोतियाबिन्द में लाभकारी है।

(2) दूर व निकट दृष्टि दोष दूर होते है।

(3) कफ दोषों (सर्दी, खांसी) में लाभकारी है।

(4) उच्चरक्त चाप में इस धौति से लाभ मिलता है।

(5) गर्मियों में इस अभ्यास को करने से शीतलता मिलती है।

सावधानियॉ

इस अभ्यास में विशेष सावधानी की जरूरत नही है फिर भी जाड़ों में इसका प्रयास वर्जित है। छोटे बच्चों को इस अभ्यास कराने के लिए योग शिक्षक से सलाह अवश्य लें।

14.3.3 ह्दधौति –

ह्द का अर्थ है ह्दय और धौति का अर्थ है धोना इस धौति से ह्दय प्रदेश, अन्न नलिका, आमाशय की सफाई होती है इसलिए इसे ह्दधौति कहते हैं इसके निम्न तीन भेद हैं।

(क) दण्ड धौतिः– दण्ड अर्थात ठंडा और धौति अर्थात धौना इस धौति में हल्दी केले के मृदु भाग के ठंडे से अन्तः प्रदेश की सफाई की जाती है। महर्षि घेरण्ड कहते हैंः–

रम्भा दण्ड हरिदण्डं वेबदण्डंश तथैव च

हन्मडध्ये चालयित्वाड तु पुनः प्रतयाहरेच्छ नैः

कफं पित्तं तथा क्लेमदं रेचयेदूर्ध्ववर्त्मुना

दण्डतधौतिविधानेन ह्द्रोगं नाशयेद् ध्वम

घेरण्ड संहिता 1/36 दृ0 37

अर्थात केले के मृदु भाग के डण्डे हल्दी के डण्डे या बेंत को ह्दय के मध्य में बार–बार घुमा कर धीरे–2 निकालना चाहिए। फिर कफ पित्त, क्लेद का मुख द्वार से रेचन करना चाहिए। यह कर्म ह्दय रोग का भी निश्चित रूप से नाश कर देता है।

क्रियाविधि– परम्परागत रूप से दण्ड धौति के लिए केले, बेंत या हल्दी के मृदु भाग को लेते हैं पर आधुनिक समय में रबर की दण्ड भी बाजार में उपलब्ध रहती है। दण्ड धौति को प्रयोग करने से पहले अच्छी तरह उबाल लें।

(1) सर्वप्रथम 4–5 गिलास स्वच्छ जल (नमकीन) पी लें।

(2) शनैः शनैः रबर, हल्दी, बेंत की दण्ड (जो उपलब्ध हो) मुंह खोलकर आभाशय तक डालें।

(3) फिर थोड़ा आगे झुकें पूरा जल दण्ड के अगले छोर से आने लगेगा।

(4) तदुपरान्त धीरे–2 दण्ड को बाहर निकाले तथा इसके साथ कफ, पित्त, श्लेष्मा, जो भी निकले उसे बाहर थूक दें।

लाभ

(1) कफ, पित्त, क्लेद का निष्काषन इस क्रिया से होता है।

(2) अम्ल पित्त, दवा में यह अभ्यास लाभकारी है।

(3) फेफड़े की क्षमता बढ़ती है ह्दय रोग में भी लाभकारी है।

सावधानियॉ

(1) यहॉ पर दण्ड धौति का वर्णन मात्र एक विधि मानकर किया है हर व्यक्ति इस अभ्यास के योग्य नही है योग शिक्षक की देखरेख में ही इस अभ्यास को करें।

(ख) वमन धौति :– वमन का अर्थ उल्टी करने से है।

महर्षि घेरण्ड ने कहा है

भोजनान्ते पिबेद्रारि चाकण्ठंव पुरितं सुधीः
उर्ध्वा दृष्टि क्षण कृत्वां तज्जतलं वमयेत्पुहनः
नित्यनमभ्या सयोगेन कफपितं निवारयेत्

घेरण्ड संहिता 38/39

अर्थात ज्ञानी साधक को भोजन के उपरान्तय कण्ठ प्रर्यत्न जल पीना और फिर क्षण भर बाद ऊपर की ओर देखते हुए उसे वमन द्धारा निकाल देना चाहिए। इस प्रयोग से कफ व पित्त का निवारण होता है।

नोटः– उपरोक्त महर्षि घेरण्ड का विवेचन व्याघ्र क्रिया को अंगित करता है। वमन वस्तुतः दो प्रकार का होता है एक खाली पेट जिसे कुंजल नाम दिया है और दूसरा भोजन के उपरान्त किये जाने वाली व्याघ्र क्रिया।

क्रियाविधि–

(1) सर्वप्रथम बैठकर बिना रूके हुए गुनगुना नमकीन जल इच्छानुसार 5/ 7 / 10 गिलास तक दिये।
(2) फिर उठकर तर्जनी, मध्यमा व अनामिका ऊंगली को गले तक डालकर वमन करे।
(3) अंगुलियों को पुनः मुंह के भीतर ले जाये यह क्रिया तब तक दोहरायें जब तक पेट खाली ना हो।

लाभ–

(1) आभाशय को स्वच्छ कर विकार रहित बनाती है।
(2) कफ, पित्त, क्लेद को बाहर निकालती है।
(3) अत्रीर्ण, अम्लपित्त में लाभकारी है।
(4) दमा के रोगी को कफ के विरेचन हो जाने के कारण लाभ मिलता है।

सावधानियॉ–

(1) पानी गुनगुना नमक युक्त व स्वच्छ हो।

(2) हाथ के नाखुन पूरे कटे होने चाहिए।

(3) हार्निया व कमर दर्द में इस अभ्यास को ना करें।

(ग) वासन धौति (वस्त्र धौति) : – वासन अर्थात वस्त्र (कपडे) की पट्टी से इससे पाचन संस्थान की सफाई की जाती है। इसलिए इसे वस्त्र धौति कहते हैं। महर्षि घेरण्ड कहते हैं

चतुरअंगुल विस्ता रं सूक्ष्म्वस्बंत शनैर्ग्रसेत्
पुनरूप्रत्याकहरेदेतत्प्रोतच्य्ते धौतिकर्मकम्
गुल्म ज्व रालीहकुष्ठमकफपितं विनश्यरति
आरोगयं बलपुष्टिश्चक भक्तेस्यो दिने दिने

घेरण्ड संहिता 1/40/41

अर्थात महीन वस्त्र की चार अंगुल चौड़ी पट्टी लेकर धीरे–धीरे निगलना चाहिए। फिर इसे धीरे–2 ही बाहर निकालें। इस वस्त्र धौति के अभ्यास से गुल्म, ज्वर, कुष्ठ एवं कफ–पित्त के विकारों का शमन होता है। यह धौति आरोग्य, बल और पुष्टि की दिनों–दिन वृद्धि करती है।

क्रियाविधि

(1) चार अंगुल चौढ़ा व 3–4 मीटर लम्बा सूती कपड़ा लीजिए।

(2) उसे एक पात्र (लोहे गिलास, कटोरी) में रखकर भिगा दें।

(3) एक छोर को पकड़कर धीरे–धीरे उसे निगले बीच–बीच में स्वच्छ जल अवश्य पियें।

(4) जब अन्तिम छोर बचा हो फिर धीरे–धीरे उसे बाहर निकाल दें।

लाभ–

(1) कफ, क्लेद का निष्कासन होता है।

(2) दमा के रोगी के लिए यह क्रिया रामवाण है।

(3) वायु विकार, बुखार, चर्मरोग में लाभकारी है।

(4) उदरगत व्यांधियॉ दूर होती हैं। जठराग्नि बढ़ती है।

सावधानियॉ

(1) यह कठिन क्रिया है इसे योग्य योग शिक्षक के मार्गदर्शन में करे।

(2) अगर वस्त्र धौति करते हुए 5 मिनट हो जाये तो फिर उसे बाहर निकाल दें अन्यथा व ऑतों की ओर जा सकती है। (3) कपड़े को निगलते समय जीभ में सटाकर रखें।

(4) कोशिश यह करें कि निगलते समय कपड़े में लार अवश्य मिले जिससे निगलने में सुविधा होगी।

14.3.4 मूलशोधन–

मूल क्षेत्र अर्थात शरीर का मूल भाग (गुदा) की इस अभ्यास से सफाई होती है

महर्षि घेरण्ड कहते हैं

अपानक्रूरता तावद्यावन्मूषलं न शोधयेत्
तस्माात्सिर्वेप्रयत्न्ेन मूलशोधनमाचरेत्
पीतमूलस्यस दण्ड्ेन मध्येमाङगुलिनाडपि वा
थलेन क्षालयेदगुछ वारिणा च पुनः पुनः
तारयेत्कोलष्ठगकाठिन्यरमामाजीर्ण निवारयेत्
कारणं कान्तिपुष्टवयोश्चय दीपनं बहिमण्डनलम्

घेरण्ड संहिता 1/42—43—44

अर्थात मूल शोधन न होने तक अपान वायु की क्रूरता नष्ट नहीं हो पाती। इसलिए प्रयत्नपूर्वक मूल शोधन कर्म करना चाहिए। हल्दी की जड़ अथवा मध्यम अंगुली के द्वारा जलयोग से पुनः पुनः प्रक्षालन आवश्यक है। इस कर्म से कब्ज (मल की शुष्कलता मलावरोध) एवं अजीर्ण आदि का निवारण होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

क्रियाविधिः— हल्दी की नरम जड़ से या अनामिका अंगुली में घी लगाकर गुदा क्षेत्र में डालें हल्दी की जड़ रोगाणुरोधक होने के कारण उपयुक्त है दो—चार बार इस क्रिया को दोहरायें।

लाभ—

(1) उत्सर्जन तन्त्र को बलिष्ठ करता है इस क्रिया से नाड़ी और कोशिकाओं की ओर रक्त संचार तेज होता है।

(2) कब्ज में यह अभ्यास लाभकारी है।

(3) अपान वायु का संतुलन करती है।

(4) इस धौति से पाचन संस्थान के रोगों में भी लाभ मिलता है।

सावधानियॉ—

(1) अंगुली के नाखून अच्छी तरह काट लें।

(2) बवासीर के रोंगियो को अंगुली मूल प्रदेश में डालते समय बेहद सावधानी बरतनी चाहिए।

(3) योग्य गुरू की सलाह में ही इस अभ्यास को करें।

विशेषः— इस धौति को गणेश क्रिया या जल मूल शोधन के नाम से भी जानते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. एक शब्द में उत्तर दीजिए

(क) धौति के कितने प्रकार है।

(ख) घेरण्ड संहिता के रचयिता कौन है।

(ग) वारि सार धौति को किस नाम से जाना जाता है।

(घ) वमन धौति के कितने प्रकार बताये है।

14.4 सारांश

हठयोग की क्रियाओं में धौति की क्रिया सबसे महत्वोपूर्ण है। धौति क्रिया से अन्तल प्रदेश विशेष रूप में पाचन संस्थान के भीतरी अंगों की पूर्ण रूप से सफाई होती है। इस क्रिया के शारीरिक लाभ तो है ही परन्तु कहीं न कहीं महर्षि घेरण्ड ने धौति क्रिया के अध्यात्मिक लाभ भी बताये हैं। वस्तुतिः हठयोग की क्रियायें राजयोग की प्राप्ति के लिए ही की जाती हैं। देखने मे भले ही यह क्रियायें सरल व सहज हो पर वास्तव में इन्हें एक कुशल मार्गदर्शन में ही करना उचित होगा।

14.5 शब्दावली

(1) आर्ष–प्राचीन ग्रन्थों के लिए प्रयुक्त शब्द

(2) हठ–ह अर्थात अकार (सूर्य), ठ (ठकार) चन्द्र नाडी

(3) घेरण्ड संहिता–हठयोग का एक प्राचीनतम ग्रन्थ

(4) घट– घट अर्थात घड़ा जिसकी तुलना शरीर से की

(5) धौति– धौना, सफाई करना

(6) तात– हवा, वायु

(7) वारि – जल

(8) बहिष्कृत– निकाल देना

(9) सार– तत्व

(10) परिचालन–घुमाना, गोलाकार घुमाना

(11) अधोमार्ग– गुदा भाग

(12) अपशिष्ट– त्याज्य पदार्थ, जैसे मल

(13) देव देह– देवताओं का शरीर

(14) हार्निया– ऑतों की एक बीमारी

(15) जठराग्नि– जठर अर्थात पेट, पेट की अग्नि

(16) कुण्डिलीनी–3 फेरे लगाई मूल प्रदेश में स्थित एक

(17) खादिर– खैर जिससे पान का कत्था लगता है।

(18) खेचरी – एक मुद्रा, जिसके अध्यात्मिक लाभ है।

(19) जिह्वा निर्लेखनी– जीभ को साफ करने वाला एक यन्त्र

(20) रन्ध्र– छेद

14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) चार (ख) महर्षि (ग) शंख प्रक्षालन (घ) दो

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सरस्वती निरंजनानन्द स्वामी – धेरण्ड संहिता (1997) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर, बिहार

14.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. घेरण्ड संहिता के अनुसार धौति क्रिवा का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए

2. निम्न पर टिप्पणी लिखिए।

(क) शंख प्रक्षालन (ख) कपालरन्ध्र धौति

(ग) कुंजल क्रिया (घ) गणेश क्रिया

इकाई– 15 घेरण्ड संहिता में वर्णित वस्ति, नेति, नौलि की विधि, लाभ एवं सावधानियॉ

इकाई की संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 वस्ति

15.4 नेति

15.4.1 जल नेति

15.4.2 रबर नेति

15.4.3 सूत्र नेति

15.5 नौलि

15.5.1 मध्यम नौलि

15.5.2 वाम नौलि

15.5.3 दक्षिण नौलि

15.5.4 भ्रमर नौलि

15.6 सार संक्षेप

15.7 पारिभाषिक शब्दावली

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.10 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्डिकापालि के प्रश्नों के उत्तर को बड़ी सहजता व सरलता के साथ दिया और इस प्रश्न–उत्तर की श्रंखला घेरण्ड संहिता नामक पुस्तक बन गई। एक जिज्ञासा जिज्ञासु पाठकों की हमेशा रहती है कि षटकर्मो की श्रंखला में नेति, वस्ति व नौलि कैसे की जाती है इसके क्या लाभ है और क्या–क्या सावधानियॉं इनको करने में बरतनी चाहिए। षटकर्म हठयोग की माला के पिरोये मोती है प्रस्तुत इकाई में वस्ति, नेति, नौलि रूपी मनको का अध्ययन में वस्ति, नेति, नौलि रूपी मनको का अध्यसयन करेंगे और जिज्ञासु पाठक अपने प्रश्नों का उत्तर भी आगामी पृष्ठों में जान सकेंगे।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप

- वस्ति के विविध विधियों, लाभ व सावधानियों का अध्ययन करेंगे।
- नेति के प्रकारों, लाभ व सावधानियों को जान सकेंगे।
- नौलि की विधियों, लाभों व सावधानियों का अध्ययन करोगे।

15.3 वस्ति

वस्ति नाम बड़ी ऑत के लिए प्रयुक्त होता है । इस अभ्यास में गुदा द्वारा वायु अथवा जल को खीचा जाता है जिससे बड़ी ऑत की सफाई होती है। चुँकि बड़ी आंत शरीर में अवशिष्ट पदार्थो का निष्काषन शरीर से बाहर करती है।

महर्षि घेरण्ड वस्ति के भेदों को बताते हुए कहते है–

जल वस्ति शुष्कुवस्तिर्वस्ती चद्विविथौस्मृतौ
जल वस्ति जल कुर्वाच्छुषकवस्तिं सदा क्षितौ
घेरण्ड संहिता 1/45

अर्थात वस्ति कर्म दो प्रकार का होता है।

(1) जल वस्ति (2) शुष्क वस्ति

जल वस्ति का अभ्यास जल में किया जाता है शुष्क वस्ति का अभ्यास भूमि पर, सूखे स्थल पर किया जाता है।

वस्ति

जल वस्ति **शुष्क वस्ति**

15.3.1 जल वस्ति– जल से बड़ी ऑतो की सफाई की यह क्रिया जल वस्ति के नाम से जानी जाती है।

महर्षि घेरण्ड ने जल वस्ति की विधि को इस प्रकार परिभाषित किया है।

नाभिमग्न जले पायुन्यजस्त नालोत्कायसन
आकुन्चंन प्रसारं च जल वस्तिं समाचरेत्

घेरण्ड संहिता 1/46

अर्थात जल में नाभिपर्यत्न बैठकर उत्कट आसन लगाये और गुह्य देश का आकुन्चन प्रसारण करे यह जल वस्ति है।

क्रियाविधि–

1. सरोवर, नदी में उत्कट आसन लगाकर खडे हो जाये।
2. पैरो को उत्कट आसन में इतना मोडे कि जल नाभि तक आ जाये।
3. दोनों हाथों को जंघाओं पर रख लीजिए।
4. गुदा द्वार का संकुचन व प्रसारण कीजिए।

नोट– जल वस्ति की वह प्राचीनतम प्रक्रिया के लाभ एनिमा द्वारा भी लिए जा सकते है।

लाभ –

1. मधुमेह के उपचार में सहायक है।
2. ऑतों के अनेकानेक रोगों विशेष रूप से कब्ज व बवासीर में लाभकारी है।
3. शरीर से दूषित वायु का निष्कासन कर शरीर की शुद्धि करती है।
4. तंत्रिका तंत्र पर इसका प्रभाव पड़ता है।
5. त्वचा सम्बनधित रोगों में भी लाभकारी है।

सावधानियॉं– हठयोग की प्राचीनतम यह क्रिया गुरू के मार्गदर्शन व निर्देश के अनुसार की जानी चाहिए। चूँकि वर्तमान में सरोवर तालाब का जल अशुद्ध देखा गया है। अतः योग गुरू के निर्देशानुसार इस क्रिया की जगह 'एनिमा' घर पर ही लिया जा सकता है।

15.3.2 स्थल वस्ति– चूँकि यह क्रिया स्थयल अर्थात जमीन पर की जाती है अतः यह क्रिया स्थल अर्थात जमीन पर की जाती है अतः यह क्रिया स्थल वस्ति के नाम से जानी जाती है। महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्डिकापालि को स्थल वस्ति की क्रियाविधि व लाभ को समझाते हुए कहा –

पश्चिमोत्त्ानतो वस्तिं चालयित्वा शनैशनैः।

अश्विनीमुद्रया पायुमाकुंचयेत्प्र सारयेत्

ववमभ्यासयोगेन कोष्ठरदोषो न विद्यते

विवद्धेयेज्जवठराग्निमामवातं विनाशयेत्

घे0सं0 1/48,49

अर्थात – अश्विनी मुद्रा के द्वारा गुदा का आकुन्चन एवं प्रसारण करना चाहिए। पश्चिमोतान आसन में बैठकर नीचे के भाग में वस्ति का परिचालन करें। नीचे के भाग में वस्ति का इसके साधन से कोष्ठ के दोष एवं आमवात आदि रोगों का शमन और जठराग्नि का वर्धन होता है।

क्रियाविधि–

1. सर्वप्रथम दण्डासन में बैठ जाये।
2. दोनों हाथो से दोनों पैरों की अंगुलियों को पकड़ ले।
3. गुद्रा द्वार का आंकुन्चन एवं प्रसारण कीजिए।
4. श्वास लेते समय गुद्रा द्वारा का आंकुन्चन तथा श्वास छोड़ते समय गुदा द्वार का प्रसारण कीजिए।

लाभ–

1. बड़ी आंत की स्वछता की यह सर्वोत्तम विधि है।
2. इस अभ्यास को नियमित करने से कोष्ठ दोष से मुक्ति मिलती है।
3. भूख बढ़ाने में यह क्रिया सहायक है।
4. वायु विकार, अजीर्ण कब्ज, पित्त व कफ दोषों में लाभकारी है।

सावधानियॉं–

1. उच्च रक्त चाप व हार्निया में इस अभ्यास को न करें।
2. पाचन सम्बन्धी कोई गंभीर रोग हो तो वो व्यक्ति भी इस अभ्यास को न करे।
3. योग गुरू की सलाह इस अभ्यास को करना चाहिए।

4. इस अभ्यास को करने से पहले जल वस्ति का अभ्यास कर लें।

अभ्यास प्रश्न

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) वस्ति का सम्बन्ध है–

(अ) बड़ी आंत से (ब) छोटी आंत से

(स) यकृत से (द) आमाशय से

(ख) महर्षि घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता के किस अध्याय में वस्ति का वर्णन किया है।

(अ) प्रथम (ब) द्वितीय

(स) तृतीय (द) चतुर्थ

15.4 नेति

नेति षटकर्मों की तृतीय शुद्धिकरण की प्रक्रिया है। नेति क्रिया को आधुनिक समय में कान, नाक व गले से सम्बद्ध किया है। नेति क्रिया के माध्यम से मुख्य रूप से उपरोक्त् तीन अंगों (नाक, कान, गले) की सफाई होती है। शास्त्रीय विवेचन करे तो हठयोग के महत्वतपूर्ण ग्रन्थों हठ–प्रदीपिका व घेरण्ड संहिता में नेति की प्रक्रिया में सिर्फ सूत्र नेति का वर्णन मिलता है। परन्तु वर्तमान में नेति क्रिया अनेको रूपों में प्रयोग की जाती है। जैसे जल नेति, दुग्ध् नेति, घृत नेति, मूत्र नेति, रबर नेति, सूत्र नेति इत्याहदि। महर्षि घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता में नेति की क्रिया को इस प्रकार परिभाषित किया है।

वितस्तिमानं सूक्ष्मिसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत

मुखानिर्गभयेत्श्चोसत प्रोच्यरते नेतिकर्मकम

साधनानेतिकार्यस्य् खेचरीसिद्धिमात्नुयात्

कफदोषाः विनश्ययन्ति दिव्द्‌ष्टिरू प्रजायते्

घे0सं0 1/50,51

अर्थात,

वालिश्तभर (आधा हाथ) लम्बा डोरा लेकर नासिका में घुसायें और मुख से बाहर निकाल दें। इसे नेति कर्म कहते है। इसका साधन करने से खेचरी की सिद्धि कफ–दोषों की निवृत्ति और दिव्य दृष्टि की उपलब्धि होती है।

भलई उपरोक्त घेरण्ड संहिता के श्लोक मात्र सूत्र नेति की व्यायख्या की है पर आपको अध्ययन के लिए नेति की वर्तमान में प्रचलित विविध विधियों की व्याख्या की जा रही है।

15.4.1 जल नेति– जल द्वारा इसमें नासिका मार्ग का शुद्धिकरण किया जाता है।

क्रियाविधि–

(1) नेति पोट (टोटीं वाला लोटा) ले लीजिए।

(2) उकडूं बैठकर या बडे होकर सिर को आगे झुकाये।

(3) स्वच्छ जल शरीर के तापमान को बराबर जिसमें नमक (स्वादानुसार) डला हो उसे नेति पोट में भर लीजिए।

(4) जो स्वर चल रहा हो उसमें नेति पोट के टोटी को घुसाये।

(5) मुँह खोल जीजिए तथा गर्दन को थोड़ा झुकायें।

(6) जल दूसरे नाक से स्वतः आने लगेगा।

(7) 20–25 सेकण्ड तक जब पानी पूरा खत्म हो जाये नेति पोट की नाक से निकाल लेता या पुनः दूसरी नाक से इस क्रिया को दोहराये।

विशेष –

(1) नेति पोट वर्तमान में प्लाास्टिक व तॉबे, पीतल का बना बाजार में उपलब्ध रहता है।

(2) जल नेति में जल का तथा अन्य नेति में घृत, मूत्र (स्वःमूत्र–मध्य भाग का) प्रयोग गुरू के निर्देशानुसार किया जा सकता है।

15.4.2 रबर नेति– रबर नेति अर्थात कैथेडर द्वारा नासिका मार्ग की सफाई इस प्रक्रिया में की जाती है।

क्रियाविधि–

(1) लम्बी , पतली रबर की ट्यूब (कैथेडर) को (जो अच्छी तरह उबली हो) ले लीजिए।

(2) खडे होकर बिना तनाव लिये जो स्वर चल रहा हो उस ट्यूब को धीरे–धीरे नासिका मार्ग में डाले।

(3) थोड़ी देर बाद रबर नेति (कैथेडर) का दूसरा सिरा गले तक पहुँच जायेगा।

(4) अंगूठा व तर्जनी अंगुली मुँह में डालकर गले से उसके दूसरे सिरे को खीच लीजिए।

(5) थोडी देर दोनों छोरों को पकड़कर उसमें आगे–पीछे घर्षण करें।

(6) अन्त में धीरे–धीरे रबर नेति को बाहर निकाल दीजिए।

(7) पुनः इस प्रक्रिया को दूसरे नासाछिद्र में डालकर दोहराइये।

15.4.3 सूत्र नेति – 7.8 इंच लम्बे 8–10 महीन सूती धागों में मोम डालकर बॅट लीजिए। एक हिस्सेव को लगभग 6 इंच मोम में डालरक कडा होने दे। इस प्रकार सूत्र नेति बनाकर इस प्रक्रिया को किया जाता है।

क्रियाविधिः

1. एक सूत्र नेति लेकर सावधानी पूर्वक जो स्वर चल रहा हो उसमें सूत्र नेति धीरे–धीरे डालिए।
2. थोड़ी देर बाद सूत्र नेति का दूसरा सिरा गले तक पहुँच जायेगा।
3. अंगूठा व तर्जनी अंगुली को मुँह में डालकर गले से उसके दूसरे सिरे को खीच लीजिए।
4. थोड़ी देर सूत्र नेति के दोनों छोरों को पकड़कर घर्षण कीजिए।
5. अन्त में मुँह से सूत्र नेति निकाल दीजिए पुनः दूसरे नाक से इस प्रक्रिया को दोहराये।

नोट – वर्तमान में बाजार में सूत्र नेति बनाई हुए उपलब्ध रहती है। उसे प्रयोग हेतु खरीदा जा सकता है।

सभी प्रकार की नेति की लाभ व सावधानियॉ इस प्रकार है।

लाभ –

1. नेति क्रिया का साइनस ग्रन्थि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
2. नाक से निकलने वाले श्लेरष्मा का नियंत्रण करती है।
3. श्वसन संस्थान के रोगों, साइनोसाइटिस, ब्रोकाइटिस, अस्थमा में लाभकारी है।
4. दूर व निकट दृष्टि में अतयन्त लाभकारी है।
5. ऑख, नाक व कानों के रोगों में लाभप्रद है ।
6. नासिका मार्ग में श्ले ष्माो झिल्ली की मालिश होने से उसकी क्रियाशीलता बढ़ती है तथा रक्त का प्रभाव तेज होता है।
7. नेति क्रिया से तनाव, चिन्ता, अवसाद के रोगियों को भी लाभ पहुँचता है।
8. मस्तिष्क में गर्मी, उत्ते जल, मिर्गी की बीमारी में भी इसका सार्थक प्रभाव पड़ता है।

सावधानियॉ–

1. नासिका मार्ग एक नाजुक अंग है, रबर या सूत्र नाक में नहीं जाये तो जबरदस्ती ना करे।
2. रबर नेति या सूत्र नेति करने से पहले यह अवश्य साफ होनी चाहिए।
3. नेति करते समय हाथ स्वच्छ रहे तथा नाखुन कटे होने चाहिए।
4. एक कुशल मार्गदर्शन में नेति का अभ्यास करें।

15.5 नौलि

नौलि (लौलिकी) षटकर्मो में शुद्धिकरण की चौथी प्रक्रिया है। पिछली इकाई में धौति के प्रकारों में आपने अग्निसार क्रिया का अध्ययन किया। नौलि क्रिया अग्निसार का ही एक प्रकार है या यूँ कहे कि नौलि क्रिया अग्निसार अन्तः धौति की उच्च अभ्यास है। जठराग्नि को बढ़ाने वाली इस क्रिया में उदरगत मॉसपेशियों की मालिश होती है या पेट की समस्त मांसपेशियों की क्रियाशीलता त्वरित गति से बढ़ती है। महर्षि घेरण्ड ने नौलि की क्रियाविधि व लाभों को समझाते हुए कहा है।

अमन्दहवेगेन तुन्द्रि, भामयेदुभपार्श्वरयो
सर्वरोगान्निहन्तीनह देहानलविवर्द्धनम्

घे0सं0 1/52

अर्थात उदर को दोनों पार्श्वो में अत्यतन्त वेगपूर्वक घुमाना चाहिए। यह लौलिकी, अर्थात जठराग्नि का उद्धीपक है।

भलई महर्षि घेरण्ड ने नौलि क्रिया की विधि में उदर को दोनों पार्श्वो में घुमाने की बात कही है पर अध्ययन की सुविधा दृष्टि ने नौलि के निम्नं प्रकार की विधियों को समझना उचित है।

15.5.1 सामान्य या मध्यनम नौलि – इस नौलि में सामान्य रूप से पेट की मॉसपेशियों को समेट कर कुछ देर सिकोड कर रखते है।

क्रियाविधि

1. दोनों पैरो में कन्धे की दूरी के बराबर जगह बनाये।
2. दोनों हाथों को घुटने पर रखकर थोड़ा झुक जाये।
3. पूरा श्वास का रेचक कीजिए।
4. पेट को अन्दर की ओर खींच लीजिए।
5. दोनों हाथों से घुटने पर हल्का दबाब डाले उदर की मांसपे शियॉ बीच में स्वतः हो जायेगी।
6. यह मध्यम या सामान्य नौलि की एक आवृति है।

15.5.2 वाम नौलि – वाम अर्थात बायी और उदरगत मॉसपेशियों के समूह को ले जाना वाम नौलि कहलाती है।

क्रियाविधि –

1. दोनों पैरों में कन्धों की दूरी के बराबर जगह बनाये।
2. दोनों हाथों को घुटनों या जांघों पर रखकर थोड़ा झुक जाइये।
3. फिर उपरोक्त मध्यम नौलि कीजिए।
4. उदर की दाहिनी मॉसपेशियों को ढ़ीला कर दीजिए।
5. तदपश्चात् उदर की बायीं ओर की मांसपेशियों को संकुचित करें।
6. उदरगत मॉसपेशियों का पिण्डी बायी और स्वतः आ जायेगा।
7. यह बाम नौलि की एक आवृति है।

15.5.3 दक्षिण नौलि – दक्षिण अर्थात दाहिने ओर उदरगत मांसपेशियों के समूह को ले जाना दक्षिण नौलि कहलाता है।

क्रियाविधि–

1. दोनों पैरों में कन्धों् की दूरी के बराबर जगह बनाइये।
2. दोनों हाथों की घुटनों पर या जंघाओं पर रख लीजिए।
3. सामान्य नौलि की अवस्थाओ में आये।

4. उदरगत बाये भाग की मांसपेशियों की अन्दर की ओर संकुचित करें।
5. स्वगत मांसपेशियों का पिण्डी संकुचित होकर पेट के दाहिने ओर आ जायेगा।
6. यह दक्षिण नौलि की एक आवृति है।

15.5.4 भ्रमर नौलि – जब उपरोक्त तीनों नौलियों सामान्य, वाम व दक्षिण को एक साथ जोड़ देते है तो वह भ्रमर नौलि कहलाती है। इस नौलि की प्रक्रिया में गुरू के निर्देशानुसार 5–6 बार घड़ी की सुई की दिशा में व 5–6 बार उसकी विपरीत दिशा में उदरगत मांसपेशियों को घुमाते है। इसलिए इसे भ्रमर नौलि के नाम से जाना जाता है।

क्रियाविधि

1. सर्वप्रथम सामान्य (मध्यम) नौलि कीजिए।
2. तद्पश्चात वाम नौलि कीजिए।
3. फिर दक्षिण नौलि कीजिए।
4. जब वेगपूर्वक उपरोक्त क्रिया करेंगे तो भ्रमर नौलि स्वतः ही होने लगेगी।

लाभ –

1. नौलि क्रिया से कुण्डलीनी शक्ति जागृत होती है।
2. उदरगत मांसपेशियों की क्रियाशीलता बढ़ती है तथा वहॉ रक्त् का संचार तीव्र होता है।
3. मणिपुर चक्र की जागृति होती है।
4. तन्त्रिका तन्त्र के साथ–साथ शिराओं पर इस नौलि क्रिया का प्रभाव पड़ता है।
5. रक्त् परिसंचरण संस्थान पर इसका सार्थक प्रभाव पड़ता है।
6. भूख बढ़ती है जठराग्नि बढ़ती है।
7. अग्नाशय पर इसका सार्थक प्रभाव पड़ता है इसलिए मधुमेह में भी लाभकारी है।

सावधानियॉ–

1. नौलि का अभ्यास अगर पेट में दर्द हो तो न करें।
2. हार्निया, पथरी में यह अभ्यास वर्जित है।
3. उच्च रक्त चाप, पेप्टिक अल्सर, एसिडिटी के रोगी इस अभ्यास को नहीं करें।
4. गर्भवती महिलाये इस अभ्यातस को बिल्कुलि न करें।
5. वस्तुतः यौगिक षटकर्म गुरू के निर्देश में ही किये जाते है। इस बात का विशेष ध्यान रखे।
6. भोजन के बाद इस अभ्यास को नहीं करें।
7. नौलि क्रिया से पहले उड्डियान बन्ध और अग्निसार का अभ्यास कर लीजिए।

अभ्यास प्रश्न

2. निम्न् प्रश्नों का एक शब्द में उत्तर दीजिए–

(क) नौलि के कितने भेद बताये गये है।

(ख) नेति को षटकर्मों में किस स्थान पर रखा है।

15.6 सारांश

षटकर्मों में वस्ति, नेति व नौलि की प्रक्रिया के शारीरिक लाभ के साथ–साथ आध्यात्मिक लाभ भी है। इस इकाई में अपने षटकर्मों के तीन महत्वपूर्ण अभ्यासों (वस्ति, नेति व नौलि) का अध्ययन किया वस्ति का सम्बन्ध बडी ऑत की सफाई से, नेति का सम्बन्ध नाक, कान व गले की स्वच्छता से तथा नौलि का सम्बन्ध उदरगत मॉसपेशियों की क्रियाशीलता को बढ़ाने से था।उक्त तीन अभ्यास भलई शारीरिक स्वास्थ्य लाभ को दृष्टित करते है परन्तु इन अभ्यासों के आध्यातमिक लाभ भी है। मूलाधार में सुप्त पड़ी कुण्डलीनी शक्ति जो शक्ति के प्रतीक रूप में हैं उसकी जागृति षटकर्मों के अभ्यास में निहित है और इसका जागरण ही हठयोग का परम लक्ष्य है।

15.7 पारिभाषिक शब्दावली

नेति –नाक, कान, गले से सम्बन्धित

वस्ति – बड़ी ऑत

नौलि – उदरगत मांसपेशियों को घुमाना

निष्कासन– निकालना

उत्कट– आधा बैठी व आधी उठी स्थिति

प्रसारण– फैलाव

एनिमा – बड़ी ऑत की स्वठच्छवता की एक विधि

मधुमेय – मीठा अधिक लेने से होना बाया रोग, शुगर

बवासीर – बड़ी ऑत का एक रोग

कोष्ठर – कोढ या कुष्ठन रोग

शमन – नाश करना

अजीर्ण – अपच

धृत – घी

साइनस – नासिका की एक ग्रन्थि

ब्रोकाइटिस – श्वसन संस्थान का एक रोग

अग्निसार– अग्नि अर्थात आग, सार अर्थात तत्व

मणिपुर – यौगिक चक्रों में से एक चक्र जिसका स्थान नाभि प्रदेश है।

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) अ (ख) प्रथम
2. (क) चार (ख) तीसरे

15.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. घेरण्ड संहिता – महर्षि घेरण्ड प्रकाशक – योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार

15.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. वस्ति क्रिया के विविध प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
2. नेति क्रिया क्या है ? सूत्र नेति व जल नेति की क्रियाविधि बताये।
3. नौलि क्रिया के लाभ व सावधानियों की चर्चा कीजिए।
4. बाम नौलि व दक्षिण नौलि की क्रियाविधि बताये।
5. वस्ति क्रिया के क्याल लाभ है विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

इकाई–16 घेरण्ड संहिता में वर्णित त्राटक एवं कपालभाति की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

इकाई की संरचना

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 त्राटक

16.4 त्राटक के प्रकार

16.4.1 बर्हित्राटक

16.4.2 अन्तरंग त्राटक

16.4.3 अधोत्राटक

16.4.4 त्राटक क्रियाविधि

16.4.5 लाभ

16.4.6 सावधानियॉ

16.5 कपालभॉति

16.6 कपालभाँति के प्रकार

16.6.1 वातक्रम कपालभॉति

16.6.2 व्युकतक्रम कपालभॉति

16.6.3 शीतक्रम कपालभॉति

16.7 सार संक्षेप

16.8 शब्दांवली

16.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

16.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

16.11 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयों में आपने षटकर्म के चार महत्वपूर्ण अभ्यासों (धौति, वस्ति, नेति, नौलि) का अध्ययन किया तथा इन अभ्यासों की क्रियाविधि प्रकार, लाभ व सावधानियों को समझा। प्रस्तुत इकाई में आप त्राटक व कपालभॉति का अध्ययन करेंगे। ध्यान रहे कि शोधन की क्रियाये अतयन्त गोपनीय है जहॉ इनके लाभ वर्तमान में दृष्टित हो रहे है वही दूसरी ओर उचित मार्गदर्शन में इन अभ्यासों को अगर न करे तो व्यक्ति को नुकसान भी हो सकता है। अतः जिज्ञासु पाठक एक योग्य गुरू के संरक्षण में इन अभ्यासों को करें। वर्तमान में हर व्यक्ति त्राटक व कपालभॉति से सम्बन्धित निम्न प्रश्नो के उत्तर जानने के लिए उत्सुक रहता है।

- ❖ त्राटक कैसे किया जाता है ?
- ❖ त्राटक करने में क्याा सावधानियॉ बरतनी चाहिए ?
- ❖ त्राटक के शारीरिक मानसिक व आध्याात्मिक लाभ क्या है ?
- ❖ कपालभॉति कैसे की जाती है ?
- ❖ इसका शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

आगे के पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जान लेने में सक्षम हो जायेंगे।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपको षटकर्मों की अन्तिम दो क्रियाओं त्राटक व कपालभॉति की जानकारी देना है। इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात आपको निम्नलिखित तथ्यो का ज्ञान हो जायेगा।

- ❖ त्राटक की क्रिया कैसे की जाती है और यह कितने प्रकार की है।
- ❖ त्राटक का शरीर व मन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
- ❖ कपालभाति वस्तुतः कितने प्रकार की होती है।
- ❖ कपालभॉति करने से क्या लाभ है ?

16.3 त्राटक

त्राटक शुद्धिकरण की पॉचवी प्रक्रिया है। त्राटक का अर्थ है किसी एक वस्तु या प्रतीक को लगातार देखते रहना। त्राटक का एक अर्थ है लक्ष्य को एकटक देखते हुए उसके प्रति सजग रहना। त्राटक की प्रक्रिया दिव्य नेत्रों को प्रदान करने वाली तो है ही साथ ही साथ इस प्रक्रिया के कई मानसिक व आध्यात्मिक लाभ भी है। व्यक्ति अपने मस्तिष्क को त्राटक के अभ्यास से प्रभावित कर सकता है। मस्तिष्क ही पूरे शरीर में स्थित तन्त्रों का नियंत्रक

है। हमारी सोच, विचारणा, संवेदना का केन्द्रबिन्दु है। मस्तिष्क में ही सृजन व रचनात्मकता का एक विचार उत्पन्न, होता है। सृजन का एक विचार सामान्य मानव को महामानव बना देता है। हमारे अन्दर अन्तरनिहित शक्तियों का जागरण त्राटक क्रिया से सम्भव होता है तथा साथ ही साथ त्राटक से मस्तिष्क के क्षेत्र को शान्त और निर्मल बनाया जा सकता है। त्राटक वास्तव में आन्तरिक सजगता की एक उच्च अवस्था है।

महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्डिकापालि को त्राटक की क्रियाविधि व लाभ की ओर इशारा करते हुए कहा

निमेषोन्मेहषकं त्वरक्वापाल सूक्ष्मवलक्ष्यां निरीक्षयेत्
पतन्ति यावदश्रूणित्राटकं प्रोच्यवते बुधै
एवभभ्यायसयोगेन शाम्भ्वी जायतेध्रुवम्
नेत्ररोगा विनश्य न्ति दिव्यतदृष्टिरू प्रजायते

घे०सं० १/५३–५४

अर्थात– निमेष–उन्मेष को रोककर जब तक ऑसू न गिरने लगे, तब तक किसी सूक्ष्म लक्ष्य की ओर टकटकी लगा कर देखते रहने को त्राटक कहते है। इसके अभ्यास से शाम्भवी मुद्रा की प्राप्ति होती है।

16.4 त्राटक के प्रकार

महर्षि घेरण्ड ने त्राटक की प्रक्रिया में एक सूक्ष्म लक्ष्य की ओर टकटकी लगा कर देखते रहने की बात की है। योग शास्त्रों में त्राटक की तीन महत्वपूर्ण प्रक्रियाये बताई है। पहली प्रक्रिया का नाम वहिःत्राटक है इसमें संसार में साकार रूप में जितनी वस्तुए दिखाई देती है जैसे– सूर्य चन्द्रमा, तारे, मूर्ति, वृक्ष, आराध्य का चित्र, महायोगियों का चित्र पर त्राटक किया जाता है। दूसरी प्रक्रियायें का नाम है अन्तरंग त्राटक। इस त्राटक में साधक अपनी कल्पना शक्ति का उपयोग कर ऑख बन्द कर प्रतीक पर त्राटक करता है। तीसरी प्रक्रिया का नाम है अधोत्राटक इसका अभ्यास ऑखों को आधा खुला और आधा बन्द कर किया जाता है। त्राटक की उपरोक्त तीनों अवस्थाओं की विस्तृत वर्णन इस प्रकार है।

16.4.1 वहिर्त्राटक – बहिर्त्राटक जैसा नाम से स्पष्ट है बहि अर्थात बाहर, त्राटक अर्थात एकटक देखना। इस प्रक्रिया में पूर्णिमा दृष्टि का प्रयोग किया जाता है संसार में हमें विविध वस्तु ,प्रतीक दिखाई देते है साधक सबसे पहले किसी एक प्रतीक का चुनाव करता है फिर पूर्णिमा दृष्टि का प्रयोग करते हुए उस लक्ष्य को एकटक तब तक देखता है जब तक ऑखों से ऑसू न निकले । तद्पश्चात उस प्रतीक का ऑख बन्द कर अवलोकन करता है। इस प्रक्रिया में जलती मोमबत्ती का प्रयोग भी किया जा सकता है जिसे वर्तमान में कई लोग (Candle light meditation) भी कहते है।

16.4.2 अन्तःरंग त्राटक –अन्तरंग त्राटक के नाम से ही स्पष्ट है है अन्तःरंग का मतलब है अन्तःकरण के अन्दर त्राटक का अर्थ है एकटक देखना। अर्थात ऑख बन्द कर लक्ष्य का काल्पनिक अवलोकन कर उसे देखते रहना। व्यक्ति ऑख खोलकर स्थूल रूप से विविध वस्तुओं को देख सकता है पर जो वस्तुव उसने स्थूल जगत में देखी है अगर व काल्पनिक अवलोकन करे तो अन्तः चक्षु से उसे वह वस्तुए ऑख बन्द कर भी दिखाई देती है।

उदाहरणार्थ ऑख बन्द करवाकर आपसे कहा जाये, आपके ईष्ट, आराध्य, गुरू, सूरज, चन्द्रमा, तारे तो आपको एक पल वह स्पष्ट दिखाई देने लगेंगे भलई आपकी अमा दृष्टि ही क्यो न हो। त्राटक की काल्पनिक अवलोकन की यह प्रक्रिया अन्तःरंग त्राटक का अन्तरत्राटक के नाम से जाती है।

16.4.3 अधोत्राटक – अधोत्राटक की इस प्रक्रिया में ऑखों को आधा खुला आधा बन्द किया जाता है। योग के ग्रन्थों में इस अवस्था को प्रतिपदा दृष्टि, नासिकाग्र मुद्रा या कही इसे शाम्भवी मुद्रा भी कहा जाता है। अधोत्राटक में लक्ष्य या प्रतीक को प्रतिपदा दृष्टि से देखा जाता है अभ्यास के क्रम में बीच में ऑख बन्द कर उसका काल्पनिक अवलोकन भी कर सकते है।

त्राटक भलई शास्त्रों में तीन प्रकार का बताया गया है पर त्राटक की सर्वसुलभ क्रियाविधि को गुरू के निर्देशानुसार निम्नानुसार किया जा सकता है।

16.4.4 त्राटक क्रियाविधि

1. ध्यान के किसी आसन (स्वस्तिक, पदमासन, सिद्धासन या सुखासन) में बैठ जाए।
2. सिर, कन्धे व रीढ की हड्डी एक सीध में रहे।
3. ऑखों के ठीक सामने २ फिट की दूरी पर एक जलती मोमबत्ती रख दीजिए।
4. ऑख बन्द कर काल्पननिक अवलोकन कर शरीर का ध्यान करें।
5. कायास्थैर्यम् का अभ्यास करे तो उचित होगा।
6. अब धीरे से ऑख खोलकर मोमबत्ती की लौ को अनवरत देखते रहे।
7. लौ को तब तक देखे जब तक ऑखों से ऑसू न निकले।
8. ४०–५० सेकण्डो से २–३ मिनट तक लगातार लौ पर त्राटक करे।
9. तद्पश्चात् ऑखे बन्दे कर चिदाकाश में उस लौ का अवलोकन कीजिए।

11. उचित मार्गदर्शन में २–३–४ बार यह प्रक्रिया दोहराई जा सकती है।

16.4.5 लाभ –

1. त्राटक की क्रिया नेत्र दोषों में लाभकारी है।
2. त्राटक के अभ्याास से ऑखों में जमा मल बाहर निकल जा सकता है।
3. दूरदृष्टि दोष, निकट दृष्टिदोष व मोतियाबिन्द में लाभकारी है।
4. त्राटक के आध्याात्मिक लाभ में दिव्यम दृष्टि की प्राप्ति होती है।
5. त्राटक के अभ्यास मात्र से साधक सभी अष्ट सिद्धियों की प्राप्ति कर सकता है।
6. त्राटक के अभ्यास से आत्मसाक्षात्कार किया जा सकता है।
7. त्राटक के अभ्यास से शाम्भवी मुद्रा की भी सिद्धि प्राप्त होती है।
8. चित्त स्थिर व तनाव को दूर करता है।
9. त्राटक के अभ्या्स से पीनियल ग्रन्थि पर सार्थक व सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
10. स्मरण शक्ति बढ़ाने, कल्पना शक्ति का विकास करने में त्राटक एक अचूक रसायन है।
11. आन्तरिक उत्तेजनाओं पर नियंत्रण होता है आत्मबल बढ़ता है मन शान्त होता है, तथा शक्ति प्रदान होती है।

16.4.6 सावधानियॉं

1. त्राटक का अभ्यास एक कुशल मार्गदर्शन में करना चाहिए।
2. माइग्रेन हो तो त्राटक न करें।
3. अवसाद के रोगियों को भी त्राटक नहीं कराना चाहिए।
4. ऑखों में अगर चश्मा (ज्यांदा पावर) का लगा है तो उचित देखरेख में करें।
5. मोतियाबिन्द का आपरेशन हुआ हो तो वह व्यक्ति भी इस अभ्यास को न करें।
6. इस अभ्यास को प्रातः काल या रात्रि के समय में ही करें।

अभ्यास प्रश्न

1.बहु विकल्पीय प्रश्न

(क) अमा दृष्टि का मतलब है

(अ) ऑखे बन्द रखना (ब) ऑखे खुली रखना

(स) अधखुली ऑखे (द) दिव्य दृष्टि

(ख) घेरण्ड संहिता में त्राटक शुद्धिकरण की कौन सी अवस्था है।

(अ) तीसरी (ब) चौथी

(स) पॉचवी (द) छठी

(ग) अधो त्राटक किया जात है।

(अ) अभा दृष्टि में (ब) प्रतिपदा दृष्टि में

(स) पूर्णिमा दृष्टि में (द) काल्पनिक अवलोकन में

16.5 कपालभॉति

कपालभाति षटकर्मों की अन्तिम क्रिया है। कपाल का अर्थ है मस्तिष्क, व भॉति का अर्थ होता है चमकाना, अर्थात प्रकासित करना। कपालभॉति की क्रिया में मतिष्क का का शोधन होता है। वस्तुतः कपालभाति शोधन की ही क्रिया है परन्तु कई जगह इसे प्राणायाम की क्रिया भी कहा गया है।

प्रिय विद्यार्थियों वास्तव में कपालभॉति नाम सुनकर आपके मानसिक पटल पर एक ही प्रक्रिया आ रही होगी जिसे आप कई बार टी०वी०, योग शिविरों में देख चुके है तथा जिस प्रक्रिया में जोर से (झटके से) श्वास को बाहर निकालते है। परन्तु आपको स्पष्ट कर दूँ कि वास्तव में कपालभॉति श्वास को जोर–जोर निकालने की प्रक्रिया मात्र नहीं है। महर्षि घेरण्ड ने कपालभॉति के अन्य प्रकार भी बताये है अब जिज्ञासु पाठकों के मन में निम्न प्रश्नों को जानने की उत्सुकता हो रही है।

- ❖ कपालभाति षटकर्म है या प्राणायाम
- ❖ कपालभाति के कितने प्रकार है।

❖ कपालभाति के लाभ क्या है।
❖ कपालभाति करने में क्या सावधानियॉ बरतनी चाहिए।

आगे के पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के बाद आपको स्वतः ही उपरोक्तं प्रश्नो का उत्तर मिल जायेगा। अभी तक आपने षटकर्मों की पॉच प्रक्रियाओं (धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक) का अध्ययन किया है। उपरोक्त प्रक्रियाओं में पंच तत्वों के माध्यम से आपने शरीर व अन्ततःकरण की शुद्धि की है। षटकर्म की अन्तिम (कपालभाति) की प्रक्रिया में जल व वायु द्वारा शरीर का शुद्धिकरण किया जाता है विशेषतः कपालभॉति की प्रक्रिया में मस्तिष्क का शोधन होता है। शोधन की क्रिया होने के कारण इसे षटकर्म कहा जाता है।

कपालभॉति की एक प्रक्रिया में श्वास–प्रश्वास को जोड़ा जाता है। चूँकि यह प्रक्रिया प्राणायाम (श्वास–प्रश्वास) पर आधारित है इसलिए इसे प्राणायाम भी कहा जाता है। शास्त्रीय मान्याता है कि प्राणायाम के माध्यम से श्वास क्रिया पर व्यक्ति नियंत्रण कर सकता है। प्राणायाम की तीन प्रक्रियाये पूरक, कुम्भक व रेचक मस्तिष्क को अनुप्राणित तो करती ही है साथ ही साथ हमारे रक्त का शोधन भी करती है। कपालभॉति की प्रक्रिया में योगी झटके से श्वास का रेचक करता है इसलिए श्वास के साथ जुड़े रहने के कारण इसे प्राणायाम कहा गया है।

महर्षि घेरण्ड ने कपालभॉति को परिभाषित कर कहा है।
वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीत्क्रमेण विशेषतः
भालभाति त्रिधा कुर्यात्ककफदोषं निवारयेत्

घे०सं० १/५५

अर्थात वातक्रम कपालभाति, व्युत्क्रम कपालभाति और शीतक्रम कपालभाति के भेद से कपालभॉति तीन प्रकार की होती है। इसका साधन करने से कफ से उत्पन्न दोषों का निवारण होता है।

उपरोक्त श्लोक में महर्षि घेरण्ड ने कपालभॉति के प्रकारों की व्यााख्या तो की है साथ ही साथ कपालभाति के लाभों की ओर इशारा करते कहा है कि ''कफदोष निवारयेत'' अर्थात कफदोषों का निवारण भी कपालभाति के अभ्यास से होना है।

16.6 कपालभॉति के प्रकार

महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्डिकापालि को हठयोग की शिक्षा देते हुए कपालभॉति के तीन प्रकार बताये है।

16.6.1 वातकर्म कपालभॉति– वात का अर्थ है हवा, वायु कर्म का अर्थ है क्रिया। कपाल का अर्थ मस्तिष्क, भाति का अर्थ है धोंकनी या प्रकाशित इस प्रक्रिया में वायु में वायु तत्व से लोहार की धौकनी के समान शीघ्रता से रेचक करते हुए मस्तिष्क को प्रकाशित करते है। मस्तिष्क को प्रकाशित करने से तात्पर्य है कि मस्तिष्क के एक–एक कोश को अनुप्राणित करना। अगर मस्तिष्क का एक–एक कोश अनुप्राणित हो गया तो साधक सामान्य व्यक्ति से महामानव तक बन सकता है। साधक समाधि की अवस्था तक पहुँच सकता है।

वातक्रम कपालभाति की क्रियाविधि महर्षि घेरण्ड ने इस प्रकार बताई है–

इडया पूरयेद्वायुं रेचयेत्पिडलया पुनः

पिडलया पूरयित्वां पुनश्चडन्द्रेण रेचयेत्

पूरकं रेचकं कृत्वा वेगेन न तु धारयेत्

एवमभ्यास योगेन कफ दोषं निवारयेत्

घे०सं० १/५६–५७

अर्थात – इडा नाडी या बायी नासिक से श्वास अन्दर लेनी है और पिंगला नाडी या दाहिनी नासिका से श्वांस छोड़नी है फिर पिंगला से श्वास अन्दर लेनी है और चन्द्र नाडी (बायी नासिका) से उसे बाहर निकाल देना है। पूरक और रेचक की जो क्रियायें होती है, उनकी गति तेज नहीं होनी चाहिए, इस क्रिया के अभ्यास से सर्दी खांसी से मुक्ति होती है।

क्रियाविधि –

1. ध्यान के किसी आसन में बैठ जाये।
2. कमर, गर्दन व रीढ की हड़्डी को एक सीध में रखे।
3. दोनों हाथों को घुटनों पर रखें।
4. दानों नासाछिद्रों से श्वास को झटके के साथ बाहर निकाले तथा पेट को अन्दर पिचकायें।
5. तद्पश्चात् विश्राम कर पुनः प्रक्रिया को दोहराये।

नोट – वातक्रम कपालभॉति की यह प्रक्रिया वर्तमान में प्रचलित है। प्रारम्भ में १०–१५ राउण्ड से शुरू करते हुए गुरू के निर्देश में ४०–५० स्टोक इसके किये जा सकते है।

लाभ –१. पाचन संस्थान के रोगों में लाभकारी है।

२. मस्तिष्क का शोधन कर मानसिक विकारों से मुक्त करती है।

३. मोटापा को कम करता है तथा फेफड़ों की क्षमता को बढ़ती है।

४. कुण्डलिनी जागरण में लाभकारी अभ्यास है।

सावधानियॉ

१. गर्भवती महिलायें इस अभ्यास को न करें।

२. हार्निया या पेट का आपरेशन हुआ हो तो भी यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

३. उच्च रक्तचाप, हृदय रोग के रोगी इस अभ्यास को न करे।

४. अभ्यास के दौरान चक्कर आने लगे तो अभ्यास बन्द कर दे।

16.6.2 व्युत्क्रम कपालभॉति – व्युत का अर्थ है उल्टा तथा क्रम का अर्थ है क्रिया। व्युत्क्रम कपालभॉति की इस प्रक्रिया में नाक से पानी खींचकर मुँह से निकाला जाता है। महर्षि घेरण्ड व्युतक्रम कपालभॉति की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहते है–

नाभाभ्यांर जलमाकृष्यक पुनर्वक्त्रेणरेचयेत्

पायं पायं व्युतत्कर्मेण श्लेवष्मायदोषं निवारयेत्

घे०सं० १/५८

अर्थात नासिका के दोनों छिद्रों द्वारा जल खींचे और मुख से निकाल दे तथा मुख से जल खींचकर नासिका से निकाल दें, यह व्युतक्रम कपालभॉति कफज दोषों का निवारण करती है।

क्रियाविधि– व्युतक्रम कपालभाति की वर्तमान प्रचलित क्रियाविधि का वर्णन इस प्रकार है–

1. सर्वप्रथम हल्का नमक डला हुआ गुनगुना पानी लें।
2. ग्लास, नेति पात्र या जग में उस पानी को डाल दे।
3. कागी गुद्रा में बैठे तथा दोनों नासाछिद्रोंको पानी में डुबा दे।
4. दोनों नासाछिद्रों से जल को अन्दर खीचें फिर श्वास छोड़ते हुए मुँह से पानी को बाहर निकाल दें।

लाभ –

1. नासिका मार्ग को स्वच्छ करने वाला अभ्यास है।
2. आज्ञा तथा बिन्दु चक्र पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
3. खेचरी मुद्रा की सिद्धि में लाभकारी है।
4. श्वसन संस्थान को स्वच्छ करता है नेत्र रोगों में लाभकारी है।

सावधानियॉ – यह एक कठिन अभ्यास है योग्य गुरू के निर्देशानुसार ही इस अभ्यास को करना चाहिए।

16.6.3 शीतक्रम कपालभॉति – शीत का अर्थ है ठण्डा व क्रम का अर्थ है क्रिया चूँकि इस क्रिया से शीतलता प्रदान होती है इसलिए इसे शीतक्रम कपालभाति कहते है। महर्षि घेरण्ड शीतक्रम कपालभाति की प्रक्रिया तथा लाभों को बताते कहते है–

शीत्कार करता हुआ साधक मुख के द्वारा जल ग्रहण कर नासिका के द्वारा निकाल दें। यह क्रिया शीतक्रम कपालभॉति कहलाती है। इसके द्वारा साधक का शरीर कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है और वार्धक्य या बुढ़ापा नहीं सताता। शरीर में स्वदच्छता उत्पन्न होती है तथा कफदोष का निवारण होता है।

क्रियाविधि –

1. सर्वप्रथम हल्का नमक युक्त गुनगुना पानी ले।
2. पानी को गिलास की सहायता से मुँह में डालकर पूरा मुँह भर लें।
3. लम्बी् गहरी नाक से श्वास भरें।
4. पानी को गले तक घुटके तद्पश्चात ठोडी को कण्ठ कूप पर मिलाये।
5. श्वास को दोनों नासाछिद्रों से बाहर निकाले तो जल स्वतः ही दोनों नासिका से बाहर निकल जायेगा।

लाभ –

1. इस क्रिया से शरीर सुन्दर तथा कान्तिमय हो जाता है।
2. नासिका मार्ग तथा श्वसन संस्थान की गन्दगी बाहर निकल जाती है।
3. शीतक्रम कपालभाति करने से वृद्धावस्था, बिमारी छू नहीं सकती है।
4. मन शान्त रहता है मानसिक रोगों से मुक्ति मिलती है।

सावधानियॉ –

1. यह एक गोपनीय क्रिया है गुरू के संरक्षण में ही इसका अभ्यास करें।
2. प्रयोग किये जाने वाला जल स्वच्छ हो तथा उसमें नमक डला हुआ हो।

16.7 सारांश

त्राटक व कपालभॉति शोधन की एक महत्पूर्ण क्रियाये है। महर्षि घेरण्ड ने त्राटक व कपालभॉति को शोधन क्रिया के रूप में वर्णन किया है। त्राटक का सीधे–सीधे अर्थ व्यक्ति किसी वस्तु का प्रतीक को लगातार देखने के रूप में लेता है कई लोगों की मान्यता है कि त्राटक से दूर दृष्टि आती है व्यक्ति को सम्मोहित किया जा सकता है पर वास्तव में ऐसा नहीं है। हठयोग में त्राटक क्रिया को सिद्धि प्रदायक नहीं वरन एक शुद्धिकरण की क्रिया के रूप में देखा है। त्राटक से मस्तिष्क व नेत्रों का शुद्धिकरण होता है।

कपालभॉति को श्वास–प्रश्वास से होने वाली क्रिया समझकर व्यक्ति इसे प्राणायाम मानता है पर वास्तव में कपालभाति प्राणायाम न होकर एक शोधन की क्रिया है। कपालभॉति से मस्तिष्क का शोधन होता है तथा प्राणमय कोश की शुद्धि होती है।

अभ्यास प्रश्न

सत्य/असत्य बताइये–

2.

(क) घेरण्ड संहिता में कपालभाति को पॉचवे स्थान पर रखा है।

(ख) कपालभाति के तीन भेद है।

(ग) कपालभाति एक प्राणायाम है।

(घ) त्राटक का अर्थ है कि सूक्ष्म लक्ष्य की ओर एकटक देखे रहना।

(ड) शीतक्रम कपालभाति में मुँह से पानी पीकर नाक से निकालते है।

(च) हार्निया या पेट के आपरेशन में वातक्रम कपालभॉति लाभकारी है।

16.8 शब्दावली –

विचारणा – विचार करना, चिन्तन करना, सोचना
अन्तरनिहित – साधक के अन्दर विद्यमान
निमेष – ऑख खोलना
उन्मेष – ऑख बन्द करना
पूर्णिमा दृष्टि– ऑख खोले रखना
अभादृष्टि – ऑखे बन्द रखना
प्रतिपदा दृष्टि –ऑखों को आधा खुला रखना
दृष्टि दोष – ऑखों के विकार

कपाल – मस्तिष्क
भॉति – धौकनी, चमकाना
पूरक –श्वास लेना
कुम्भिक – श्वास रोकना
रेचक – श्वास छोड़ना
कुण्डिलिनी – मूलाधार चक्र के समीप सोई हुई एक शक्ति
नासाछिद्र –नाक के छेद
वात – हवा
हार्निया – आंतों का एक रोग
काग – कौवा
इड़ा –चन्द्र नाडी, वायॉ स्वर
पिंगला –सूर्य नाडी, दायॉ स्वर
व्यूत – उल्टा
शीत – ठण्डा

16.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१ (क) अ (ख) ग (ग) ब

२ (क) असत्य (ख) सत्य (ग) असत्य (घ) सत्य

(ड) सत्य (च) असत्य

16.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. सरस्वती निरंजनानन्द स्वामी घेरण्ड संहिता (१९९७) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुगेंर बिहार।
२. सरस्वती सत्यानन्द् स्वामी आसन प्राणायाम मुद्रा बंध (१९९६) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुगेंर बिहार ।
३. गौरे डॉ० एम०एम० – शरीर क्रिया विज्ञान एवं योगाभ्यामस (२०११) डोलिया पुस्तक भण्डार, हरिद्वार।

16.11 निबंधात्मक प्रश्न

१. घेरण्ड संहिता के अनुसार कपालभाति की सुदीर्घ व्याख्या करे।

२. त्राटक क्रिया की विधि लाभ व सावधानियॉ का वर्णन कीजिए।

३ कपालभाति क्या है इसके प्रकारों की लाभ सहित व्याख्या कीजिए।

इकाई– 17 घेरण्ड संहिता में वर्णित 1 से 16 आसनों की विधि लाभ एव सावधानियॉ।

इकाई की संरचना–

17.1 प्रस्तावना

17.2 उददे्श्य

17.3 घेरण्ड संहिता में वर्णित आसनों(1 से 16) की विधि लाभ एवं सावधानियॉ

17.4 सारांश

17.5 शब्दावली

17.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

17.8 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों जैसा कि ''कि घेरण्ड संहिता'' हठयोग का एक प्रमुख ग्रन्थ है। जिसमें महर्षि घेरण्ड एवं राजा चण्डकपालि के संवाद के माध्यम से हठयोग के गूढ़ रहस्यों का विवेचन किया है। महर्षि घेरण्ड ने हास्य योग अर्थात हठयोग की सिद्धि के लिए सात प्रकार के साधनों की चर्चा की है। इन्हें सप्त साधना के नाम से भी जाना जाता है।
हठयोग के प्रथम अंश के रूप में घेरण्ड संहिता में षठकर्मो का विस्तार से वर्णन किया गया है। तथा द्वितीय अंग के रूप में 32 आसनों का विधि लाभ एवं सावधानियॉ के साथ विस्तृत विवचेन भी हमें प्राप्त होता है। पाठकों प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है...घेरण्ड संहिता में वर्णित 1–16 आसनों की भी विधि उपयोगिता तथा इन आसनों को करते समय रखी जाने वाली सावधानियॉ।

तो आइये चर्चा करते हैं विभिन्न प्रकार के आसनों के बारे में।

17.2 उद्देश्य–

प्रिय विधार्थियों प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- घेरण्ड संहिता में वर्णित विविध आसनों की विधि को स्पष्ट कर सकेंगें।
- आसनों की व्यवहारिक जीवन तथा साधना की दृष्टि से महता हो स्पष्ट कर सकेंगे।
- आसन करते समय रखी जाने वाली सावधानियॉ का वर्णन कर सकेंगे।

17.3 घेरण्ड संहिता में वर्णित आसनों(1से16) की विधि लाभ एवं सावधानियॉ

1.सिहासन

विधिः–

सिहासन करने के लिए सबसे पहले अपने पैरो को सामने फैला लेते है। दाहिने पैर को मोड़कर दाहिनी एड़ी को ठीक गुदा ठारपर रखते है जिसमें गुदा हार पर दबाव पड़े। जब तक एड़ी का हलका दबाव सिवनी पर न पड़ने लने तथा जब तक सुविधा का अनुभव न हो तब तक अपने शरीर को हिला–डुला कर व्यवस्थित करें। पुनः बायें पैर को मोड़कर बायीं एड़ी को दाहिनी एड़ी के ऊपर इस प्रकार रखते है कि टखने एक–दुसरे को स्पर्श करते दबाव पड़े। पुरूष एड़ी को अपने मूत्र संस्थान के ऊपर रखते है तो वह दबती है। महिलायें एक एड़ी को दूसरी एड़ी के ऊपर योनि स्थान में रखती है। यदि अन्तिम अवस्था में कठिनाई का अनुभव हो तो अपनी बॉंधी एड़ी को सरलतापूर्वक श्रोणी के अधिकतम निकट रखने का प्रयास करते है। इसके बाद पैरो को इसी स्थिति में बॉंध दिया जाता है। दाहिने पैर की उंगुलियों को जो नीचे है, बॉंयी जॉंघ पिण्डली के बीच घुसा देते है। इस स्थिति में ताला सा लग जाता है।

सावधानियाँः–

इस आसन का अभ्यास सभी कर सकते है। केवल ऐसे व्यक्तियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए जिन्हें साइटिका हो या रीढ़ की हड्डी के निचले भाग में गड़बड़ी हो या अण्डकोष बढ़ा हुआ हो, क्योकि बहुत बार जब बिना अभ्यास के इस आसन को लोग करते है, तब यदि अण्डकोष बढ़ा हुआ हो तो फट जाता है, जिसके कारण पानी थैली में आ जाता है और दर्द होने लगता है।

लाभः–

सिहासन ध्यान का एक आसन है, जिससे मेरूदण्ड की स्थिरता को बनाए रखा जा सकता है, जो ध्यान के लिए आवश्यक है।

यह प्रजनक हार्मोनो के हाख को नियन्त्रित करता है, जो आध्यार्तमण्ड प्रगति के लिए आवश्यक है। जिन लोगों को स्वप्नदोष होता है, उनके लिए यह उत्तम आसन है, क्योकि इसमें हमारी मूत्रोन्हेय की नाड़ियाँ दबती है और उन पर लगातार तो दबाव पड़ता रहता है, उससे बाद में शरीर को आन्तरिक ग्रन्थियाँ सुहढ़ बनती है।
महिलाओं को जो श्वेत–पदर होता है वह भी इस अभ्यास से नियंत्रण में आ जाता है।
मूलाधार चक्र की जाग्रति भी इस आसना के सही अभ्यास से होती है।

2.पद्मासन

विधिः– सबसे पहले पैरो को सामने फैला कर एक पैर को दूसरे पैर की जाँच के ऊपर और दूसरे पैर को पहले पैर की जाँघ के ऊपर रख देना है तलव उर्ध्वमुखी रहे तथा एड़ी पेट के अग्रभाग के निचले हिस्से को स्पर्श करें। अन्तिम अवस्था में दोनो घुटने जमीन के सम्पर्क में रहेंगें। सिर एवं पीठ को बिना जोर लगाये सीधा रखने का प्रयास करें। आँखो को बन्द करें। इसे तो हम लोग पद्मासन कहतें है, लकिन महार्षे घेरण्ड ने जिस स्थिति का यहाँ वर्णन किया है वह है–बहपद्मासन शरीर के पृष्ठ भाग से अपने हाथो को ले जाकर दाहिने हाथ से दायें पैर के अँगूठे को और बायें हाथ से बायें पैर के अँगूठे को पकड़ लेना है। इसे कहते है बहपद्मासन।

सावधानियाँ– पद्मासन लगाने के पूर्व यदि पैरो को लचीला बनाने के लिए तितली आसन तथा घुटना घुमाने का अभ्यास करे तो यह सुविधा होती है। यदि पैर पर्याप्त लचीला नहीं है, तो जोर लगाकर पद्मासन करने का प्रयास न करें अपित पैर को लचीला बनाने वाले आसनों का नियमित अभ्यास तब तक करें जब तक पैर लचीले न हो जायें। साइटिका, सेक्रल इन्फेक्शन, तथा घुटनों के दर्द से पीड़ित व्यक्ति इस आसन को न करें।

लाभः– मानसिक शान्ति, शारीरिक स्वास्थ्य को बढ़ाने में सहायक। जठराग्नि तीव्र होती है भूख बढ़ती है। मन को एकाग्रचिप्त करने के लिए बहुत ही शक्तिशाली माध्यम।

3.उष्ट्रासन

विधिः–

वज्रासन में बैठते है। भुजाओं को बगल में रखते हुए घुटनो पर खड़े होते है। इस आसन में घुटनों से नीचे पैरो को जमीन पर टिकातें है। घुटने पैर आपस में मिले रहते है, किन्तु यदि उन्हें अलग–अलग रखने में सुविधा का अनुभव हो तो अलग–अलग भी कर सकते है। पीठ को पीछे की ओर मोड़ कर दायें हाथ से दायीं एड़ी तथा बायें हाथ से बायीं एड़ी को पकड़ते है।

इसमें एक बात का ध्यान रखियें कि जब इस प्रकार के आसन में खड़े होते है तब एड़ियों के बीच कमर की चौड़ाई जितनी दूरी होनी चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि जांघो को घुटनो से कमर तक सीधा ही रखना है और कमर से ऊपर शरीर को मोड़ना है। इस

स्थिति में आने के लिए अमाशय को जोर लगाकर सामने की ओर फैलाते हैं। इस अवस्था में सिर की पीछे की ओर ले जाते है। पूरे शरीर को विशेषकर मेरूदण्ड को शिथिल बनाने का प्रयास करते है। शरीर को भार समान रूप से हाथो एवं पैरो पर रहना चाहिए। पीठ को चपाकार आकृति में बनाए रखने के लिए भुजाए कन्धो को अवलम्ब प्रदान करती है।

जब तक सुविधा पूर्वक इस अन्तिम स्थिति में रह सकते है रहें। तत्पश्चात् हाथों को एक–एक कर एड़ियों से हटातें हुए प्राम्भिक स्थिति में आ जातें है। उष्ट्रासन का अभ्यास करते समय शरीर की आकृति ऊँट के कूबड़ के सदृश हो जाती है।

सावधानियाँः–

उच्च रक्तचाप से पीड़ित लोगों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

जिनकी थायराइड गृन्थि बढ़ी हो उन्हें सावधानी रखनी चाहिए।

कटिवात से पीड़ित व्यक्तियों का विशेष निर्देशन में ही आसन को करना चाहिए।

4.भद्रासन

भद्र अर्थात् कल्याण कारी, यह भद्रासन सभी रोगों को दूर करता है। इसलिए इसे भद्रासन कहतें है।

विधिः–

सर्वप्रथम वज्रासन में बैठकर दोनो पैरों के अँगूठों को साथ–साथ रखते है। घुटनों को जितना हो सके दूर–दूर फैलते है। पैरों की अँगुलियों का सर्म्पक जमीन से बना रहे। एड़ियों को इतना फैलाते है कि नितम्ब फर्श पर जम जाये। फिर दोनों हाथों से टखने को पकड़ते है।

लाभः– यह आसन मुख्य रूप से आध्यात्मिक साधकों के लिए हैं, क्योकि इस स्थिति में आने मात्र से मूलाधार चक्र अत्तेजित होने लगता है। यह ध्यान का एक उत्तम आसन है।वज्र नाड़ी पर जोर पडने के कारण पाचन शक्ति तीव्र होती है। साथ ही साथ बिना प्रयास किये स्वाभाविक रूप से अश्विनी और वज्रोली मुद्रा का अभ्यास भी इसमें हो जाता है। मस्तिष्क एवं उसकी उत्तेजना को शान्त करने का उत्तम उपाय है।प्राण के प्रवाह की संयत और सन्तुलित बनाने के लिए, उर्ध्वगामी बनाने के लिए इसका अभ्यास किया जाता है।

5.मुक्तासन

यह मुक्तासन योगियों के लिए सिद्धि प्रदान करने वाला है। इसलिए इसे मुक्तासन कहतें है।

विधिः–

इसमें पहले पैरों को सामने फैला लेते है। बायें पैर को मोड़कर दायीं जांघ के नीचे रखतें है और जितना हो सके, शरीर के समीप लाने का प्रयास करते है। फिर दाहिने पैर को बायें पैर ऊपर रहे।

लाभः– सुखासन ध्यान का सरलतम तथा सबसे अधिक सुविधाजनक आसन है।

जो लोग ध्यान के अन्य कठिन आसनों में नहीं बैठ सकते, वे इस आसन का उपयोग कर सकते है।यह आसन किसी प्रकार का तनाव या दर्द उत्पन्न किये बिना शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन प्रदान करता है।

6.वज्रासन

इसमें दोनों जंघाएँ वज्र के समान हो जाती है इसलिए इसे वज्रासन कहा जाता है।

विधिः–दोनो पैरों को सामने फैलाकर बैठते है तथा बगल में हथेलियाँ जमीन पर रहेंगी। अब दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर दाहिने नितंब के नीचे ले जाएँ, पैर के पंजे अंदर की तरफ रहेंगे। इसी तरह बाएँ पैर को मोड़कर बाएँ नितंब के नीचे ले जाएँ। दोनों हाथों को दोनो जंघाओं पर रखते है। आँखें बंद कर लेते है। यह वज्रसान होतो है। इसमें सिर, गरदन तथा रीढ़ तीनो एक सीध में रहना चाहिए।

लाभः– इस आसन से जंघाओं तथा पिंडलियों की मांसपेशियाँ मजबूत होती है। इसको करने से पाचन संस्थान तथा प्रजनन संस्थान पर प्रभाव पड़ता है। आमाशय के रोगों –अति अम्लता (Hyper Acidity) एवं पेप्टिक अलसर का निवारण करता है। पाचन की दर को तीव्र करता है। इसको खाना खाने के बाद किया जाना लाभदायक है। यह श्रेणि प्रदेश में रक्त प्रवाह एवं स्नायविक आवेगों में परिवर्तन करता है।मांसपेशियों को पुष्ट करता है। साधक की यौन भावनाएँ उसके नियंत्रण में आ जाती है। इसके अभ्यास से वज्र नाड़ी पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यह ब्रह्मचर्य पालन के लिए उत्तम अभ्यास है। ध्यान के लिए भी इस अभ्यास को उपयोगी माना गया है। साइटिका एवं सेक्रल इन्फेक्शन से पीड़ित व्यक्तियों के लिए यह ध्यान का सर्वोत्तम आसन है। इसमें प्राण प्रवाह सुचारू रूप से होता है। कुण्डलिनी योग में सुषुम्ना की जागृति के लिए भी इस आसन का अभ्यास किया जाता है।

सावधानियाँः– यदि जांघों में दर्द का अनुभव हो तो इसी आसन में घुटनों को थोड़ा अलग कर लें।घुटने के दर्द वाले व्यक्ति इसको ने करें। बवासीर की शिकायत वाले रोगी भी इसे न करें।

7.स्वस्तिकासन

विधिः– बायें घुटने को मोड़कर बायें पैर के तलवे को दायी जांघ के भीतरी भाग के पास इस प्रकार रखते है कि एड़ी सिवनी का स्पर्श न करें। बायें घुटने को मोड़कर दायें पैर को बायें पैर के ऊपर रखते है। जैसे सुखासन में बैठते है। अब केवल सुखासन में बैठना नहीं

है। जिस प्रकार सिहासन के अभ्यास में पैर के पंजे को जांघ और पिण्डली के बीच से निकाला जाता है, ठीक उसी प्रकार सुखासन में बैठकर, बायें पैर को मोड़कर पंजे को दाहिनी जांघ पिण्डली के बीच से ऊपर निकालना है और दाहिने पैर के पंजे को बायी जांघ पिण्डली के बीच से दबे रहते है और एड़ी से श्रेणि प्रदेश को स्पर्श न करें। घुटने जमीन के सर्म्पक में रहें। रीढ़ की हड्डी को सीधा रखें। हाथो को ज्ञान मुहा में घुटनो के ऊपर रखें या फिर गोद में रखें। आँखें बन्द कर पूरे शरीर को शिथिल बनायें। शरीर को व्यवस्थित कर आसन को आरामदायक बनायें शरीर को स्थिर बनाने के लिए या एक सरल अभ्यास है।

सावधानियाँः– साइटिका एवं रीढ़ के निचले भाग के विकारो से पीड़ित लोगों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

लाभः– स्वास्तिकासन ध्यान का एक आसन है जिससे मेरूदण्ड की स्थिरता का बनाए रखा जा सकता है, जो ध्यान के लिए आवश्यक है। महिलाओं में जो श्वेत प्रदर होता है वह भी इस अभ्यास से नियंत्रण में आता है। मूलाधार चक्र की जागृति होती है। प्रजनक हार्मोनों के स्त्राव को नियन्त्रित करता है। स्वप्न– दोष वालो के लिए यह उत्तम आसन है।

8.योगासन

विधिः– एक पैर जांघ के ऊपर दूसरा जांघ के नीचे रहता है। इस अवस्था में हाथो को घुटने पर रखना है। नासिकाग्र हष्टि का अभ्यास करना है। यही योगासन है। यह एक सहज आसन है, जिसे कोई भी व्यक्ति कहीं पर भी बैठकर ध्यान के लिए, एकाग्रता के लिए जप के लिए अपने आपको स्थिर बनाने के लिए और सहज भाव से बैठने के लिए कर सकता है।

9.सिंहासन

यह सिंह गर्जना के आधार पर निर्मित किया गया है । यह सिंहासन नामक आसन सभी रोगों को नष्ट करने वाला है।

विधिः– सर्वप्रथम वज्रासन में बैठकर घुटनों को लगभग 45 सेन्टीमीटर फैलाते है। पैरो की अँगुलियाँ एक–दूसरे का स्पर्श करती रहें । सामने झुककर अपनी हथेलियों को घुटनों के मध्य जमीन पर रखते है। अँगुलियाँको शरीर की ओर रखते है। भुजाओं को एकदम सीधा रखते हुए पीठ को सीधा रखते है। शरीर का भार भुजाओं पर रहें। सिर का ऊपर उठाते हैं ताकि ग्रीवा का अधिकतम विस्तार हो और कण्ठ मार्ग खुला रहें। आँखों को खुला रखते हुए शाम्भवी मुद्रा में भूमध्य पर एकाग्र करते है।

लाभः– जो लोग ठीक से बोल नहीं पाते, बोलने में परेशानी होती है, या जिनकी आवाज कर्कश है, मधुर नहीं है, या हकलाते हैं, उनके लिए तथा गले के स्वर रज्जु, स्वर उत्पन्न करने वाली ग्रन्थी से समबद्ध रोगों में। टॉन्सिलाइटिस जिसमें मवाद भरता या खून निकलता है (गले में सूजन आ जाती है) दर्द होता है और मुँह के छालों के लिए इसका

अभ्यास उत्तम माना गया है। इससे वक्ष एवं मध्य पट का तनाव दूर होता है। निराश एवं अन्तर्मखी लोगों के लिए भी यह आसन उपयोगी है। इससे आवाज ओजस्वी एवं सुन्दर होती है। इसमें शाम्भवी मुद्रा के लाभ भी प्राप्त होते है।

10.गोमुखासन

शरीर की आकृति गाय के मुख के समान हो जाती है। इसलिए गोमुखासन कहतें है।

विधिः– सर्वप्रथम पैरों को फैला लेते है। इस आसन में इस प्रकार बैठते है कि एक पैर दूसरे पैर के ऊपर रहे तथा एड़ियाँ बगल में रहें। दाएँ पैर को मोड़कर एड़ी को बाएँ नितंब के समीप व दोनो घुटनों को एक–दूसरे पर रखते है दाएँ हाथ को पीठ के पीछे ल जाकर दोनों हाथों की अँगुलियाँ को परस्पर बाँध लेते है। कोहनी बगल के सीध में होनी चाहिए रीढ़ सीधी रहे तथा सिर पीछे की ओर व आँखें बंद होनी चाहिए।

लाभः–छाती का ऊपरी भाग, कंधे, गरदन तथा मेरूदण्ड की पेशियों का तनावयुक्त व्यायाम होता है। पेशियाँ मजबूत होती है। यह मधुमेह, स्पॉडिलाइटिस, स्वप्नदोष, निद्रादोष, धातुदौर्बल्य तथा प्रजनन संबंधित रोगों में लाभदायक है। फेफड़ो की कार्य क्षमता को बढ़ता है। ध्यान में प्रगति करने के लिए यह लाभदायक है। इसके अभ्यास से पुरूषों के अण्डकोष वृद्धि रोग में लाभ होता है।

सवाधानियाँः– जिनको बवासीर की शिकायत हो वे इसे न करें। इस आसन में जोर जबरदस्ती करने पर कंधों को हानि पहुँच सकती है।

11.वीरासन

यह आसन वीरता का प्रतीक होने के कारण इसे वीरासन कहते हैं।

विधिः– वज्रासन की स्थिति में बैठें। दाहिने घुटने को ऊपर उठाकर दायें पैर को बायें घुटने के भीतरी भाग के पास जमीन पर रखते है। दायी केहुनी को दायें घुटने पर रखते हैं तथा ठुड्डी को दायी हथेली के ऊपर रखतें है। आँखें बंद कर विक्षाम करतें है। शरीर पूरी तरह गतिहीन रहे। रीढ़ एवं सिर सीधे रहते है। फिर बायें पैर को दाहिने घुटने के पास रखकर इस अभ्यास को दोहराते हैं।

श्वास– यह कल्पना करते हुये कि श्वास भूमध्य से अन्दर बाहर आ–जा रहीं है, धीमा, गहरा श्वसन करें।

लाभः– जिन लोगों को ध्यान के आसन में बैठने में कठिनाई होती है वे इस अवस्था में ध्यान का अभ्यास कर सकते है। जब तक पैर पर बैठे–बैठे थक जायें तब पैर का बदल लें। शरीर को एक आरामदायक स्थिति में लाने के लिए और उसमें एकाग्रता का अभ्यास करने, पढ़ाई करने एवं मन को केन्द्रित करने के लिए उपयोगी आसन है। जो लोग

वज्रासन नहीं कर पाते, जिनकी जाँघ की मांसपेशियाँ कड़ी है या एड़ी अथवा घुटनों में दर्द होता है। वे इस आसन को कर सकतें है। स्नायविक विकार के लिए भी यह उपयोगी है।

12.धनुरासन

इसमें शरीर की आकृति तने हुए धनुष के समान हो जाती है। इसलिए इसे धनुरासन कहा जाता है।

विधिः– सर्वप्रथम इसमें पेट के बल लेट जाते हैं फिर पैरों को पीछे की ओर मोड़कर एड़ियों को नितंबों के समीप लाते हुए पैरों को हाथों से पकड़ लेते है। अब धीरे से पकड़े हुए पैरों को ऊपर की ओर खीचते हुए जांघें, सिर तथा छाती तीनों को एक साथ उठाते हैं। शरीर का आकार धनुष के समान हो जाता है। वापस आते समय छाती व जांघें टिकाऊँ व पाँव छोड़ दीजिए और पूर्व स्थिति में आ जाएँ।

लाभः– यह मेरूदण्ड तथा पीठ की मांसपेशियों को लछीला बनाता है तथा इससे स्नायु दुर्बलता दूर होती है। यह कब्ज तथा पित्त विकार दूर करने में सहायक है। जठराग्नि प्रदीप होती है। तथा पाचन क्रिया ठीक होती है। श्वास संबंधी रोगों को सुधरने में सहायक है। आमाशय व एड्रीनल ग्रन्थि से हारमोन के स्राव में संतुलन आता है। यह अपच, कब्ज, यकृत की मंद क्रियाशीलता, मधुमेह, इन्द्रिय संयम, मासिक धर्म संबंधित अवियमितताओं के अपचार में सहायक है। अंगों को सुडौल बनाता है।

सावधानियाँः–

जल्दी करने का प्रयास न करें। इसको खाली पेट करना चाहिए। हदृय विकार, उच्च रक्तचाप, हर्निया, कमर दर्द आदि होने पर इसको नहीं करना चाहिए।

13.शवासन

शव का अर्थ होता है–मृत शरीर इस आसन में शरीर की स्थिति मुर्दे के समान हो जाती है, अंग–अंग शिथिल हो जाता है इसलिए इस आसन का नाम शवासन है।

विधिः– सर्वप्रथम पीठ के बल सीधे लेट जाते हैं। दोनों पाँवों में लगभग डेढ़ फीट फासला रखते हैं। दोनों हाथों को शरीर से लगभग छः इंच दूर रखते हैं और हथेलियाँ आसमान की ओर रहती है। अंगुलियाँ हलकी सी मुड़ी हुई तथा आँखें बंद रहेंगी । गरदन सुविधानुसार किसी एक तरफ को कर देते है। कुछ समय इसी अवस्था में विश्राम करते है।

लाभः– यह आसन शरीर व मन को शांति तथा शिथिलता प्रदान कर तनाव जनित अन्य रोगों को दूर करता है। यह शरीर के प्रति सजगता प्रदर्शित करता है तथा थकान को दूर करता है।उच्च रक्तचाप, मधुमेह, तंत्रिका तंत्र दौर्बल्य, हदृय, रोगों से ग्रसित रोगी को यह

आसन बहुत लाभ पहुँचाता है। इस आसन को अन्य आसनों के बीच–बीच में और अंत में किया जाता है।

सावधानियाँः– जिन्हें डॉक्टर ने किसी कारणवश पीठ के बल सोने से मना किया हो वे इसे न करें।

इस आसन में मुँह बंद, आँखें बंद, सिर, मेरूदण्ड व गर्दन तीनों एक सीध में तथ चेंहरे पर किसी प्रकार का तनाव नहीं होना चाहिए ।सामान्यतः इस आसन में नींद नहीं लेनी चाहिए।

14.गुप्तासन

इस आसन में पैरों को जांघ के नीचे रखा जाता है। पंजो, एड़ियों और पिण्डलियों को जाँघ के नीचे छुपाकर रखने का प्रयास किया जाता है। इसी कारण इसे गुप्तासन कहतें है।

गुदा को दोनो पंजो के ऊपर रखते है। यह एक सरल आसन है और सभी व्यक्ति इसका अभ्यास कर सकते है।

15.मकरासन

विधिः– पेट के बल सीधा लेट जायें सिर और कन्धों को ऊपर उठायें तथा ठेहुसेयों को जमीन पर रखते हुए ठुड़ी को हथेलियों पर टिकायें। मेरूदण्ड को अधिक चापाकर स्थिति में करने के लिए केहुनियों को मिलाकर रखें। यदि गर्दन पर अतिरिक्त तनाव पड़ रहा हो तो केहुनियो को थोड़ा फैला ले। मकरासन में दो बिन्दुओं पर प्रभाव का अनुभव होता है– गर्दन एवं पीठ का निचला भाग। यदि केहुनिया आपस में बहुत दूर रहेगी तो गर्दन में तनाव का अनूभव होगा उन्हें वक्ष के बहुत पास लाये ंतो पीठ के निचले भाग में अधिक तनाव का अनुभव होगा। केहुनियों की स्थिति को इस प्रकार व्यवस्थित करें कि ये दोनों बिन्दु संतुलित हो जाए। आँखों को बन्द कर पूरे शरीर को शिथिल बनायें।

सावधानियाँः– जिन व्यक्तियों की पीठ में दर्द रहता है, उन्हें यदि इस आसन में दर्द का अनुभव हो तो वे इसका अभ्यास न करें।

लाभः– छाती फेफड़ो का विस्तार करता है। जले को साफ करता है।जमा हुआ कफ साफ हो जाताह है और बन्द मार्ग खुल जाता है। स्लिपीडस्क, साइटिका, पीठ के निचले भाग में दर्द या मेरूदण्ड सम्बन्धी अन्य रोगों से पीड़ित लोगों के लिए यह आसन बहुत प्रभावकारी है।

16.मत्स्यासन

नामाकरणः– मछली की आकृति के समान होने के कारण इसे मत्स्यासन कहते है। यह रोगों को नष्ट करने वाला होता है।

विधिः– सर्वप्रथम पद्मासन में बैठकर केहुनियों के सहारे पीछे की ओर झुकाते है और सिर को ब्रह्मरंध्र को जमीन पर रखते हैं। फिर दोनों हाथों से पैरो के पंजों को पकड़ लेते है। केहुनियाँ जमीन पर रहती है। अतः पैर और जाँघ पद्मासन की अवस्था में जमीन पर मेरूदण्ड एक संतु की तरह चापाकर स्थिति में और सिर भूमि पर रहेगा। सिर की स्थिति को इस प्रकार व्यवस्थित करें कि मेरूदण्ड को अधिकतम विस्तार हो। शरीर का भार नितम्बों एवं पैरों पर डालकर भुजाओं एवं पुरे शरीर को शिथिल बनायें । आँखें बन्द करें तथा धीमा, गहरा श्वसन करें। फिर जिस क्रम से आप मत्स्यासन की स्थिति में आयें थे, उसके विपरीत क्रम से प्रारम्भिक स्थिति में लौट आयें। पैरों को बदलकर अभ्यास की पुनरावृत्ति करें। यह मत्स्यासन का अभ्यास है।

लाभः– इस आसन से आँतों तथा आमाशय के अंगों का विस्तार होता है। यह पेट के सभी रोंगों के लिए लाभकारी है।यह प्रदाही एवं खूनी बवासीर को भी दूर करता है। प्रजनन संस्थान के रोगों को दूर करने या उनसे बचाव में सहायता मिलती है। इस अभ्यास से फेफड़ों का विस्तार होता है और फेफड़ो तथा श्वसन से संबंधित रोग दूर होते है। हदृय रोग, पेप्टिक अलसर, हार्निया, मेरूदण्ड से संबंधित रोगों का किसी गंभीर रोग से पीड़ित व्यक्तियों को इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए। गर्भवती महिलाओं को भी इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न– सत्य / असत्य कथन

1. पदमासन एक ध्यानात्मक आसन है।

2. बज्रसन का अभ्यास भोजन के उपरान्त किया जा सकता है।

3. सायटिका से ग्रस्त व्यक्ति का स्वस्तिकासन करना चाहिये।

4. धनुरासन में शरीर की आकृति तने हुये धनुष के समान हो जाती है।

17.4 सारांश–

प्रिय पाठकों उपर्युक्त विवेचन से आप खण्ड संहिता में वर्णित विभिन्न आसनों की विधि लाभ एवं सावधानियों को जान गये होंगे। वस्तुतः जिस सारिरिक स्थिति में एक लम्बे संयम स्थिरता के साथ सुखपूर्वक बैठा जा सके। उसे ही योग की भाषा में आसन की संज्ञा दी गई है। महर्षि घेरण्ड के अनुसार आसनों का अभ्यास शारीरिक दृढता की प्राप्ति के लिए किया जाता है। जिससे की साधक आगे की साधना में सहायता पूर्वक आगे बढ़ सकें।

17.5 शब्दावली

भद्र – कल्याणकारी

पदम्– कमल

चक्र – उर्जा केन्द्र नाड़ियों के गुद्दे भी गोलाकार रूप में पाये जाते हैं।

धातुदौर्बल्य – रस, खत, मॉस भेद, अस्थि एवं शुक्र इन सप्तधातुओं में कमजोरी।

17.6 –अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य

17.7 – संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.निरंजनानंद सरस्वती, घेरण्ड संहिता, मुंगेर बिहार।

2.स्वामी विद्यानानंद सरस्वती। (2007) योग विज्ञान, योग निकेतन ट्रस्ट, ऋषिकेष गढ़वाल।

17.8 – निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न 5. – घेरण्ड संहिता में वर्णित किन्ही तीन ध्यानात्क आसनों की विधि लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2. – धनुरासन एवं उष्ट्रासन की विधि उपयोगिता एवं सावधानियों पर प्रकाश डालियें।

इकाई – 18 – घेरण्ड संहिता में वर्णित 17–32 आसनों की विधि लाभ एंव सावधानियॉ

इकाई की संरचना

18.1 – प्रस्तावना

18.2 – उददेश्य

18.3 – घेरण्ड संहिता में वर्णित (17 से 32) आसनों की विधि लाभ एंव सावधानियॉ

18.4 – सारांश

18.5 शब्दावली

18.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

18.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

18.8 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 – प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की इकाई में आपने घेरण्ड संहिता में वर्णित प्रारंभिक 16 आसनों के बारे में विस्तृत अध्ययन किया हैं। प्रस्तुत इकाई में हम इसी क्रम को आगे बढ़ाने हुये आगे के सभी आसनों के बारे में चर्चा करेगें जिसमें इन आसनों को करने के तरीके उनसे होने वाले विभिन्न प्रकार के शारीरिक मानसिक एंव आध्यात्मिक लाभों तथा सावधानियों इत्यादि के बारे में प्रकाश डाला जायेगा।

18.2 – उददेश्य –

प्रिय विद्यार्थियों इस इकाई को पढने के बाद आप–

- विभिन्न आसनों की विधियों का विश्लेषण कर सकेगें।
- आसनों की उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।
- आसन करते समय ध्यान रखने योग्य बातों का विवेचन कर सकेंगे।

18.3 – घेरण्ड संहिता में वर्णित (17 से 32) आसनों की विधि, लाभ एवं सावधानियॉ

मत्येन्द्रासन

विधिः–सबसे पहले अपने पैरो को पहले सामने फैला लेते है दाहिने पैर को मोड़कर जमीन पर बायें घुटने की बगल में बाहर की ओर रखते है। दायें पैर को उँगुलियाँ सामने की ओर रहंगी। बायें पैर को मोड़कर बायीं एड़ी को दाहिने नितम्ब के पास रखते है। इसमें एक पैर उठा हुआ रहता है। अब जो पैर उठा हुआ हो उसकी विपरीत भुजा को छाती घुटने के बीच से ले जाते है, इससे एक प्रकार का तनाव उत्पन्न होता है।

इस बाद केहुनी से घुटने को शरीर की तरफ दबाते हुए हाथ को सीधा करके पैर या टखने को इस प्रकार पकड़ते हैं कि दायीं घुटना काँख के पास रहे। दाहिनी भुजा को सामने की ओर फैलाकर हण्टि को उँगुलियो के अगुभाग पर केन्द्रित करते है।

सावधानियाँः– महिलाएँ दो–तीन महीने के गर्भ के बाद इस आसन का अभ्यास न करें।

जिन्हें छदय रोग है वह इसका अभ्यास नहीं करें। साइटिका स्लिप डिस्क से पीड़ित व्यक्तियों को इस आसन से बहुत लाभ हो सकता है।

लाभः– यकृत मूत्राशय को सक्रिय बनाता है। पाचन –संस्थान सम्बन्धी रोगों को निवारण होता है। यह आसन अधिवृक्क ग्रन्थि उपवृक्क गन्थि पित्त के स्त्राव का नियमन करता है। इसका उपयोग साइनासाइटिस, हे फीवर, ब्रोकांइटिस, कब्ज, कोलाइटिस, मासिक हार्म सम्बन्धी अनियमितताओं, मूत्र निष्कासन प्रणाली से सम्बन्ध रोगों तथा सखाइकल स्पाँण्डेलाइटिस के योगोपाचार के लिए किया जा सकता है।पैर के मांसपेशियों को लचीला बनाता है। तथा जोडों के कड़ेपन को दूर करता है।

दिल के मरीजों के लिए उत्तम आसन है। जिन लोगों को दिल की धड़कन बीच–बीच में बन्द होने लगती है, इस प्रकार के रोगों को ठीक करने के लिए यह आसन बहुत उपयोगी है।

यह आसन पाचन एवं प्रजनन प्रणलियों के लिए लाभकारी है। यह अमाशय का विस्तार करता है, कब्ज को दूर करता है। पीठदर्द कटिवात, कूबड़ झुके हुए कन्धों के उपचार में सहायक होता है।

इस आसन से थायराइड ग्रन्थि के कार्यो में नियमितता आती है।

गोरक्षासन

यह गोइक्षासन योगी गोइक्षनाथ द्वारा सिद्ध किया गया है, इसलिए इसे गोइक्षासन कहते हैं, यह गोइक्षासन योगियों को सिद्धि प्रदान करने वाला है।

विधिः–दोनों पैरों को सामने फैलाकर बैठ जाते है। घुटनो को मोड़कर, तलवों को मिलाकर एड़ियों को ऊपर उठा देतें है। घुटने और पैर के पंजे जमीन पर रहते है। इसमें श्रेणि प्रदेश, नितम्ब और प्रजननेन्द्रियाँ एड़ी के पीछे रहती है। हाथों को नितम्बों के पीछे इस प्रकार रखते है कि उँगुलियाँ बाहर की ओर रहें शरीर को सामने की ओर झुकाते हुए इतना ऊपर उठाते है कि पाँव जमीन के लम्बवत् हो जायें। भाभि के सामने से दोनों कलाइयों को आर–पार करते हुए बायीं एड़ी को दायें हाथ से तथा दायीं एड़ी को बायें हाथ से पकड़ लेते हैं। मेरूदण्ड को सीधा रखते हुए सामने की ओर देखते हैं। इस अवस्था में जालन्धर बन्ध एवं नासिकाग्र दृष्टि का अभ्यास भी करते है। सामान्य श्वास लेते हुए जितनी देर तक आराम से बैठ सकते हैं, उतनी देर बैठियें।

लाभः– इस आसन से अभ्यास से प्रजनन इन्द्रियों, काम वासना और वीर्य स्खलन पर नियन्त्रण प्राप्त किया जाता है।यह पैरे को बहुत अधिक लचीला बना देता हैं।यह आसन अपान के प्रवाह को उर्ध्वगामी बनाकर ध्यान की अवस्था लाने में सहायक होता है।इसमें मन तुरन्त एकाग्र होता हैं क्योंकि शरीर की अवस्था इस प्रकार की हो जाती है कि मन भटकता ही नहीं। गले के संकुचन की क्रिया से अनेक रोगों का नाश होता है।

पश्चिमोतासन

पृष्ठभाग को ताना जाता है इसलिए इसको पश्चिमोतासन कहा जाता है।

विधिः– दोनों पैरो को मिलाकर सामने की ओर फैलाकर बैठते है। दोनों हाथों से दोनों पैरों अँगूठे को पकड़ लेते है तथा सिर को घुटनो से स्पर्श कराते हैं। दोनों कोहनियाँ जमीन से स्पर्श करनी चाहिए। कुछ देर इसी स्थिति में रूकें फिर वापस आ जाएँ।

लाभः– इस आसन से प्राण का सुषुम्ना नाड़ी में संचार होता है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। डायबिटीज के रोगियों के लिए आभदायक है। यह कब्ज, अजीर्ण तथा शुक्र दौर्बल्य को दूर करता है तथा साइटिका होने की संभावना को टालता है। पेट व कमर में लचीलापन आता है। मोटापे को घटाता है। मूत्र तथा प्रजनन संस्थान से रोगों को दूर करने में सहायक है। स्त्रियों के लिए बहुत अधिक लाभदायक है। यह बुद्धि को बढ़ाता है।

सावधानियाँः– आसन करते समय झटके के साथ कुछ नहीं करना चाहिए। उच्च रक्तचाप, हदृय रोगी, स्पॉडिलाइटिस से पीड़ित व्यक्ति को नही करना चाहिए। स्लिप डिस्क, मेरूदण्ड से संबंधित दोष तथा पेट मे अलसर की शिकायत होने पर इसे न क

उत्कटासन

इसका नाम उत्कट आसन इसलिए पड़ा है कि इसमें बैठने से उत्सुकता झलकती हैं, उत्सुकता के समय व्यक्ति इसी प्रकार बैठता है ताकि यदि जल्दी से कुछ काम करना हो तो तुरंत उठ जायें । पंजे और एड़ियाँ परस्पर जुड़ी हुई रहती है।

विधिः–सामान्य रूप से हम उत्कट आसन का अभ्यास इस प्रकार करते हैं– सीधे खड़े होकर पैरों के बीच कमर की चौड़ाई जितनी दूरी रखते है और घुटनों को मोड़ लेते हैं। हाथों को घुटनों पर रखते हैं। यह सबसे सरल तरीका है। लेकिन उसकी अन्तिम अवस्था दूसरी है। वह भी बहुत सरल है। अन्तिम अवस्था में दोनों पैरों को आपस में सटाकर रखते है। अब जिस प्रकार ताडासन में पंजों को ऊपर उठाते हैं, उसी प्रकार ऊपर उठाते है और उसी अवस्था में फिर घुटनों को फैलाते हुए इस प्रकार बैठते है कि एड़ी गुदा द्वार से लग जाये। घुटने ऊपर रहते है। दोनों हाथ घुटनों पर रहेंगे । घुटनों को जमीन से नहीं लगाना है, वे ऊपर रहेंगे। केवल पंजों पर शरीर का भार रहेगा और एड़ियाँ गुदा–द्वार से सटी हुई रहेंगी।

लाभः– यह बहुत सरल आसन है। इसमें केवल शारीरिक संतुलन का ध्यान रखना है। चाहे आगे गिरेया पीछे चोट लगेगी । जाँघों की मांसपेशियों को पुष्ठ बनाता है। यह शारीरिक संतुलन को पक्का बनाने के लिए, संतुलन समूह के आसनों में से एक है।

संकट आसन

नामाकरणः– यह एक कठिन आसन है। दोनों पैरों में दर्द होने पर पेशियों को आराम देने के लिए हम एक पैर को उस संकटमय स्थिति में ऊपर उठा लेते है।इस लिए इस संकटासन कहते है।

विधिः– खड़े होकर बायें पैर को जमीन पर रखते है और दाहिने पैर को मोड़कर बायें पैर को चारों तरफ लपेट लेते हे। दायीं जाँघ बायीं जाँघ के सामने रहेगी। हाथों को जाँघों पर दबा कर रखना है। इसके महर्षि घेरण्ड नक संकटासन कहा है।

लाभः– यह मांसपेशियों को पुष्ट बनाता है। यह मूलाधार चक्र को जाग्रत करता है। स्नायुओं को स्वास्थय प्रदान करता है। तथा पैर के जोड़ो को ढीला बनाता है। एकाग्रता बढ़ती है।

मयूरासन

मयूर के आकृति होने के कारण इस आसन को विशेषज्ञों ने मयूरासन कहा है। यह जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

विधिः–पहले वज्रासन में बैठ जाते है और घुटनों को अलग कर सिंहासन की स्थिति में आ जाते है, जिसमें दोनों हथेलियाँ अन्दर की तरफ मुड़ी रहती है। हाथों की स्थिति को सुविधा एवं लचीलेपन के अनुसार व्यवस्थित किया जा सकता है। भुजाओं के कुहनियों से नीचे के भाग तथा कुहनियों को आपस में सटाकर नाभि के समीप रखते है और सामने झुककर पेट को केहनियों पर तथा वक्ष को भुजाओं के ऊपरी भाग पर टिकाते हैं। पैरों को पीछे ले जाकर पहले जमीन पर ही रखते हैं, उसके बाद शरीर की मांसपेशियों को तानते हुए सिर और पैरों को उतना ऊपर उठाते हैं किवे जमीन के समानान्तर हो जायें।

सावधानियाँः–

खाने के तत्काल बाद इसे नहीं करना चाहिए। केवल वही व्यक्ति कर सकता है जो पूर्णरूपेरण स्वस्थ हो।किसी प्रकार के रोग में इस आसन का अभ्यास नहीं होता।

लाभः– इस अभ्यास के अनेक लाभ हैं, क्योंकि इसमें पूरे शरीर का भार कुहनियों पर पड़ता है और कुहनियाँ नाभि क्षेत्र को भीतर की ओर दबाती हैं, जिससे यकृत, मूत्राशय, आँतों अमाशय और तन्त्रिका–तन्त्र की भी नाड़ियाँ प्रभावित होती है। स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए यह बहुत ही अच्छा अभ्यास है। इसमें आन्तरिक अंगों की क्षमता में वृद्धि होती है और इसका वास्तविक प्रभाव पड़ता है। शरीर की अन्तः स्रावी ग्रन्थियों पर। चुल्लिका ग्रन्थि में अगर किसी प्रकार का दोष हो, हार्मोनों का उत्पादन बन्द हो गया हो अथवा काम या अधिक मात्रा में उत्पादन हो रहा हो, तो उस दोष का दूर करने के लिए, चुल्लिका ग्रन्थियों को संतुलित और नियन्त्रित रखने के लिए इसका अभ्यास किया जाता है।

कुक्कुटासन

कुक्कुट का अर्थ होता है मुर्गा।इस आसन में शारीरिक विन्यास एक मुर्गे की भाँति होता है।

विधिः– पद्मासन में बैठियें हाथों को पिण्डलियों एवं जाँघों के बीच घुटनों के पास से निकालते हुए धीरे–धीरे भुजाओं को कुहनियों तक पैरों के बीच से निकाल लें। हथेलियों को जमीन पर दृढ़ता से इस प्रकार रखें की अंगुलियाँ सामने की ओर रहे। हाथों को सीधा एवं आँखों को सामने के किसी बिन्दु पर स्थिर रखते हुए शरीर को जमीन से ऊपर उठायें। पुरा शरीर केवल हाथों पर सन्तुलित रहता है। पीठ को सीधा रखें जब तक आराम से रह सकते हैं, अन्तिम स्थिति में रहें, फिर जमीन पर वापस आ जायें और धीरे–धीरे भुजाओं, हाथों एवं पैरों को शिथिल बनायें पैरों की स्थिति बदलकर इस अभ्यास को दुहरायें।

लाभः– इस आसन से भुजाओं एवं कन्धों की मांसपेशियों को शक्ति प्राप्त होती है। वक्ष का विस्तार होता है।यह पैरों के जोड़ो को ढीला कर सन्तुलन एवं स्थिरता के भाव को विकसित करता है। कन्धों के रोग, भुजाओं, छाती, फेफड़ों और दिल से सम्बन्धित रोगों के निराकरण में यह विशेष उपयोगी अभ्यास है। मूलाधार चक्र के उद्दीपन के कारण इसका

उपयोग कुण्डलिनी जागरण के लिए किया जाता है। कुछ लोग तो काँख तक अपने शरीर को ऊपर उठा लेते हैं।

कूर्मासन

विधिः– पैरों को सामने की ओर फैलाकर बैठियें। पैरों को यथासंभव दूर–दूर रखियें। एड़ियों को जमीन के सम्पर्क में रखते हुए घुटनों को थोड़ा सा मोड़िये। आगे झुककर हाथो को घुटनो के नीचे रखिये, हथिलियाँ ऊपर या नीचे की ओर खुली रहें। आगे झुके तथा भुजाओं को धीर–धीरे पैरों के नीचे सरकायें। आवश्यकता पड़े तो घुटनो को थोड़ा मोड़ सकते है। घुटनो के नीचे से हाथों को इतना पीछे ले जायें कि केहुनियाँ घुटनों के पीछे के भाग के निकट आ जायें। पीठ की मांसपेशियों में तनाव न आने दे। एड़ियों को धीरे से आगे खिसकाते हुए पैरो को यथासम्भव सीधा करने का प्रयास करें। इससे शरीर भी अपने आप और आगे झुकेगा। श्वास एवं शिथिलता के प्रति सजग रहते हुए शरीर को धीरे–धीर आगे झुकाये जब तक ललाट पैरों के बीच जमीन का स्पर्श न करें। किसी प्रकार का जोर न लगाए। भुजाओं को मोड़कर नितम्बों के नीचे परस्पर बांध लें। यह अन्तिम स्थिति हैं। पूरे शरीर को शिथिल बनायें आँखों को बन्द करें तथा धीमी गहरी श्वास लें।जब तक इस अन्तिम स्थिति में आराम से रह सकते हो रहें। तत्पश्चात् श्वासन में विश्राम करें।

सावधानियाँः– स्लिपडिस्क, साइटिका, हार्निया या दीर्घकालिक गठिया से पीड़ित व्यक्ति इस आसन का अभ्यास न करें। यदि मेरूदण्ड पर्याप्त लचीला हो तभी इसका अभ्यास किया जाना चाहिए है।

लाभः– मधुमेह, कब्ज जैसे रोगों के उपचार में सहायक होता है। क्रोध को नियंत्रण में लाने के लिए उपयोगी। मानसिक उत्तेजना को शान्त करने के लिए, मन को अन्तर्मुखी बनाने के लिए मेरूदण्ड को लचीला बनाने के लिए इसका अभ्यास किया जाता है। इस आसन के अभ्यास से आत्म संयम, आन्तरिक सुरक्षा तथा समर्पण की भावना जाग्रत होती है। सुख–दुख का प्रभाव समाप्त हो जाता है। वासना एवं भय कम होते है तथा शरीर एवं मन को स्कुर्ति प्राप्त होती है।

उत्तान कूर्मासन

विधिः– उत्तान कूर्मासन का अभ्यास पद्यासन में किया जाता है। पद्यासन में हाथों को जांघों और पिण्डलियों के बीच से निकालकर कन्धों को पकड़ते है और उसके बाद जमीन पर सीधा लेट जाते है। यही उत्तान कूर्मासन है। कुक्कुटासन उत्तान कूर्मासन में यही भिन्नता है कि उत्तान कूर्मासन में हथेलियों को जमीन पर न टिकाकर उनसे कन्धों को पकड़ते है शरीर पद्यासन की अवस्था में जमीन पर ही रहता है।

लाभः– इस आसन के लाभ कुक्कुट आसन के लाभ के समान ही है। अन्तर इतना ही है कि इसमें शरीर ज्यादा संकुचित हो जाता है, एक आकृति में बन्ध जाता है। शरीर की संकुचित अवस्था में जब हम सिर को नीचे रखते है और पिण्डलियों को केहुनियों के ऊपर रहते है तब सभी अंगों में दबाव की उत्पत्ति होती है। इस आसन को करने से पूरे शरीर

में नये रक्त का संचार तीव्र गति से होता है, विशेषकर मांसपेशियों में जमे हुए रक्त को हटाने के लिए इस आसन का अभ्यास किया जाता है।

उत्तान मण्डूकासन

विधिः– उत्तान मण्डूकासन का अभ्यास सुप्त वज्रासन के समान किया जाता है। वज्रासन पीछे लेट जाना है। सिर को नीचे रख लेना है, दोनों जांघों एक साथ रहेगी। यह सुप्त वज्रासन है। इससे नितम्ब एड़ी के ऊपर रहते है, वज्रासन को ही तरह केवल पीठ धनुषाकार मुड़ी हुई रहती है। उत्तान मण्डूकासन में कमर को भी उठा दिया जाता है। कमर को उठाने से शरीर का भार केवल घुटनों और सिर पर रहता है। इसमें पैर अलग–अलग रहते है।

लाभः– इस आसन का अभ्यास छाती के विस्तार, श्वसन प्रणाली से सम्बन्धित रोगों के निदान, स्पाण्डिलाइटिस, स्लिपडिस्क, साइटिका इत्यादि के उपचार के लिए किया जाता है।

मण्डूकासन

यह आसन मेढक की आकशति कि होने के कारण इसे माण्डूकासन कहते है।

विधिः– मण्डूकासन की विधि बहुत सरल है। वज्रासन में बैठ कर घुटनों को यथासंभव दूर–दूर फैलाते हैं, फिर पैरों एवं एड़ियों को इतना फैलाते है कि नितम्ब आराम से भूमि पर टिक जायें। पैरों की अंगुलियाँ बाहर की और होती है तथा पैरों का भीतरी भाग भूमि के सम्पर्क में रहता है। यदि पैरों की अँगुलियों की बाहर की ओर रखते हुए आसन में बैठना सम्भव न हो तो उन्हें अन्दर की ओर भी रख सकते हैं, किन्तु नितम्ब भूमि पर टिके रहने चाहिए। हाथों को घुटनों के ऊपर रखें, सिर एवं मेरूदण्ड को सीधा रखें। आँखों को बन्द करें और पूरे शरीर को शिथिल बनाएँ। यह आसन 'मण्डूक' अर्थात् मेंढ़क की भाँति दिखने वाला आसन है।

लाभः– इस आसन के अभ्यास के बाद ताजगी प्राप्त होती है। वीर्य की रक्षा होती है।

उदर से सम्बन्धित रोगों के लिए भी लाभकारी है।

वृक्षासन

इस आसन में शरीर की आकृति वृक्ष के समान होने के कारण इस वृक्षासन कहते हैं।

विधिः– इस आसन में हम खड़े होकर आँखों की सीध में किसी बिन्दु पर दृष्टि को स्थिर करे हैं, दाहिने पैर को मोड़कर उसके पंजे को अर्ध पद्मासन की स्थिति में बायीं जाँघ पर रख लेना है और एक वृक्ष की भाँति स्थिर अवस्था में खड़े होना है। हाथों को प्रणाम की मुद्रा में छाती से लगा लेना है और दायें घुटने को मोड़ते हुए, शारीरिक सन्तुलन बनायें रखते हुए धीरे–धीरे नीचे आना है। दाहिने पैर के घुटने को जमीन पर रखना है। इस

अन्तिम स्थिति में कुछ देर रूकना है। फिर धीरे–धीरे शरीर को ऊपर उठाते हुएह दायें घुटने को सीधा कर प्रारम्भिक स्थिति में आ जाना है। बायें पैर को सीधा कर जमीन पर रख लेना है। यह है वातायनासन इसे महर्षि घेरण्ड ने वृक्षासन की संज्ञा दी है।

लाभः– इस आसन का अभ्यास अन्तुल की प्राप्ति के लिए, पैरों की मांसपेशियों और उदर क्षेत्र को मजबूत बनाने के लिए किया जाता है। यह वृक्क एवं मूत्राशय की अति क्रियाशीलता को कम करता है। यह ब्रह्मचर्य का पालन के लिए वीर्य रक्षा की क्षमता विकसित करता है।

गरूड़ासन

नामाकरणः– दोनों जाँघों और घुटनों से धरती को दबायें और देह को स्थिर रखें तथा दोनों घुटनों पर दोनों हाथ रखकर बैठ जायें। यह गरूड़ासन कहलाता है।

विधिः– जमीन पर बैठकर पैरों को सामने जितना फैला सकते है, उतना फैला लेना है। जाँघों को हाथों से जमीन पर दबाना है। मेरूदण्ड को सीधा रखना है। और शरीर के भार को एड़ियों और नितम्बों से ऊपर करना है। ताकि पूरा भार जाँघों पर आ जाए। इस अभ्यास में मेरूदण्ड को जितना ऊपर उठाने का प्रयास करेंगे, उतना कम भार नीचे पैर में पड़ेगा और जितना कम भार नीचे पड़ेगा, उतने ही बल से शरीर का गुरूत्व केन्द्र जाँघों में आ जाएगा। फिर धीरे–धीरे ऊपर उठ सकते हैं।

लाभः– गरूड़ासन हाथों एवं पैरों की मांसपेशियों को शक्तिप्रदान करता है।स्नायुओं को स्वस्थ तथा जोड़ों को ढीला बनाता है। यह साइटिका, आमवात तथा हाइड्रोसिल से उपचार में सहायक होता है।यह अभ्यास कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने में सहायक होता है।

शलभासन

विधिः– पैरों को सटाकर रखते हुए पेट के बल लेटते हैं, तलवें ऊपर की ओर रहे। प्रारम्भिक अवस्था में हाथों को जाँघों को जाँघों के नीचे भी रखा जा सकता है। जब हम हाथों को जाँघों के नीचे के नीचे रखते हैं, तब पैरों को उठाने के लिये हाथों की सहारा ले सकते हैं, लेकिन धीरे–धीरे जग अभ्यास पक्का हो जायें, तब हाथों को जाँघों के नीचे से निकाल कर बगल में रख देते हैं। हथेलियाँ नीचे की ओर रहती है। ठुड्डी को थोड़ा सामने की ओर ले जाकर जमीन पर रखते हैं। पूरे अभ्यास के दौरान जमीन पर ही रखते हैं। आँखों को बन्द कर पूरे शरीर को शिथि बनाते हैं। यह आरम्भिक स्थिति है। पैरों को सटाकर रखते हुए धीरे–धीरे जितना संभव हो उतना ऊपर उठाते हैं। पैरों को ऊपर उठाने के लिए हाथों से जमीन पर दबाव डालते हैं और कमर के पीछे के भाग की मांसपेशियाँ को संकुचित करते है। बिना तनाव के जब तक आराम से अन्तिम में रह सकते हैं तब तक रहते हैं। फिर पैरों को धीरे–धीरे जमीन पर ले जाते हैं। यह एक आवृति हुई। प्रारम्भिक स्थिति में वापस आकर सिर को एक ओर मोड़ते हुए, श्वास एवं हृदय गति के सामान्य होन तक विश्राम करते हैं। श्वास–प्रारम्भिक स्थिति में गहरी श्वास लेते हैं। पैरों को ऊपर उठाते समय तथा अन्तिम स्थिति में श्वास रोकें रहें। पैरों को नीचे लाते हुए श्वास छोड़े।

आरम्भिक अभ्यासियों को पैरों को ऊपर उठाते समय श्वास लेने में अभ्यास में सुविधा होती है। उच्च अभ्यासी आरम्भिक स्थिति में लौटने के पश्चात् रेचक करें।

सावधानियाँः—

(1) शलभासन से लिए बहुत अधिक शारीरिक प्रयास की आवश्यकता होती है। अतः जिन लोगों की हृदय कमजोर हैं, हृदय धमनी घनास्त्रता या उच्च रक्तचाप हो, उन्हें यह अभ्यास नहीं करना चाहिये।

(2) पेस्टिक, अलसर, हार्निया, आँतों के यक्ष्मा तथा इस प्रकार के अन्य रोगों से पीड़ित व्यक्तियों को यह अभ्यास नहीं करनें का सुझाव दिया जाता है।

लाभः—

(1) परानुकम्पी तन्त्रिकाओं का प्रधान्य विशेष रूप से गर्दन, एवं श्रोणि प्रदेश में होता है।य

(2) शलभासन पूरे स्वेच्छिक तन्त्रिका तंत्र को विशेष परानुकम्पी निःस्त्राव को उद्दीप्त करता है।

(3) यह पीठ के नीचले भाग एवं श्रोणि प्रदेश के अंगों को पुष्ट बनाता है।

(4) यह यकृत तथा आमाशय के अन्य अंगों की क्रियाशीलता को समन्जित एवं सन्तुलित करता है।

(5) पेट एवं आँतों के रोगों को दूर कर क्षुधा बढ़ाता है।

भुजंगासन

नामाकरणः— इस आसन में शरीर का आकार भुजंग अर्थात् सर्प के समान होता है।

विधिः— इसको करने के लिए सर्वप्रथम पेट के बल जाते हैं, हाथों को कोहनी से मोड़कर सीने के पास रखते हैं, पीछे से पैर मिल रहते है।अब हाथों का सहारा लेकर शरीर को चेहरे से घीरे—धीरे ऊपर उठाते है। भाभि तक शरीर को ऊपर उठाते है। फिर कुछ समय तक इसी स्थिति में रूकते है। और धीरे —धीरे वापस आते है। भुजाओं पर सारा जो पड़ता है इसलिए इसे भुजंगासन कहते है।

लाभः— इसका प्रभाव शरीर की मांसपेशियों में गहराई से होता है। डिंब ग्रन्थि रीढ़ गर्भाशय को स्वस्थ बनाता है। दमा, मंदाग्नि तथा वायु दोषों पर इसका विशेष प्रभाव है तथा इससे रीढ़ की हड्डी लचीली बनी रहती है।भूख बढ़ाता है तथा कब्ज को दूर करता है।स्त्री रोगों में विशेष लाभकारी होता है।तंत्रिका तंत्र को सुदृढ़ करता है।?

सावधानियाँ— झटका देकर शरीर न उठाएं तथा नीचे के हिस्से को ऊपर न उठाएं। पेस्टिक, अलसर,हार्निया, आँतों के यक्ष्मा या थाइराइड से ग्रस्त व्यक्तियों की यह विशेष निर्देशन में ही करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न — सत्य/असत्य

1. गोरक्षासन का नामकरण हठयोगी गोरक्षनाथ के आधार पर किया गया है।
2. पश्चिमोतानासन से जठराग्नि प्रदीप्त होती है।
3. अल्सर होने पर पश्चिमोतानासन करना चाहियें।

4. संकटासन मूलाधार चक्र को जागृत करता है।
5. मन को अन्तर्मुखी बनाने में कूर्मासन का अभ्यास अतयन्त उपयोगी है।

18.4 –सारांश

प्रिय विद्यार्थियो अब जान गये होंगे की घेरण्ड संहिता में कितने प्रकार के आसनों का वर्णन किया गया है। कुछ आसन बैठ कर किये जाने वाले हैं तो कुछ पेट या पीठ के बल लेटकर और कुछ खड़े होकर। शरीर की समस्त मॉस पेश्यिों के लचीलेपन के लिये सभी प्रकार के आसन अत्यन्त उपयोगी है। जैसे–जैसे इन आसनों का अभ्यास बढ़ता जाता है। वैसे–वैसे शरीर में स्थिरता आने लगती है। तथा साथ ही मन भी संतुलित एवं एकाग्रत होने लगता है।

18.5 – शब्दावली

कूर्म – कछुआ

कुटकुट – मुर्गा

मयूर – मोर

मण्डूक – मेंढ़क

18.6 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. सत्य

18.7– संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. निरंजनानंद सरस्वती, घेरण्ड संहिता, मुंगेर बिहार।

2. स्वामी विद्यानानंद सरस्वती। (2007) योग विज्ञान, योग निकेतन ट्रस्ट, ऋषिकेश गढ़वाल।

18.8 – निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न 1. मयूरासन एवं पश्चिमोतानासन की विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिये।

प्रश्न 2. कुर्मासन एवं मण्डूकासन की विधि, उपयोगिता एवं सावधानियों पर प्रकाश डालिये।

इकाई–19 घेरण्ड संहिता में वर्णित विभिन्न प्राणायामों की विधि लाभ एवं सावधानियॉ

इकाई की संरचना

19.1 प्रस्तावना

19.2 उद्देश्य

19.3 घेरण्ड संहिता में वर्णित विभिन्न प्राणयामों की विधि, लाभ एवं सावधानियॉ

19.4 सारांश

19.5 शब्दावली

19.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

19.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

19.8 निबंधात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियो, इसमें पूर्व की ईकाईयों में आपने हठयोग के द्वितीय अंग आसन का घेरण्ड संहिता के अनुसार विस्तृत अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में हम ''प्राणायाम'' के बारे विवेचन करेगें। पाठको आपके मन में यह प्रश्न उठ रहा होगा कि यह प्राणायाम वास्तव में क्या है साधना की दृष्टि से इसका क्या महत्व है प्राणायाम करते समय किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए इत्यादि। वस्तुतः प्राणायाम, व्रह्माण्डीय प्राण उर्जा के साथ अपना सम्पर्क स्थापित करने की एक अत्यन्त वैज्ञानिक तकनीक है। अलग– अलग ग्रन्थो में प्राणायाम के अनेक प्रकारों तथा घेरण्ड संहिता के अनुसार प्राणायाम का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत इकाई में किया जा रहा है। दो जिज्ञासु विद्यार्थियों आइये विस्तार पूर्वक चर्चा करते हैं प्राणायाम तथा इसके भेद लाभ एवं सावधानियों के बारे में।

19.2 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप

–प्राणायाम के कार्य को स्पष्ट कर सकेगें।

–घेरण्ड संहिता के अनुसार प्राणायाम के विभिन्न भेदों का विश्लेषण कर सकेगें।

–प्राणायाम के महत्व को स्पष्ट कर सकेगें।

–प्राणायाम करते समय रखी जाने वाली सावधनियों को स्पष्ट कर सकेगें।

19.3 घेरण्ड संहिता में वर्णित प्राणायामों की विधि, लाभ एवं सावधानियॉ

1. **सहित प्राणायाम–** सहित प्राणायाम दो प्रकार के होते है– सगर्भ और निगर्भ। सगर्भ में बीच मन्त्र का प्रयोग किया जाता है। और निगर्भ का अभ्यास बीज मऩ्त्र रहित होता है।

सगर्भ प्राणायामः–

पहले ब्रह्मा पर ध्यान लगाना है, उन पर सजगता को केन्द्रित करते समय उन्हें लाल रंग में देखना है यह कल्पना करनी है कि वे लाल है और रजस गुणों से परिपूर्ण है। उनका सांकेतिक वर्ण 'म' है फिर इड़ा नाड़ी अर्थात् बायीं नासिका से पूरक करते हुए वायु को अन्दर खींचना है और आकार की मात्रा को सोलह बार गिनना है पूरक के पश्चात् कुम्भक लगाना है और कुम्भक लगाकर उड्डियान बन्ध लगाना है अब यह बड़ा विचित्र लगता है, क्योकि पेट भरा है और उसके बाद पेट को अन्दर करना है यह सहन नहीं है।

सगर्भ प्राणायाम की यही विशेषता है, क्योकि सामान्य रूप से प्राणायाम की पहति में शिक्षा दी जाती है कि अगर व्यक्ति अन्तर्कुम्भक लगाता है, तो साथ में मूलबन्ध जाल–धल बन्ध का अभ्यास होना चाहिए यदि बहिर्कुम्भक का अभ्यास कर रहा है तो उड्डियान बन्ध लगाना चाहिए, क्योकि उस समय पेट खाली रहता है।

निगर्भ प्राणायामः–

इसके तीन विभाजन किए गए है– उत्तम मध्यम और अधम । इस प्राणायाम में बीज मन्त्र का सहारा नहीं लेना है और तत्व धरणा का अभ्यास भी नहीं करना है। केवल संख्या की गिनती करती है। पूरक कुम्भक और रेचक की कुल गिनती 112 तक की जा सकती है।

उत्तम निगर्भ प्राणायाम में 20 तक गिनती से पूरक आरम्भ होता है। अर्थात् 20 गिनने तक श्वास लेना। 80 गिनने तक रोकना 40 गिनने तक छोड़ना। मध्यम निगर्भ में 16 मात्रा का अभ्यास करना है अर्थात् पूरक कुम्भक रेचक में 16, 64, 32 का अनुपात रहे अधम निगर्भ में 12 तक गिनती से पूरक क्रिया की जाती है।

व्यावहारिक रूप से हम प्रथमा मध्यमा उत्तमा कह सकते है, क्योकि जो व्यक्ति 20 गिनने तक पूरक, 80 मात्रा तक कुम्भक 40 मात्रा तक रेचक करता है। उसके लिए स्यंम

पर, अपनी श्वास पर शारीरिक आन्तरिक बैचनी पर मानसिक उत्तेजना और मस्तिष्क की स्थिति पर बहुत संयम रखना आवश्यक हो जाता है।

उत्तम प्राणायाम की सिह होने पर भुमि व्याग होता है। मध्यम की सिहि की लक्षण है मेरूदण्ड में कम्पन अधम निगर्भ प्राणायाम से अगर शरीर से पसीना निकलने लगे तो यह मान लेना चाहिए कि इसकी भी सिहि हो गई प्राणों के क्षेत्र में स्पन्दन या जाग्रति प्रारम्भ हो रही है।

2.**सूर्यभेदन प्राणायाम–**

विधिः– ध्यान के किसी सुविधाजनक आसन में बैठते है सिर एवं मेरूदण्ड को सीधा रखें हाथों को घुटनों के ऊपर चित्र या ज्ञान मुद्रा में रखें आँखों को बन्द कर पूरे शरीर को शिथिल बनाए। जब शरीर शान्त, शिथिल एवं आरामदायक स्थिति में हो तो श्वास के प्रति तब तक संयम बने रहे जब एक यह धीमी गहरी न हो जाए। फिर दाहिने हाथ की तर्जनी मध्यमा को भ्रूमध्य पर रखें। दोनों उंगुलियाँ तनावरहित रहें अंगूठें को दायीं नासिकाके ऊपर तथा अनामिका को बायीं नासिका के ऊपर रखें इन उंगुलियों द्वारा क्रम से नासिका छिद्रा को बन्द कर श्वास के प्रवाह को नियन्त्रित किया जाता है।

पहली और दूसरी उंगुली हमेशा भ्रूमध्य में रहेगी । अनामिका से बायीं नासिका को बन्द कर दाहिनी नासिका से श्वास अन्दर खीचते है, गिनती के साथ ताकि श्वास पर नियन्त्रण रहे। पूरक की समाप्ति पर दोनों नासिकाओं को बन्द कर लेते है। कुम्भक करते हुए जलन्धर मूलबन्ध लगाते है पहली बार अभ्यास करते हुए कुछ ही क्षण रहे। फिर मूलबन्ध छोड़कर जालन्धर बन्ध को छोड़े। पूरक, कुम्भक रेचक का अनुपात 1:4:2 होता है। प्रारम्भ में 1:3:3 भी हो सकता है। फिर जालन्धर मूलबन्ध का अभ्यास करते है। चार के अनुपात में कुम्भक के पश्चात् पहले मूलबन्ध छोड़ते है, फिर जालन्धर बन्ध । सिर को सीधा करते है। दाहिनी नासिका से ही श्वास बाहर करते है। यह एक आवृति है। प्रारम्भ में इसकी 10 आवृतियाँ प्रर्याप्त है किन्तु धीरे–धीरे इस अवधि को 10,15 मिनट तक बढ़ाया जा सकता है।

सावधानियाँः– भोजन के पश्चात् कदापि न करें। इसका अभ्यास अधिक देर तक करने पर यह श्वसन चक्र में असन्तुलन उत्पन्न कर सकता है। ह्मदय रोग, उच्च रक्तचाप, मिर्गी से ग्रस्त व्यक्तियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभः– कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करता है। शरीर की अग्नि, ताप को उत्तेजित करता है। अन्तमुखी को बहिर्मुखी बनाने में उपयोगी है। वात–दोष का निवारण करता है। निम्न रक्तचाप, बाँझपन कृमि के उचार में भी सहायक है।

3.उज्जायी प्राणायाम

विधिः– दोनों नासिकाओं से पूरक करते हुए श्वास को अन्दर खींचना है और वायु को मुँह में ही रखनाहै। इसके बाद कण्ठ को सकांचित कर सूक्ष्म ध्वनि उत्पन्न करते हुए ह्मदय गले से वायु को खींचना है। इस वायु का योग पूरक के द्वारा खींची गई वायु से करना है। इस

प्रकार पूर्ण उज्जायी श्वास लेकर फिर अतेरंग कुम्भक जालन्धर बन्ध का अभ्यास करना है। इसके पश्चात् उसी मार्ग में वैसी ही ध्वनि करते हुए रेचक के द्वारा धीरे–धीरे श्वास को बाहर निकाल दिया जाता है।

सावधानियाँः–

अन्तर्मुखी व्यक्ति इसका अभ्यास न करें। ह्रदय रोग से पीड़ित व्यक्तियों को उज्जायी के साथ बन्धो कुम्भक का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभः– अनिद्रा में लाभकारी अभ्यास है। उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों के लिए भी सहायक होता है। इसका अभ्यास निरन्तर करने से कफ, कब्ज, आंव, आंत, का फोड़ा, जुकान, बुखार यकृत आदि के रोग नहीं होते। प्रत्याहार के अभ्यास में उच्चायी विशेष लाभप्रद है।

4. शीतली प्राणायाम

विधिः– जीभ को बाहर निकाल कर उसे एक नली के सहश बनाना उस नली के माध्यम से गहरी श्वास खींचकर उदर को वायु से भर देना है तथ छुछ क्षणों के लिए की कुम्भक का अभ्यास करना है।पूरक रेचक के बीच क्षणमात्र का अन्तराल होना चाहिए। तो क्षण भर कुम्भ्क के दौरान जीभ को अन्दर खींचा जाता है। मुँह को बन्द किया जाता है। फिर नासिका से श्वास बाहर निकाली जाती है यह एक आवृति हुई।

लाभः– इस अभ्यास से अजीर्ण कफ, पित्त की बीमारी नहीं होती है।यह मानसिक भवनात्मक उत्तेजनाओं को शान्त करता है।निद्रा के पूर्व प्रशान्तक के रूप में किया जा सकता है। भूख–व्यास पर नियन्त्रण होता है तुष्टि की भावना उत्पन्न होती है। रक्तचाप पेट की अम्लीयता को कम करने में सहायक।

5.भस्त्रिका प्राणायाम

विधिः– इस प्राणयाम में लोहार की धौकनी की भांति समान अन्तर से नासिका द्वारा बार–बार पूरक एवं रेचक की क्रिया की जाती है। नासिका से लययुक्त श्वास लेने छोड़ने की क्रिया जल्दी–जल्दी की जाती है। यहाँ एक नासिका से अभ्यास करने का निर्देश नहीं दिया गया है, लेकिन व्यावहारिक रूप से यही सिखलाया जाता है कि एक नासिका से 20 बार जल्दी–जल्दी श्वास को लेना छोड़ना है इसके पश्चात् 21 श्वास खींचकर कुम्भाक लगाना है। तत्पश्चात् जितनी देर तक कुम्भक लगा सकते है लगाइये। अन्य ग्रन्थों में इसके साथ जालन्धर मुवबन्ध का भी प्रयोग बतलाया जाता है। फिर जब श्वास को अन्दर नहीं रोक सकते तब उसी नासिका से श्वास को धीरे–धीरे बाहर किया जाता है। इसके बाद दूसरी नासिका से जल्दी–जल्दी लययुक्त श्वास लेनी छोड़नी है। इस नासिका से भी उक्त विधि को दुहराना है। फिर दोनों नासिकाओं से एक साथ इस अभ्यास को दुहराना है।

सावधानियाँः– उच्च रक्तचाप ह्रदय रोग, हार्निया, गेहिट्रक, अलसर, मिर्गो या भूमि से पीड़ित व्यक्तियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए। गरमी के दिनों में इसका अभ्यास कम करना चाहिए। क्योकि इस प्राणायाम से शरीर के तापमान में वृद्धि होती है।यदि भ्रस्त्रिका का अधिक अभ्यास करेंगें तो रक्त की गन्दगी तीव्र गति से बाहर आयेगी ओर शरीर में कोड़े कुन्सी घाव चर्म रोग इत्यादि को निकायत होने लगेगी। अतः धैर्यपूर्वक अभ्यास में आगे बढ़े। अशुद्धियों का निष्कासन धीरे–धीरे होने दें जिससें किसी बीमारी से ग्रस्त होने की ज्यादा सम्भावना न रहे।

लाभः– यह वात, पित्त, कफ का निवारण होता है।फेफड़ों के वायुकोशों को खोलता है।चपापचय की गति बढ़ जाती है।मल और विषाक्त तत्वों का निष्कासन होता है।पाचन संस्थान को स्वस्थ बनाती है।

प्राणिक शरीर को सामर्थ्यशाली बनाता है।यह प्राणायाम शरीर को नाड़ी संस्थान को पूर्ण प्रशिक्षण देने का उत्तम अभ्यास है।यह गले की सूजन जमा कफ को दूर करता है। तन्त्रिका तन्त्र को सन्तुलित शक्तिशाली बनाता है।

6.भ्रामरी प्राणायाम

प्रारम्भिक अवस्थाः–

ध्यान के किसी सुविधाजनक आसन में बैठते है। मेरूदण्ड एवं सिर को सीधा रखते है। दोनों हाथ चिन या ज्ञानमुद्रा में घुटनों के ऊपर रखतें है। इस अभ्यास के आदर्श आसन पद्यासन या सिंहासन है। जिसकी विधि इस प्रकार है– कम्बल को बेलनाकार मोड़कर उसके ऊपर इस प्रकार बैठते है कि एड़ियाँ नितम्बों के पास रहें, तलवे जमीन पर घुटने ऊपर उठे रहते है केहुनियों को घुटने के ऊपर रखते है। आँखों को बन्द कर पूरे शरीर को शिथिल बनाते है। पूरे अभ्यास के समय दांतो को परस्पर अलग रखते तथा मुँह को बन्द रखते है इससे कम्पन को स्पष्ट सुना जा सकेगा तथा उसको मस्तिष्क में अनुभव भी किया जा सकेगा जबड़ो को ढीला रखें। हाथों को बगल में कन्धों के समानान्तर फैलाते है। फिर केहुनियों से मोड़कर होथों को कानों के पास लाते हुए तर्जनी या मध्यमा उँगनियों सें कानो को बन्द करते है। यदि नादानुसंधान के आसन में बैठतें है तो कानो को उंगूठों से बन्द कर शेष चार अँगुनियों को सिर के ऊपर रखें ताकि बाहर की आवाजें प्रवेश न करें। इसके बाद अपनी सजगता को मस्तिष्क के केन्द्र पर एकाग्र करें, जहाँ आज्ञा चक्र स्थित है। सम्पूर्ण शरीर को पूर्णतया स्थिर रखें। नासिका से पूरक कर रेचक के समय भ्रमर के गुंजन के समान आवाज करें। गूंजन की ध्वनि पूरे रेचक में स्थिर, गहरी सम अखण्ड होनी चाहिए। रेचक पूर्ण रूप से नियन्त्रित हो तथा उसकी गति मन्द हो। यह एक आवृति हुई। रेचक पूर्ण होने पर गहरी श्वाास लें और अभ्यास की पुनरावृत्ति करें।

दूसरी अवस्थाः– इस अभ्यास की अगली अवस्था में कानों को बन्द रखते हुए चुपचाप सामान्य श्वास लेते बैठे रहते है धीरे–धीरे अपनी सजगता को अन्तर्मुखी एवं सूक्ष्म बनाते हुए भीतर में उत्पन्न ध्वनियों को सुनने का प्रयास करते है। आरम्भ में श्वास की आवाज सुनाई पड़ती है। जैसे ही एक ध्वनि के प्रति सजग होते है, वैसे ही अन्य ध्वनियो को छोड़कर केवल उस ध्वनि के प्रति सजग रहने का प्रयत्न करते है। कुछ दिनों या सप्ताहों

के नियमित अभ्यास से आपको ऐसा प्रतीत होगा कि वह ध्वनि अधिक स्पष्ट तीव्र होती जा रही। पूर्ण सजगता से उस ध्वनि से सुनते जाए। केवल उस ध्वनि की ओर अपनी सजगता को प्रवाहित होने दे तथा अन्य सभी ध्वनियों एवं विचारों को भूल जायें।

सावधानियाँः– भ्रामरी का अभ्यास लेटकर नहीं करना चाहिए। कानों में संक्रमण होने पर इसका उपयोग न करें। ह्रदय रोग से पीड़ित व्यक्तियों को बिना कुम्भक इसका अभ्यास करना चाहिए।

लाभः– भ्रामरी क्रोध, चिन्ता, अनिद्रा का निवारण कर तथा रक्त चाप को घटाकर प्रमस्तिष्कीय तनाव परेशानी को दूर करता है। गले के रोगों का निवारण करता है। यह आवाज को सुधारता, मजबूत बनाता है।यह शरीर के ऊतकों के स्वस्थ होने की गति को बढ़ाता है।

7. मूर्च्छा प्राणायाम– मूर्च्छा प्राणायाम का अभ्यास किसी भी आरामदायक आसन में कर सकते है। इसके सिर सबसे उत्तम है। पद्मासन सिंहासन, सिंहयोनि आसन स्वास्तिकासन, वज्रसान या सुखासन में भी बैठ सकते है। सिर मेरूदण्ड की एकदम सीधा रखते हैं। सम्पूर्ण शरीर को शिथिल बनाते हैं आँखों बन्द कर श्वास अन्दर खीचते हैं फिर धीरे–धीरे सिर को ऊपर उठाया जाता है। एकदम छत की तरफ नहीं वस 45 अंश का कोण बनाते हुए सिर को उठाते हुए आँखों को धीरे–धीरे खोलते है 45 अंश के कोण तक सिर के पहुँचते–पहुँचते आँखें पूरी खुल जाती है और शाम्भवी दृष्टि का अभ्यास होता है। शाम्भवी दृष्टि में कुम्भक लगाया जाता है।

हाथो से घुटनों पर दबाव डालते हुए केहुनियों को सीधा रखते है। जब तक कुम्भक लगा सकते है तब तक शाम्भवी दृष्टि का अभ्यास करते जाइए। जब देर तक कुम्भक न लगा सकते हो तब धीरे धीरे श्वास छोड़ते हुए सिर को नीचे लाइये आँखों को सामने लाकर उन्हें बन्द कर लीजिये। भुजाओं को शिथिल कीजिए सामान्य श्वास लेते हुए सम्पूर्ण मन में प्रकाश शान्ति फैलाने का अनुभव करें। खोपड़ी में जो हलकेपन का अनुभव हो रहा है उसे देखते रहिए यह मूर्च्छा प्राणायाम है।

सावधानियाँः– उच्च रक्तचाप सिर में चक्कर आना या मस्तिष्क में चोट लगना ह्रदय या फेफड़े के रोगों से पीड़ित व्यक्तियों को नहीं करना चाहिए।

लाभः– शरीर मस्तिष्क को विश्राम मिलता है। व्यक्ति का बहिर्मुखी मन स्वतः अन्तर्मुखी होने लगता है।

8. केवली प्राणायाम

विधिः–यह वास्तव में अजपाजप है। इसमें शरीर के तीन मुख्य केन्द्रों में श्वास की कल्पना की जाती है। जब से ऊपर चढ़ रही है अनाहत चक्र को पार करके नासिकाग्र तक पहुँच रही है। जब श्वास छोड़ते है तब अनुभव करना है कि श्वास की चेतना नासिका के अग्रभाग से नीचे मूलाधार की ओर जा रही है क्रमशः जैसे–जैसे इन श्वास केन्द्रों से गुजरती है, इस पर ध्यान को केन्द्रित करना है।

अभ्यास प्रश्न –

सत्य/असत्य

1. केवली प्राणायाम का विवेचन ह0 प्रदीपका में किया गया है।
2.प्लावनी प्राणायाम का वर्णन होरण्ड संहिता में किया गया है।
3.अन्तर्मुखी ब्यक्तियों को उज्जायी प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए
4.सूर्य भेदी प्राणायाम पिंगला नाड़ी को जागृत करता है।

19.4–सारांश–

प्रिय पाठको उपरोक्त वर्णन से आप जान गये होगें की व्यवहारिक एवं साधनात्मक दोनों दृष्टिकोणों से प्राणायाम का अभ्यास कितना लाभकारी है। वस्तुतः प्राणयाम के नियमित अभ्यास से मानसिक स्थिरता आने लगती है क्योकि प्राण के चंचल होने पर ही मन चंचल होता है तथा प्राण के नियमित होने पर मन स्वतः ही नियंत्रित होने लगता है। घेरण्ड संहिता में सगर्भ, निगर्भ, सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली भ्रामरी, मस्त्रिका इत्यादि विभिन्न प्राणायामो का वर्णन किया गया है।

प्राणायाम का अभ्यास करते समय व्यक्ति को अपने आहार,शारीरिक स्थिति, समय, मौसम इत्यादि सभी का ध्यान रखते हुये समय परिस्थिति एंव अपने शारीरिक बल के अनुसार उपयुक्त प्राणायाम का चयन करना चाहिये।

19.5 शब्दावली

सूर्य भेदी– पिंगला या सूर्य नाडी का भेदन करने वाला।
भ्रामरी– जिसमें भ्रमर की गुंजन जैसी आवाज होती है।
शीतली– शीतलता प्रदान करने वाला।
टायाम– विस्तार करना, फैलाना

19.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दिगम्बर स्वामी (2001) स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम, श्रीमन्माधव, योग मन्दिर समिति, लोनावाला।
2. निरंजनानन्द स्वामी (2003) महर्षि घेरण्ड कृत घेरण्ड संहिता योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार।
3. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द – आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध (2003) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार।

19.7 निबंधात्मक प्रश्न–

प्रश्न– भ्रामरी एंव उज्जायी प्राणायाम का विस्तृत विवेचन कीजिए।
प्रष्न– सगर्भ, निगर्भ एंव केवली प्राणायाम का विवेचन कीजिए।

इकाई–20 घेरण्ड संहिता में वर्णित मुद्राओं की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

इकाई की संरचना

20.1 प्रस्तावना
20.2 उद्देश्य
20.3 घेरण्ड संहिता में वर्णित मुद्राएँ
20.3.1महामुद्रा
20.3.2 नभो मुद्रा
20.3.3 खेचरी मुद्रा विधि
20.3.4 महाबेध मुद्रा
20.3.5 विपरीत करणी मुद्रा
20.3.6 योनि मुद्रा
20.3.7 वज्रोणि मुद्रा
20.3.8 शक्तिचालिनी मुद्रा
20.3.9 तडागी मुद्रा
20.3.10 माण्डूकी मुद्रा
20.3.11 शाम्भवी मुद्रा
20.3.12 अश्विनी मुद्रा
20.3.13 पाशिनी मुद्रा
20.3.14 काकी मुद्रा
20.3.15 मातंगिनी मुद्रा
20.3.16 भुजंगिनी मुद्रा
20.3.17 मूलबन्ध
20.3.18 जालन्धर बंध मुद्रा
20.3.19 उड्डियान बंध मुद्रा
20.3.20 महा बंध मुद्रा
20.3.21पार्थिवी धारणा मुद्रा
20.3.22आम्भसी धारणा मुद्रा
20.3.23आग्नेयी मुद्रा
20.3.24 वायवीय धारणा मुद्रा
20.3.25 आकाशीय धारणा मुद्रा
20.4 सारांश
20.5 शब्दावली
20.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
20.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
20.9 निबंधात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

घेरण्ड संहिता के तीसरे अध्याय में मुद्राओं का वर्णन किया गया है। घेरण्ड संहिता में 25 मुद्राओं का वर्णन मिलता है जिनमें 16 मुद्राएँ, 4 बन्ध तथा 5 धारणाएँ है। प्रस्तुत इकाई में हम मुद्राओं, बन्धों तथा धारणाओं की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करेंगे। महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि मुद्रा बहुमूल्य साधन है जो ब्रह्मद्वार अर्थात् मूलस्थान पर सोती हुई कुण्डलिनी शक्ति का जागरण करके साधक को लक्ष्य तक पहुँचाती है परन्तु मुद्राओं को सोने की पिटारी की तरह गुप्त रखना चाहिए। अतः स्पष्ट होता है कि बन्ध व मुद्राएं हमें बाह्य या भौतिक जगत् से हटाकर अर्न्तजगत् में ले जाती है तथा लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है प्रस्तुत इकाई में आप मुद्राओं, बन्धों तथा धारणों की विधियों का अध्ययन करेंगे।

20.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई से आप–

- मुद्राओं की विधि तथा लाभ का अध्ययन करेंगे।
- मुद्रा व बन्धों की सावधानियों का अध्ययन करेंगे।
- मुद्रा व बन्धों के उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
- घेरण्ड संहित में वर्णित विविध मुद्रा व बन्धों का विश्लेषण कर सकेंगे।

20.3 घेरण्ड संहिता में वर्णित मुद्राएँ

घेरण्ड संहिता में 25 मुद्राओं का वर्णन मिलता है। जिनमें 16 मुद्राएँ, 4 बंध तथा 5 धारणाएँ है। घेरण्ड संहिता के तीसरे अध्याय में मुद्राओं का वर्णन किया गया है। मुद्रा का अभ्यास मानसिक स्थिरता प्रदान करता है। योग में मुद्राओं एवं बन्धों का स्थान आसन और प्राणायाम से भी बढ़कर बताया गया है क्योंकि मुद्रा का अभ्यास हमारे प्राणमय कोश और मनोमय कोश को प्रभावित करता है।

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम्।
मूलबन्धो महाबन्धो महाबेधश्च खेचरी।।
विपरीतकरी योनिर्वज्रोणि शक्तिचालनी।
ताडागी माण्डुकी मुद्रा शाम्भवी पंचधारणा।।
अश्विनी पाशिनी काकी मातंगी च भुजंगिनी।
पंचविंशतिमुद्राश्च सिद्धिया इह योगिनाम्।। घे०सं० 3/1 2 3

अर्थात् घेरण्ड मुनि कहते हैं– महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्यािन बंध, जालन्धर बंध, मूलबंध, महाबन्ध, महाबेध मुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, योनि मुद्रा, वज्रोणि मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, तडागी मुद्रा, माण्डुकी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, पार्थिवी धारणा, आम्भसी धारणा, आग्नेयी धारणा, वायवीय धारणा, आकाशी धारणा, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी

और भुजंगिनी इत्यादि 25 मुद्राएँ हैं। इनका अभ्यास करने से योगी को कई प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती है।

20.3.1 महामुद्रा

घेरण्ड मुनि ने महामुद्रा का वर्णन इस प्रकार किया है–

विधि–

पायुमूलं वामगुल्फे संपीड्य दृढ़यत्नतः।
याम्यपादं प्रासार्याथ करोपात्तपदाङगुलिः।।
कण्ठ संकोचनं कृत्वा भ्रुवोर्मध्यं निरीक्षयेत।
पूरकैर्वायुं सम्पूर्य महामुद्रा निगद्यते।। घे०सं० 3/29 30

बाँयी एडी से गुदा प्रदेश को दबाये तथा दाहिने पैर को सीधा रखे। गहरी श्वास ले तथा श्वास छोड़ते हुए आगे झुक कर दाहिने पैर के पंजे को दोनों हाथों से पकड़ ले। कण्ठ को संकुचित कर जालन्धर बंध लगाए तथा दोनों आँखों को भूमध्य (शाम्भवी मुद्रा) में केन्द्रित करें। पूरक की गई वायु को यथा सम्भव रोके (अन्तर्कुम्भक)। यह महामुद्रा कहलाती है।

लाभ– वलितं पलितं चैव जरा मृत्युं निवारयेत्।
क्षयकासं उदावर्तप्लीहाजीर्णज्वरं तथा।
नाशयेतत्सर्वरोगांश्च महामुद्राप्रसाधनात्।। घे०सं० 3/31

यह मुद्रा चित्त की चंचलता को समाप्त करती है, मन की एकाग्रता को बढ़ाती है। इस मुद्रा के अभ्यास से बुढ़ापे पर विजय प्राप्त होती है तथा मृत्यु का नाश होता है। चिकित्सा की दृष्टि से देखे तो कहा गया है कि यह मुद्रा यक्ष्मा, कफ तथा श्वास सम्बन्धित रोगों को ठीक करती हैं। साथ ही साथ प्लीहा के रोग, पाचन सम्बन्धी रोग तथा तन्त्रिका तंत्र में संतुलन की प्राप्ति होती है।

सावधानियाँ– मुद्रा हठयोग का उच्च अभ्यास है, इसलिए बिना शरीर शुद्धि के पूर्व इस मुद्रा का अभ्यास नहीं करना चाहिए। उच्च रक्तचाप से पीड़ित रोगियों तथा हृदय रोगियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए। इस मुद्रा के अभ्यास को गर्मीयों में नहीं करना चाहिए क्योंकि इसका अभ्यास शरीर के ताप में वृद्धि करता है।

20.3.2 नभो मुद्रा–

विधि– यत्र यत्र स्थितो योगी सर्वकार्येषु सर्वदा।
उर्ध्वजिहः स्थिरो भूत्वा धारयेत्पवनं सदा।
नभो मुद्रा भवेदेषा योगिनां रोगनाशिनी।। घे०सं० 3/32

सभी कार्यों में लगे रहते हुए या कहीं भी स्थिर हुआ योगी इस मुद्रा में जीभ को उल्टा कर ऊपर तालु से सटा दे तथा कुम्भक लगाकर वायु को रोक दे यह नभो मुद्रा कहलाती है।

लाभ–

यह मुद्रा एक प्रकार से खेचरी का सरल अभ्यास है इसलिए इससे खेचरी मुद्रा के लाभ मिलते हैं। कहा गया है कि जो अभ्यासी इसका निरन्तर अभ्यास करते हैं उन्हें किसी भी प्रकार के रोग नहीं होते।

सावधानी–

उच्च रक्तचाप वाले व्यक्ति तथा हृदय रोग से पीड़ित रोगियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। जीभ को तालु से लगाते समय सावधानी रखे। बिना गुरू के इसका अभ्यास न करे।

20.3.3 खेचरी मुद्रा विधि

जिह्वाधो नाड़ी संछित्य रसनां चालयेत्सदा।
दोहयेत्रवनीतेन लौहयन्त्रेण कर्षयेत्।।
एवं नित्यं समभ्यासाल्लम्बिका दीर्घतां व्रजेत्।
यावद्गच्छेद्भ्रुवोर्मध्ये तदा सिध्यति खेचरी।।
रसना तालुमूले तु शनैः शनैः प्रवेशयेत्।
कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोर्मध्ये गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी।। घे०सं० 3/33 34 35

जिह्वा और जिह्वा मूल को मिलाने वाली नाड़ी का छेदन कर जिह्वा के आगे वाले भाग का निरन्तर चालन करें और मक्खन लगाकर निरन्तर दोहन करें साथ ही साथ लोहे की चिमटी से खीचें। इसका प्रतिदिन अभ्यास करने से जिह्वा बढ़ती है। जिह्वा को इस अभ्यास से इतना लम्बा कर लेना चाहिए कि वह भौहो के मध्य तक पहुँच सके। तत्पश्चात् जिह्वा को तालू मूल में धीरे–धीरे प्रविष्ट करें। जिह्वा को उलटकर कपालरन्ध्र में ले जाना चाहिए। दृष्टि को दोनों भौहों के मध्य भाग में रखे। यह खेचरी मुद्रा कहलाती है।

लाभ–

न च मूर्च्छा क्षुधा तृष्णा नैवालस्यं प्रजायते।
न च रोगो जरा मृत्युर्देवदेहः स जायते।।
नाग्निना दह्यते गात्रं न शोषयति मारूतः।
न देहं क्लेदयन्त्यापो दशेन्न भुजंगमः।।
लावण्यं च भवेद्गात्रे समाधिर्जायते ध्रुवम्।
कपालवक्त्रसंयोगे रसना रसमाप्नुयात्।।
नानारससमुद्भूतमानन्दं न दिने दिने।
आदौ च लवणं क्षारं च ततस्तिक्तकषायकम्।।
नवनीतं घृतं क्षीरं दधितक्रमधूनि च।
द्राक्षारसं च पीयूषं जायते रसनोदकम्।। घे०सं० 3/36 37 38 39 40

खेचरी सिद्ध होने पर साधक को मूर्च्छा, क्षुधा, तृष्णा, आलस्य आदि नहीं सताते। उसे रोग, जरा और मृत्यु का भय नहीं रहता। उसका शरीर आग में नहीं जलता और न ही पवन से सूखता है और न ही जल उसके शरीर को भिगो सकता है। उसके शरीर पर सर्प के विष का असर नहीं होता। साधक को निश्छल समाधि सिद्ध हो जाती है। तालू के ऊपर और कपाल कुहर में जो स्वाद ग्रन्थियाँ होती है साधक की उनके कई स्वादों का अनुभव होने लगता है तथा साथ ही साथ कई रस भी उत्पन्न होने लगते हैं। कई नवीन आनन्द की अनुभूति होती है। प्रारम्भ में लवण, क्षार, तिक्त और कषाय रस का अनुभव होता है तथा इसके बाद मक्खन, धृत, दूध, दधि, तक्र, मधु, द्राक्षा और अमृत आदि रसों का स्वाद उत्पन्न होता है।

सावधानी

खेचरी मुद्रा का अभ्यास उच्च तथा जटिल अभ्यास है जिह्वा को तालु को काटते समय सावधानी बरते तथा किसी योग्य गुरू के निर्देशन में ही इसका अभ्यास करे। जिह्वा व्रण तथा मुँह का अन्य किसी रोग में अभ्यास को न करे।

20.3.4 महाबेध मुद्रा

विधि– महाबेध की विशेषता बताते हुए घेरण्ड मुनि कहते हैं कि महाबेध के बिना मूलबंध तथा महाबंध दोनो ही निष्फल है, जिस प्रकार बिना पुरुष के स्त्री का रूप, यौवन और लावण्य व्यर्थ है।

महाबन्धंसमासाद्य कुम्भकं चरेदुड्डीन।
महाबेधः समाख्यातौ योगिनां सिद्धिदायकः।। घे०सं० 3/42

सर्वप्रथम महाबंध का अभ्यास करे तत्पश्चात् उड्डियान बंध कर वायु को कुम्भक द्वारा रोके। यही महाबेध मुद्रा है।

लाभ–

महाबन्धमूलबन्धौ महाबेधसमन्वितौ।
प्रत्यहं कुरुते यस्तु स योगी योगवित्तमः।। घे०सं० 3/43
न मृत्युतो भयं तस्य न जरा तस्य विद्यते।
गोपनीयः प्रयत्नेन वेधोऽयं योगिपुंगवैः।। घे०सं० 3/44

जो साधक प्रतिदिन महाबेध के साथ महाबंध, मूलबंध का अभ्यास करता है वह सभी योगियों में श्रेष्ठ माना जाता है। उसे वृद्धावस्था नहीं आती, उसे मृत्यु का भय नहीं सताता। साधको को इसका अभ्यास गोपनीय रखना चाहिए।

सावधानी–

इस अभ्यास में तीनों बंधो (मूलबंध, उड्डियानबंध, जालंधर बंध) में निपूणता होनी चाहिए। बिना गुरू के निर्देशन के इसका अभ्यास न करे।

20.3.5 विपरीत करणी मुद्रा

विधि–

घेरण्ड मुनि कहते हैं कि नाभिमूल में सूर्य तथा तालू मूल में चन्द्र स्थित है। चन्द्र द्वारा अमृत का स्त्राव होता है, सूर्य इस अमृत का पान करता है जिससे प्राणी की मृत्यु होती है किन्तु अगर चन्द्र नाडी के अमृतपान करने पर मृत्यु नहीं आती। इसलिए सूर्य को ऊपर और चन्द्र को नीचे कर ले। यही विपरीतयकरणी है–

भूमौ शिरश्च संस्थाप्य करयुग्मं समाहितः।
उर्ध्वपादः स्थिरो भूत्वा विपरीतकरी मता।। घे०सं० 3/47

सिर को भूमि पर रखे तथा दोनों हाथों से कमर को सहारा देकर दोनों पावों को ऊपर उठाएँ तत्पश्चात् कुम्भक द्वारा वायु को रोके, यही विपरीतकरणी मुद्रा है।

लाभ– मुद्रां च साधयेन्नित्यं जरा मृत्युं च नाशयेत्।
स सिद्धः सर्वलोकेषु प्रलयेऽपि न सीदति।। घे०सं० 3/48

इस मुद्रा का नित्यप्रति अभ्यास करने से वृद्धावस्था व मृत्यु नहीं आती। इसका अभ्यास करने वाला साधक सब लोकों में सिद्धि प्राप्त करता है तथा प्रलयकाल में भी दुखी नहीं होता है।

सावधानी–

शरीर के स्वस्थ होने पर ही इसका अभ्यास करना चाहिए। उच्च रक्तचाप, हृदय रोग से पीड़ित रोगियों को तथा थायराइड़ वृद्धि पर इसका अभ्यास न करे। मस्तिष्क चक्र के दौरान इसका अभ्यास वर्जित है। प्रारम्भ में इसका अभ्यास गुरू के निर्देशन में ही करे। मोटे व्यक्ति इसका अभ्यास दीवार या किसी अन्य सहारे से करे।

20.3.6 योनि मुद्रा

विधि–

सिद्धासनं समासाद्य कर्णचक्षुर्नसामुखम्।
अङ्गुष्ठतर्जनी मध्यानामाद्यैः पिद्धीत वै।।
प्राणमाकृष्य काकीभिरपाने योजयेत्ततः।
षट् चक्राणि क्रमाद्ध्यात्वा हुं हंसमनुना सुधीः।।
चैतन्यमानयेद्देवीं निद्रिया या भुजंगिनी।
जीवेन सहितां शक्ति समुत्थाप्य पराम्बुजे।।

शक्तिमयो स्वयं भूत्वा परं शिवेन संगमम्।
नानासुखं विहारं च चिन्तयेत्परमं सुखम्।।
शिवशक्तिसमायोगादेकान्तं भुविभावयेत्।
आनन्दमानसो स्वयं भूत्वा अहं ब्रह्मेति संभवेत्।। घे०सं० 3/49–53

सर्वप्रथम सिद्धासन में बैठकर दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों कानों को, दोनों तर्जनियों से आँखों को, मध्यमाओं से नासिका को तथा अनामिका से मुख को बन्द करें। काकी मुद्रा द्वारा प्राण खींचकर अपान में मिला दे। शरीर में स्थित छहः चक्रों पर ध्यान लगाते हुए "हूँ" अथवा "हंस" मन्त्र से कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर उसके साथ ही जीवात्मा को सहस्त्रार चक्र में ले जाए। इसी समय साधक को यह भावना करनी चाहिए कि "मैं शिव के साथ शक्ति सम्पन्न होकर सुखपूर्वक विहार कर रहा हूँ। शिव शक्ति के संगम से ही मैं आनन्दमय स्वयंभू व्रह्म हो गया हूँ।" यही योनिमुद्रा है।

लाभ–

ब्रह्महाभ्रूणहा चैव सुरापी गुरू तल्पगः।
एतैः पोपेर्न लिप्यते योनि मुद्रा निबन्धनात्।।
योनिमुद्रा परागोप्या देवानामपि दुर्लभा।
सकृत्तु लब्धसंसिद्धः समाधिस्थः स एव हि।।
यानि पापानि घोराणि उपपापानि यानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति योनिमुद्रा निबन्धनात्।
तस्मादभ्यासनं कुर्याद्यादि मुक्तिं समिच्छति।। घे०सं० 3/54 55 56

इस मुद्रा के नियमित अभ्यास से ब्रह्म हत्या, भ्रूण हत्या, सुरापान, गुरुतल्प गमन आदि महापापो से मुक्ति मिलती है। इसके और अधिक लाभों को बताते हुए कहते हैं कि यह मुद्रा परम गोपनीय है इसलिए देवताओं के लिए भी यह दुर्लभ है। इसका नियमित अभ्यास करने वाला साधक समाधि को प्राप्त कर लेता है। संसार के जितने भी पाप है इसके निरन्तर अभ्यास से दूर हो जाता है। जो साधक मोक्ष को प्राप्त करना चाहते है। उनको इस मुद्रा का अभ्यास नित्यप्रति करना चाहिए।

सावधानी–

जो व्यक्ति अन्तर्मुखी हो वो इसका अभ्यास न करे। गृहस्थ आश्रम में रहने वाले सिद्धासन में ज्यादा देर न बैठे। साइटिका से पीड़ित व्यक्ति इसका अभ्यास न करे। जिन व्यक्तियों के कान बहते हो, वो भी इसका अभ्यास न करे।

20.3.7 वज्रोणि मुद्रा–

विधि– धरामवष्टभ्य करयोस्तलाभ्यां उर्ध्वे क्षिपेत्पाद युगंशिरखे।
शक्ति प्रबोधाय चिरजीवनाय वज्रोणिमुद्रा मुनयोः वदन्ति।।
घे०सं० 3/57

दोनों हथेलियों को भूमि पर रखे तथा दोनों पैरों को एवं सिर को आकाश की तरफ उठा ले। यह मुद्रा, ब्रह्मचर्य आसन की स्थिति जैसी है। योगियों ने इस मुद्रा को शक्ति संचार तथा जीवन प्राप्त कराने वाली कहा है। यही वज्रोणि मुद्रा है।

लाभ–

अयं योगे योग श्रेष्ठो योगिनां मुक्तिकारणम्।
अयं हितप्रदो योगो योगिनां सिद्धिदायकः।।
एतद्योगप्रसादेन बिन्दुसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम्।
सिद्धे विन्दौ महायत्ने किं न सिध्यति भूतले।।
भेगेन महता युक्तो यदि मुद्रां समाचरेत्।
तथापि सकला सिद्धिर्भवति तस्य निश्चितम्।। घे०सं० 3/58 59 60

इस मुद्रा के लाभो का वर्णन करते हुए महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि यह मुद्रा मुक्ति देने वाली तथा हितकारिणी है। यह मुद्रा श्रेष्ठ है तथा सिद्धि प्रदान करने वाली है। इससे बिन्दु सिद्धि होती है तथा बिन्दु सिद्ध होने पर पृथ्वी के सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। यदि भोग में लिप्त व्यक्ति भी इस मुद्रा का नियमित अभ्यास करे तो उसे भी सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती है।

सावधानी–

जिन व्यक्तियों को भुजाएँ कमजोर हो उनको यह अभ्यास सावधानी से करना चाहिए।

20.3.8 शक्तिचालिनी मुद्रा

विधि– शक्तिचालिनी मुद्रा की विधि बताने से पूर्व महर्षि घेरण्ड कुण्डलिनी शक्ति के विषय में बताते हैं, वह इस शक्ति का वर्णन इसलिए कर रहे हैं क्योंकि इस मुद्रा के अभ्यास से वह गोपनीय शक्ति जो सभी मनुष्यों में सोई हुई है, जाग्रत हो जाती है।

कुण्डलिनी शक्ति जो मूलाधार चक्र में साढे तीन फेरा लगाए हुए सर्प के समान सोई पड़ी है, इस अवस्था में साधक पशु के समान है। इसलिए जब तक यह जाग्रत न हो जाए इसका अभ्यास करते रहना चाहिए। घेरण्ड मुनि कहते हैं कि नाभि को वस्त्र से लपेटे तथा अकेले में ही इसका अभ्यास करे। नग्न रहकर, सबसे सामने इसका अभ्यास बिल्कुल न करे।

विधि–

वितस्तिप्रमितं दीर्घं विस्तारे चतुरङ्गुलम्।
मृदुलं धवलं सूक्ष्मं वेष्टनाम्बरलक्षणम्।।
एवमम्बरयुक्तं च कटिसूत्रेण योजयेत्।

संलिप्य भस्मनागात्रं सिद्धासनमाचरेत्।।
नासाभ्यां प्राणमाकृष्याप्यपाने योजयेद्बलात्।
तवादाकुंचयेद् गुह्यमश्विनीमुद्रया शनैः।।
यावद्गच्छेत्सुषुम्णायां हठाद्वायुः प्रकाशयेत्।
तदा वायुप्रबन्धेन कुम्भिका च भुजङ्गिनी।।
घे०सं० 3/65 66 67 68।।

एक कोमल वस्त्र लेकर जो कि एक बालिस्त लम्बा तथा चार अंगुल चौड़ा हो, नाभि पर लगाकर कटि में बाँधे। समस्त शरीर पर भस्म लगाएँ, सिद्धासन में बैठे तथा प्राण को अपान से मिलाने का प्रयास करें। अश्विनी मुद्रा द्वारा गुदा द्वार को संकुचित रखे, जब तक कि सुषम्ना द्वार से चलती हुई वायु प्रकाशित न हो। इस प्रकार कुम्भक द्वारा सर्प रूपिणी कुण्डलिनी जाग्रत हो ऊर्ध्वगामी हो जाती है।

लाभ–

बद्धश्वासस्ततो भूत्वा चोर्ध्वमार्ग प्रपद्यते।
विना शक्तिचालनेन योनिमुद्रा न सिध्यति।।
आदौ चालनमभ्यस्य योनिमुद्रां ततोऽभ्यसेत्।
इति ते कथितं चण्डकापाले शक्तिचालनम्।।
गोपनीयं प्रयत्नेन दिने दिने समभ्यसेत्।
मुद्रेयं परमा गोप्या जरामरणनाशिनी।।
तस्मादभ्यसनं कार्यं योगिभिः सिद्धिकांक्षिभिः।
नित्यंयोऽभ्यसते योगी सिद्धिस्तस्य करे स्थिता।
तस्य विग्रहसिद्धिः स्याद्रोगाणां संक्षयो भवेत्।। घे०सं० 3/69 70 71 72।।

इसके लाभों का वर्णन करते हुए महर्षि कहते हैं कि इसके अभ्यास के बिना योनिमुद्रा सिद्ध नहीं हो सकती। इसका अभ्यास नित्य प्रति करने को कहा है साथ ही इसे गोपनीय रखने को भी कहा गया है। इससे विग्रह–सिद्धि सहित सभी सिद्धियाँ मिलती है और सभी रोगों का भी निवारण होता है।

सावधानी– इस मुद्रा का अभ्यास गोपनीय ढंग से करना चाहिए। खुले बदन में इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। वस्त्र को लपेट कर, एकान्त में बैठ कर शक्तिचालनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए।

20.3.9 तडागी मुद्रा–

विधि–

उदरंपश्चिमोत्तानं कृत्वा च तडागाकृतिः।
ताडागी सा परामुद्रा जरा मृत्यु विनाशिनी।। घे०सं० 3/73

सर्वप्रथम पश्चिमोत्तासान में बैठे, पीठ को सीधा रखे। श्वास ले तथा पेट को ऐसे फुलाएँ जैसे उसके अन्दर पानी भरा हुआ हो। श्वास छोड़ते हुए पेट को अन्दर करे।

लाभ–यह एक महत्त्वपूर्ण मुद्रा है इसका अभ्यास करने से बुढ़ापा नहीं आता तथा मृत्यु का भय भी दूर हो जाता है।

सावधानी–

गर्भवती महिलाएँ, हर्निया या भ्रंश से पीड़ित रोगियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। श्वास लेते तथा छोड़ते हुए सावधानी बरतें।

20.3.10 माण्डूकी मुद्रा

विधि– मुखं संमुद्रितं कृत्वा जिह्वामूलं प्रचालयेत्।
शनैर्ग्रसेदमृतं तां माण्डूकीं मुद्रिकां विदुः।। घे०सं० 3/74

मुख को बन्द कर जिह्वा को तालु में पूरा घुमाएँ, जिससे जिह्वा के माध्यम से सहस्त्रार चक्र से टपकने वाले सुधा का पान (अमृत) हो सके। यही माण्डूकी मुद्रा है।

लाभ– वलितंपलितं नैव जायते नित्ययौवनम्।
न केशे जायते पाको यः कुर्यान्नित्यमाण्डूकीम्।। घे०सं० 3/75

इसके अभ्यास से बालों का झड़ना, सफेद होना आदि सभी रोग दूर हो जाते है। इसके अभ्यास से शरीर में झुर्रियाँ नहीं पड़ती तथा युवावस्था बनी रहती है।

सावधानी– कमर, गर्दन को सीधा रखे। मूलाधार चक्र पर उचित दबाव डाले।

20.3.11 शाम्भवी मुद्रा

विधि–

नेत्रान्तरं समालोक्य चात्मारामं निरीक्षयेत्।
सा भवेच्छाम्भवीमुद्रा सर्वतन्त्रेषुगोपिता।। घे०सं० 3/76

दृष्टि को दोनों भौहों के मध्य स्थिर कर, ध्यान को स्वयं पर अर्थात् 'अपनी आत्मा' पर लगाए। यही शाम्भवी मुद्रा की विधि है। घेरण्ड मुनि ने इस मुद्रा को कुलवधू के समान बताया है।

लाभ– स एव ह्यादिनाथश्च स च नारायणः स्वयम्।
स च ब्रह्मा सृष्टिकारी यो मुद्रां वेत्ति शाम्भवीम्।। घे०सं० 3/78

इसका अभ्यास करने वाले साधक स्वयं आदिनाथ नारायण और जगत स्रष्टा ब्रह्मा ही है। अर्थात् इसका अभ्यास करने वाला साधक या पुरुष साक्षात् ब्रह्मरूप ही होता है।

सावधानी– जिन व्यक्तियों की आँखे बहुत अधिक कमजोर हो वो इसका अभ्यास ज्यादा देर तक या सावधानीपूर्वक ही करें। आँखों के किसी भी तरह के ऑपरेशन के बाद इसका अभ्यास न करें।

20.3.12 अश्विनी मुद्रा

विधि– आकुंचयेद् गुदाद्वारं प्रकाशयेत् पुनः पुनः।
सा भवेदश्विनीमुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी।। घे०सं० 3/82

गुदा द्वार को बार–बार संकुचित और प्रसारित करें। इस प्रक्रिया को बार–बार करना ही अश्विनी मुद्रा है। कहा भी गया है कि इससे कुण्डलिनी शक्ति जो मूलाधार चक्र में सोई हुई है, जाग्रत हो जाती है।

लाभ– आश्विनी परमा मुद्रा गुह्यरोगविनाशिनी।
बलपुष्टिकरी चैव अकालमरणं हरेत्।। घे०सं० 3/83

इस मुद्रा से गुदा सम्बन्धित सभी रोग नष्ट होते हैं। इसके नियमित अभ्यास से शारीरिक बल बढ़ता है, अकाल मृत्यु भी नहीं होती है।

सावधानी–

जब इस मुद्रा का अभ्यास करे तब ध्यान रखे कि केवल गुदा द्वार का ही संकुचन हो। संकुचन एवं प्रसार लयबद्ध होना चाहिए। गुदा नाल व्रण से पीड़ित व्यक्ति इसका अभ्यास न करे।

20.3.13 पाशिनी मुद्रा

विधि

कण्ठपृष्ठे क्षिपेत्पादौ पाशवद् दृढ़बन्धनम्।
सा एव पाशिनी मुद्रा शक्ति प्रबोधकारिणी।। घे०सं० 3/84

दोनों पैरों को सिर के पीछे ले जाए तथा दोनों घुटनों को मोड़कर कण्ठ के पीछे ले जाए तथा दोनों पैरों को मिलाकर पाश के समान कठोरता से बाँधे, यही पाशिनी मुद्रा है।

लाभ–

पाशिनी महती मुद्रा वयपुष्टि विधायिनी।
साधनीया प्रयत्नेन साधकैः सिद्धिकांक्षिभिः।। घे०सं० 3/85

पाशिनी मुद्रा के अभ्यास से शक्ति जाग्रत होती है। यह शरीर को बल और पुष्ट करने वाली मुद्रा है। इसके अभ्यास से साधक को सिद्धि प्राप्त होती है।

सावधानी–

जिन व्यक्तियों को हर्निया, स्लिपडिस्क, साइटिका, उच्च रक्तचाप या मेरूदण्ड से सम्बन्धित रोगों में इस मुद्रा का अभ्यास न करें।

20.3.14 काकी मुद्रा

विधि काकचंचुवदास्येन पिबेद्वायुं शनैः शनैः।
काकी मुद्रा भवेदेषा सर्वरोग विनाशिनी।। घे०सं० 3/86

किसी भी सुविधाजनक आसन में बैठे तथा मुख को कौवे की चोंच के समान बनाकर, मुख से वायु का धीरे–धीरे पूरक करें। यही काकी मुद्रा है।

लाभ– काकी मुद्रा परा मुद्रा सर्वतन्त्रेषुगोपिता।
अस्याः प्रसादमात्रेण काकवन्नीरुजो भवेत्।। घे०सं० 3/87

यह मुद्रा सभी रोगों का नाश करती है। इस मुद्रा के अभ्यास को गुप्त रखने को कहा है। इस मुद्रा के प्रभाव से साधक सभी बीमारियों से कौवे के समान मुक्त रहता है।

सावधानी– काकी मुद्रा का अभ्यास स्वच्छ वातावरण में ही करे, प्रदूषित वातावरण में न करें क्योंकि इसमें वायु का पान मुख से होता है। अत्यधिक ठण्ड में इसका अभ्यास न करे। विषाद, निम्नरक्तचाप तथा दीर्घकालिक कब्ज से पीड़ित रोगियों को इसका अभ्यास वर्जित है।

20.3.15 मातंगिनी मुद्रा–

विधि–

कण्ठमग्नेजले स्थित्वा नासाभ्यां जलमाहरेत्।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात् पुनर्वक्त्रेण चाहरेत्।।
नासाभ्यां रेचयेत् पश्चात् कुर्यादेवं पुनः पुनः।
मातंगिनी परा मुद्रा जरामृत्यु विनाशिनी।। घे०सं० 3/88,89

गले तक पानी में स्थिरतापूर्वक बैठिये तत्पश्चात् नाक से पानी खींचकर मुँह से बाहर निकालिए तथा मुँह से जल खींचकर नाक से बाहर छोडिए। इसको बार–बार कीजिए। यही मातंगिनी मुद्रा है।

लाभ– विरले निर्जने देशे स्थित्वा चैकाग्रमानसः।
कुर्यान्मातंगिनी मुद्रां मातंग इव जायते।।
यत्र यत्र स्थितो योगी सुखमत्यन्तमश्नुते।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन साधयेत् मुद्रिकांपराम्।। घे०सं० 3/90,91

इसके लाभों का वर्णन करते हुए महर्षि कहते हैं कि यह एक परम मुद्रा है जिसके अभ्यास से जरा, मृत्यु का हरण होता है। किन्तु इसे एकान्त स्थान में एकाग्र होकर करना चाहिए। इस मुद्रा के सिद्ध होने पर साधक हाथी के समान बलवान एवं शक्तिशाली बनता

है। साथ ही उसे आनन्द की अनुभूति होती है। इस मुद्रा को प्रयत्नपूर्वक सिद्ध करना चाहिए। इसकी सिद्धि थोड़े से अभ्यास से ही हो जाती है।

सावधानी– इस मुद्रा का अभ्यास लोगों, जन–साधारण के बीच में न करे। मन को एकाग्र करके ही इसका अभ्यास करे। नाक में पानी भरते हुए या मुँह में पानी भरते हुए सावधानी रखे।

20.3.16 भुजंगिनी मुद्रा

विधि

वक्त्रं किंचित्सुप्रसार्य चानिलं गलया पिवेत्।

सा भवेद् भुजंगी मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी।। घे०सं० 3/92

किसी भी सुविधाजनक आसन में बैठे। मुख को पूरा खोलकर कण्ठ से वायु का पूरक करें। यही भुजंगिनी मुद्रा कहलाती है।

लाभ–

यावच्च उदरे रोगमजीर्णादि विशेषतः।
तत्सर्वनाश्येदाशु यत्र मुद्रा भुजंगिनी।। घे०सं० 3/93

इसके अभ्यास सिद्ध होने पर जरा–मृत्यु का नाश होता है। यह उदर को स्वस्थ बनाकर उससे सम्बन्धित सभी रोगों को ठीक करता है। इससे अजीर्ण आदि रोगों में लाभ मिलता है।

सावधानी–इसे प्रदूषित वातावरण में न करें।

बंध

20.3.17 मूलबन्ध

पार्ष्णिना वामपादस्य योनिमाकुंचयेत्ततः।
नाभिग्रन्थि मेरुदण्डे सुधीः संपीड्य यत्नतः।।
मेढ्रं दक्षिणगुल्फेन दृढ़बन्धं समाचरेत्।
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबन्धो निगद्यते।। घे०सं० 3/6,7

सर्वप्रथम दण्डासन में बैठे तथा बाएँ पैर को मोड़कर, बाँयी एड़ी को गुदा मार्ग में रख, उसे संकुचित करें और यत्नपूर्वक नाभि ग्रंथी को मेरुदण्ड में लगाकर दबाव बनाएँ। फिर दायी एडी को उपस्थ पर लगाकर उस पर दृढ़तापूर्वक दबाव बनाएँ। यही मूलबंध है।

लाभ–

संसारसागरं तर्तुमभिलषति यः पुमान्।
सुगुप्तो विरलो भूत्वा मुद्रामेतां समभ्यसेत्।।
अभ्यासाद्बन्धनस्यास्य मरुत्सिद्धिर्भवेद्ध्रुवम्।
साधयेद्यत्नतस्तर्हि मौनी तु विजितालसः।। घे०सं० 3/8, 9

यह मूलबंध बूढापे पर आसानी से विजय प्राप्त करता है। इसके अभ्यास से मरूत् सिद्धि प्राप्त होती है। इसका अभ्यास अगर मौन रखकर व आलस्य से रहित होकर करे तो ज्यादा लाभकारी सिद्ध होगा। इसके अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है।

सावधानी

इसका अभ्यास मौन रहकर करना चाहिए। इसके अभ्यास के दौरान आलस्य नहीं होना चाहिए। कब्ज तथा बवासीर से पीड़ित रोगियों को इसका अभ्यास बड़ी सावधानी से या किसी गुरु के परामर्श के बाद ही करना चाहिए। ऋतुस्त्राव के दौरान इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

20.3.18 जालन्धर बंध मुद्रा

विधि–

कण्ठसंकोचनं कृत्वा चिबुकं हृदये न्यसेत्।
जालन्धरेकृते बन्धे षोडशाधारबन्धनम्।। घे०सं० 3/10

किसी भी सुविधाजनक, ध्यानात्मक आसन में बैठे तथा कंठ को संकुचित कर ठुड्डी को छाती पर लगाने का प्रयास करें। यही जालन्धर बंध है। इसके अभ्यास से शरीर में स्थित 16 आधारों का नियंत्रण होता है।

लाभ–

जालन्धरमहामुद्रामृत्योश्च क्षयकारिणी।
सिद्धो जालन्धरो बन्धो योगिनां सिद्धिदायकः।
षण्मासमभ्यसेद्यो हि स सिद्धो नात्र संशयः।। घे०सं० 3/11

यह जालन्धर बंध नामक महामुद्रा मृत्यु का भय दूर कर उसे जीत लेती है। इसका अभ्यास सिद्धियों को प्रदान करने वाला होता है। कहा गया है कि इस बंध का अभ्यास निरन्तर छह माह करने से साधक सिद्ध हो जाता है।

सावधानी–

हृदय रोगो से पीड़ित, उच्च रक्त चाप से पीड़ित, भ्रमि मस्तिष्क से सम्बन्धित किसी सर्जरी वाले रोगियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। सर्वाइकल स्पाडिलाइटिस वाले रोगियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। घबराहट प्रारम्भ होने पर भी बंध को तुरन्त हटा ले और विश्राम करे।

20.3.19 उड्डियान बंध मुद्रा

विधि– उदरे पश्चिमं तानं नाभिरूर्ध्वं तु कारयेत्।
उड्डीनं कुरुते यस्मादविश्रान्तं महाखगः।
उड्डीयानं त्वसौ बन्धो मृत्युमातंगकेसरी।। घे०सं० 3/12

किसी भी ध्यानात्मक आसन से बैठकर अपने उदर (पेट) को पीठ की तरफ पूरा संकुचित करें। ऐसा करते ही महाखग अर्थात् प्राण ऊपर की तरफ उठता है। यह स्थिति उड्डियान बंध कहलाती है।

लाभ–

समग्राद् बन्धनाद्ध्येतदुड्डीयानं विशिष्यते।

उड्डीयाने समभ्यस्ते मुक्तिः स्वाभाविकी भवेत्।। घे०सं० 3/13

यह मृत्यु रूपी हाथी के सामने शेर (सिंह) के समान प्रकट होता है। अन्य सभी बंधों में यह सर्वश्रेष्ठ है। इसके अभ्यास से साधक को मोक्ष मिल जाता है। इसके अभ्यास से उदर के सभी रोग तथा सम्बन्धित अंग सुदृढ़ बनते हैं।

सावधानी–

वृहदान्त्रशोध, आमाशय या आन्त्रव्रण, हर्निया, उच्च रक्त या हृदय रोग से पीड़ित रोगी इसका अभ्यास न करे। गर्भिणी भी इसका अभ्यास न करें। प्रसव के बाद डॉक्टर की सलाह से ही इसका अभ्यास करें। पेट दर्द की स्थिति में इसका अभ्यास न करे।

20.3.20 महा बंध मुद्रा–

विधि–

वामपादस्य गुल्फेन पायुमूलं निरोधयेत्।
दक्षपादेन तद्गुल्फं संपीड्य यत्नतः सुधीः।।
शनकैश्चालयेत्पार्ष्णिं योनिमाकुंचयेच्छनैः।
जालन्धरे धरेत्प्राणं महाबन्धो निगद्यते।। घे०सं० 3/14 15

बाँये पैर को मोड़कर उसकी एड़ी को गुदा द्वार पर रखे तथा फिर दाये पॉव की एडी से बाँयी एडी पर दबाव बनाए। धीरे–धीरे गुदा प्रदेश का चातन करे तथा उसे धीरे–धीरे ही संकुचित भी करें। साथ ही जालन्धर बंध द्वारा वायु को धारण करे। यह महाबंध है।

लाभ–

महाबन्धः परो बन्धो जरामरण नाशनः।
प्रसादादस्य बन्धस्य साधयेत्सर्ववांछितम्।। घे०सं० 3/16

महाबंध मुद्रा अन्य सभी मुद्राओं में उत्तम हैं। यह जरा–मृत्यु नाशिनी है। इस बंध के फलस्वरूप साधक की सभी मन की इच्छाएँ पूरी हो जाती है। इसमें तीनों बंध प्रयुक्त होते है इसलिए इसमें तीनों बंधो के लाभ निहीत है।

सावधानी–

उच्चरक्त चाप, हृदय रोग से पीडित, वृहदान्त्रशोध, गर्भिणी, सर्वाइकल स्पॉडिलाइटिस, ऋतुस्त्राव आदि वाले व्यक्ति इसका अभ्यास न करें।

20.3.21 पार्थिवी धारणा मुद्रा

विधि–

यत्तत्वं हरितालदेशरचितं भौमं लकारान्वितं,
वेदास्र्ं कमलासनेनसहितं कृत्वा हृदिस्थापितम्।
प्राणंत्रय विलीय पंचघटिकाश्चित्तान्वितां धारयेत्।
ऐषा स्तम्भकरी सदा क्षितिजयं कुर्यादधोधारणा।। घे०सं० 3/17

घेरण्ड मुनि कहते हैं कि पृथ्वी तत्त्व का वर्ण हरताल के समान पीला रंग है। वह वर्गाकार है और यही ब्रह्म देवता है। उसके सभी छोर समान है। इसको योग की शक्ति द्वारा हृदय में धारण करें और उसके बीज मंत्र 'लं' पर ध्यान लगाए। प्राण का कुम्भक पाँच घड़ी तक करें। यही पार्थिवी धारणा है।

लाभ–

पार्थिवीधारणामुद्रां यः करोति तु नित्यशः।
मृत्युंजयः स्वयं सोऽपि स सिद्धो विचरेद्भुवि।। घे०सं० 3/18

इसके अभ्यास से योगी पृथ्वी पर विजय प्राप्त करता है। साथ ही साथ वह मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है। वह सिद्ध होकर पृथ्वी में विचरण करता है। वह पृथ्वी तत्त्व के गुणों एवं अवगुणों पर विजय प्राप्त करता है।

सावधानी– इसका अभ्यास बहुत धैर्य तथा धीरे–धीरे करें, किसी भी तरह की जबरदस्ती ठीक नहीं है। अभ्यास में काफी समय लग सकता है इसलिए धैर्य धारण करें।

20.3.22 आम्भसी धारणा मुद्रा–

विधि–

शङ्खेन्दुप्रतिमं च कुन्दधवलं तत्त्वं किलालं शुभं।
तत्पीयूषवकारबीजसहितं युक्तं सदा विष्णुना।
प्राणं तत्र विलीय पंच घटिकाश्चित्तान्वितां धारयेत्।
एषा दुःसहतापपापहरिणीस्यादाम्भसी धारणा।। घे०सं० 3/19

शुभ्र वर्ण का जलशंख, चन्द्र या कुन्द के समान है। जल का बीज मंत्र वकार या 'वं' और देवता विष्णु हैं। इस तत्व का हृदय में ध्यान कर मन को एकाग्र कर पाँच घड़ी तक कुम्भक कर प्राण को धारण करें। यही आम्भसी धारण है।

लाभ–

आम्भसीं परमां मुद्रा यो जानाति स योगवित्।
जले च घोरे गंभीरे मरणं तस्यनोभवेत्।।
इयं तु परमा मुद्रा गोपनीया प्रयत्नतः।
प्रकाशात्सिद्धिहानिःस्यात्सत्यं वच्मि च तत्त्वतः।। घे०सं० 3/20 21

इस धारणा द्वारा मनुष्य के सभी प्रकार के दुःख, ताप तथा सभी पाप खत्म हो जाते हैं। शरीर की अंदर की गर्मी और उत्तेजना आदि समाप्त हो जाती है। क्योंकि जल का गुण शीतलता प्रदान करना होता है। जो साधक इसको सिद्ध कर लेता है उसको पानी में डूबने पर भी किसी भी तरह से हानि नहीं पहुँचती। घेरण्ड मुनि ने श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण मुद्रा की संज्ञा दी है। साथ ही इसके अभ्यास को गोपनीय रखने को कहा है कहते हैं अगर इसका अभ्यास सबके सामने हो तो साधक की सिद्धि नष्ट हो जाती है।

सावधानी– घेरण्ड मुनि ने इस मुद्रा का वर्णन करते हुए ही कहा है कि इस मुद्रा का अभ्यास गोपनीय रूप से करना है किसी के सामने अभ्यास करने से साधक की सिद्धि नष्ट हो जाती है। इसका अभ्यास करने से पूर्व चित्त को शान्त करने का प्रयास करे। इसका अभ्यास किसी भी समय नहीं किया जाता।

20.3.23 आग्नेयी मुद्रा

विधि–

यन्नाभिस्थितमिन्द्रगोपसदृशं बीजं त्रिकोणान्वितं,
तत्त्वं वह्निमयं प्रदीप्तमरुणं रुद्रेण यत्सिद्धिदम्।
प्राणं तत्र विलीय पंचघटिकाश्चित्तान्वितं धारयत्
एषा कालगभीरभीतिहरिणी वैश्वानरी धारणा।। घे०सं० 3/22

अग्नि का स्थान नाभि है। अग्नि का रंग लाल है तथा इसका यंत्र त्रिकोण है। इसका बीज मंत्र 'रं' और देवता रुद्र है। यह अग्नि तत्व तेजपुंज युक्त, दीप्ति युक्त तथा सिद्धिदायक है। इसका अभ्यास मन को एकाग्र कर तथा पाँच घड़ी का कुम्भक धारण कर करें। यह आग्नेयी धारणा कहलाती है।

लाभ–

प्रदीप्ते ज्वलिते वह्नौ पतितो यदि साधकः।
एतन्मुद्रा प्रसादेन स जीवति न मृत्युभाक्।। घे०सं० 3/23

इसके लाभों का वर्णन करते हुए महर्षि कहते हैं कि निरन्तर इसका अभ्यास करने वाले साधक को काल का भय आदि नहीं सताता तथा उसे अग्नि से भी कोई हानि नहीं

होती। इसका अभ्यास करने वाला साधक अगर प्रदण्ड अग्नि में भी गिर जाए तो उसे कोई हानि नहीं होगी और साधक मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है।

सावधानी

इसका अभ्यास धैर्य तथा संयम से करे क्योंकि अग्नि से खिलवाड़ करना साधक के लिए ठीक नहीं है।

20.3.24 वायवीय धारणा मुद्रा

विधि

यद्भिन्नांजनपुंजसंनिभमिदं धूम्रावभासं परं,
तत्त्वं सत्त्वमयं यकारसहितं यत्रेश्वरो देवता।

प्राणं तत्र विलीय पंचघटिकाश्चिन्तान्वितं धारयेत्।

एषा खे गमनं करोति यामिनां स्याद्वायवी धारणा।।घे०सं० 3/24

वायु का रंग धुएँ के रंग के समान हल्का काला होता है। इसका बीज मंत्र 'यं' या यकार है, इसका तत्व सत्व गुण का है। इसके इष्ट देवता ईश्वर हैं। मन को एकाग्र कर प्राण देवता ईश्वर हैं। मन को एकाग्र कर प्राण वायु को पाँच घड़ी तक कुम्भक कर धारण करें। इसे वायवीय धारणा कहा गया है।

लाभ–

इयं तु परमा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी।
वायुनाभ्रियते नापि खे च गतिप्रदायिनी।।
शठाय भक्तिहीनाय न देयं यस्यकस्यचित्।
दत्ते च सिद्धिहानिः स्यात्सत्यं वच्मि च चण्ड ते।। घे०सं० 3/25 26

इस अभ्यास से साधक को आकाश गमन की शक्ति प्राप्त होती है साथ ही वह मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करता है। वह बुढ़ापे पर भी विजय हासिल करता है। साधक आकाश में उड़ने की सिद्धि प्राप्त कर आकाश में उड़ने लगता है। इससे अन्य सिद्धियाँ भी अपने आप प्राप्त हो जाती है।

सावधानी– इस धारणा के बारे में मूर्ख तथा अभक्त व्यक्ति को न बताएँ। ऐसा करने से सिद्धि नष्ट हो जाती है। इसका अभ्यास को करते हुए धैर्य धारण करें तथा धीरे–धीरे अभ्यास को करे व आगे बढ़ाएँ।

20.3.25 आकाशीय धारणा मुद्रा–

विधि

यत्सिन्द्धौ वरशुद्धवारिसदृशं व्योमाख्यमुद्भासते,
तत्त्वं देवसदाशिवेन सहितं बीजं हकारान्वितम्।
प्राणांस्तत्र विलीय पंचघटिकाश्चित्तान्वितं धारयेत्,
एषा मोक्षकपाटभेदनकरी कुर्यान्नभोधारणा।। घे०सं० 3/27

यह आकाश तत्व को धारण करने की धारणा है, आकाश जिसका रंग समुद्र के नीले रंग जैसा, शुद्ध जल के समान है। आकाश तत्व का बीज मंत्र हकार या 'हं' है। इसके इष्ट देव सदाशिव है। मनु को शान्त एवं एकाग्र कर प्राण वायु को पाँच घड़ी का कुम्भक लगाएँ। यह आकाशी धारणा है।

लाभ– आकाशीधारणां मुद्रां यो वेत्ति स योगवित्।
न मृत्युर्जायते तस्य प्रलये नावसीदति।। घे०सं० 3/28

इसके लाभों को कहते हुए कहा गया है कि यह मोक्ष का द्वार खोलती है। इसका साधक मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है। उसे प्रलय आदि आने पर भी किसी भी प्रकार का दुख नहीं होता। वह शुद्ध अवस्था को प्राप्त करता है।

सावधानी– मन को शान्त तथा निर्मल कर ही इसका अभ्यास करें।

अभ्यास प्रश्न

1.एक शब्द में उत्तर दीजिए–

(क) किस मुद्रा के सिद्ध हो जाने पर साधक मूर्च्छा, तृष्णा, क्षुधा, आलस्य आदि नहीं सताते।

(ख) किस मुद्रा के अभ्यास से ब्रह्म हत्या, भ्रूण हत्या, सुरापन, गुरुतल्प गमन आदि महापापों से मुक्ति मिलती है।

(ग) किस मुद्रा के प्रभाव से साधक सभी बीमारियों से कौवो के समान मुक्त रहता है।

(घ) किस मुद्रा के सिद्ध हो जाने पर साधक हाथी के समान बलवान तथा शक्तिशाली बनता है।

(ङ) गुदा नाल व्रण से पीड़ित व्यक्ति को किस मुद्रा का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

2.बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

(क) घेरण्ड संहिता के अनुसार बन्धों की संख्या कितनी होती है?

(i) 04 (ii) 05 (iii) 16 (iv) 25

(ख) किस मुद्रा के अभ्यास को निरन्तर छः माह करने से साधक सिद्ध हो जाता है?

(i) मूलबन्ध मुद्रा (ii) जालान्धर बन्ध मुद्रा

(iii) उड्डियान बन्ध मुद्रा (iv) महाबन्ध मुद्रा

(ग) किस मुद्रा के अभ्यास से साधक मृत्यु रूपी हाथी के सामने शेर के समान प्रकट होता है।

(i) महावेध मुद्रा (ii) अश्विनी मुद्रा

(iii) उड्डियान बन्ध मुद्रा (iv) महाबन्ध मुद्रा

(घ) किस मुद्रा में मुख्य रूप से तीनों बन्धों का प्रयोग होता है?

(i) मूलबन्ध मुद्रा (ii) महाबन्ध मुद्रा

(iii) उड्डियान बंध मुद्रा (iv) जालन्धर बन्ध मुद्रा

3.सत्य असत्य बताइये–

(क) आम्भसी धारणा मुद्रा के अभ्यास से साधक को पानी में डूबने पर हानि नहीं पहुँचती।

(ख) आग्नेयी धारणा मुद्रा का बीज मंत्रा वकार या वं तथा देवता विष्णु है।

(ग) वामवीय धारणा मुद्रा का तत्व सत्व गुण का है।

(घ) वायवीय धारणा मुद्रा के सिद्ध होने से साधक आकाश में उड़ने लगता है।

(ङ) घेरण्ड संहिता में चार धारणाओं का वर्णन है।

(च) पार्थिवी धारणा मुद्रा से योगी पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर लेता है।

20.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं, कि मुद्राएँ साधक की सिद्धि में कितना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। बंध मुद्राएँ जहाँ साधनापरक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, वहाँ उनका भौतिक दृष्टि से चिकित्सय प्रयोग भी हितकर है। मुद्राएँ शारीरिक स्थिरता देने वाली तथा चित्त को नियन्त्रित करने वाली है। इनका अभ्यास शरीर की अनैच्छिक क्रियाओं को वश में लाता है तथा प्राण ऊर्णा को जाग्रत कर साधना की उच्च भूमि की ओर अग्रसर करता है। अतः स्पष्ट होता है कि मुद्राओं का मुख्य उद्देश्य कुण्डलिनि जागरण कर समाधि की प्राप्ति करना है।

20.5 शब्दावली

यक्ष्मा	–	टी0वी0
कुम्भक	–	श्वास रोकना, प्राणायाम
क्षुधा	–	भूख
तृष्णा	–	चाह, राग
धृत	–	घी
तक्र	–	मट्ठा

20.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) खेचरी मुद्रा (ख) योनि मुद्रा (ग) काकी मुद्रा
   (घ) मातंगिनी मुद्रा (ङ) अश्विनी मुद्रा

2. (क) 04 (ख) जालान्धर बंध मुद्रा (ग)उड्डियान बंध मुद्रा
   (घ) महाबन्ध मुद्रा

3. (क) सत्य (ख) असत्य (ग) सत्य, (घ) सत्य
   (ङ) असत्य (च) सत्य

20.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दिगम्बर स्वामी (2001) स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम, श्रीमन्माधव, योग मन्दिर समिति, लोनावाला
2. निरंजनानन्द स्वामी (2003) महर्षि घेरण्ड कृत घेरण्ड संहिता योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार
3. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द – आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध (2003) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार
4. भारद्वाज डॉ० ईश्वर (2005) सरल योगासन, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

20.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. घेरण्ड संहिता में वर्णित मुद्राओं का नामोल्लेख करके केवल बन्धों का वर्णन करें?
2. महामुद्रा व महाबन्ध की व्याख्या करते हुए उद्देश्यों पर भी प्रकार डालिए?
3. निम्नलिखित में से किन्हीं तीन मुद्राओं की विधि, लाभ व सावधानियों का वर्णन करें?

   (i) महाबेध मुद्रा (ii) विपरीत मुद्रा (iii) खेचरी मुद्रा

   (iv) वज्रोणी मुद्रा (v) शक्तिचालिति मुद्रा

2. पार्थिवीधारणा तथा वायवीय धारणा की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए?

इकाई–21 घेरण्ड संहिता में वर्णित प्रत्याहार व ध्यान

इकाई की संरचना

21.1 प्रस्तावना

21.2 उद्देश्य

21.3 घेरण्ड संहिता में वर्णित पत्याहार प्रकरण

21.4 घेरण्ड संहिता में वर्णित ध्यान प्रकरण

23.4.1 स्थूल ध्यान

23.4.2 ज्योति ध्यान

23.4.3 सूक्ष्म ध्यान

21.5 सारांश

21.6 शब्दावली

21.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

21.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

21.9 निबंधात्मक प्रश्न

21.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में घेरण्ड संहिता के चौथे अध्याय प्रत्याहार का वर्णन मिलता है तथा इसी इकाई में हम घेरण्ड संहिता के छठे अध्याय ध्यान का भी अध्ययन करेंगे। चौथे अध्ययन में घेरण्ड मुनि अपने शिषय राजा चण्डकपाणि को प्रत्याहार के बारे में विस्तार से बताते हैं कि मन या इन्द्रियों की अर्न्तमुखता ही प्रत्याहार है। इसके अभ्यास से योगी अपनी इन्द्रियों को पूर्ण रूप से वश में कर लेता है। योगी प्रत्याहार को सिद्ध करके समाधि को प्राप्त करने में सश्रम हो जाता है। ध्यान योगी को लक्ष्य तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण साधन है। ध्यान के माध्यम से योगी अनेक गुणों का विकास करके आत्मसाक्षात्कार की स्थिति प्राप्त कर लेता है।

21.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप–

- घेरण्ड संहिता में वर्णित प्रत्याहार का विश्लेषण कर सकेंगे।
- प्रत्याहार के उद्देश्य को समझ सकेंगे।
- स्थूल ध्यान का अध्ययन करेंगे।
- घेरण्ड संहिता में वर्णित ध्यान के तीनों प्रकार का विश्लेषण कर सकेंगे।

21.3 घेरण्ड संहिता में वर्णित प्रत्याहार प्रकरण

प्रिय पाठकों प्रत्याहार शब्द योग में जाना पहचाना है। अक्सर आम जिज्ञासु पाठक यह जानने की इच्छा रहती है कि प्रत्याहार क्या है। घेरण्ड संहिता में प्रत्याहार का वर्णन विस्तार पूर्वक किया है आगामी पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के बाद आप उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जाननें में सक्षम हो जावोगें। प्रत्याहार का वर्णन घेरण्ड संहिता के चौथे अध्याय या अंग के रूप में मिलता है। इस तरह चौथा अध्याय प्रत्याहार प्रकरणा के नाम से जाना जाता है। इस अध्याय में महर्षि घेरण्ड अपने शिष्य राजा चण्डकपालि को प्रत्याहार के बारे में बिस्तार से बताते हैं। प्रत्याहार का अभ्यास साधक को साधना की अन्तिम अवस्था जो कि समाधि है। उस तक पहुँचने में अत्यधिक मदद करता है। मन या इन्द्रियों की अर्न्तरमुखता ही प्रत्याहार है। यह बहुत जटिल प्रक्रिया है इसका निरन्तर अभ्यास ही इसमें विजय प्राप्त कराता है। इन्द्रियों के माध्यम से मन या चित्त को संयमित नियंत्रित करने की प्रक्रिया प्रत्याहार कहलाती है। कहा गया है कि अगर हम अपने मन को इन्द्रियों की अनुभूति से अलग कर दे तो इन्द्रियों का अपने विषयों की तरफ जाना बंद हो जाता है। कहा गया है कि इन्द्रियाँ ही मन में चंचलता उत्पन्न करती है। मन में किसी प्रकार की ब्राह्यय नकारात्मक या सकारात्मक भावना इन्द्रियों द्वारा ही उत्पन्न होती है। महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि मन का संतुलन नहीं बिगड़ना चाहिए अर्थात् किसी भी परिस्थिति में धैर्य नहीं

खोना चाहिए और सजगता का अभाव नहीं होना चाहिए। इसी धैर्य की प्राप्ति के लिए वे अपने शिष्य चण्डकपालि को कहते हैं–

> अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रत्याहारकमुत्तमम्।
> यस्य विज्ञानमात्रेण कामादिरिपुनाशनम्।।
> यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।
> ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।
> पुरस्कारं तिरस्कारं सुश्राव्यं वा भयानकम्।
> मनस्तमान्नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।
> सुगन्धे वाऽपि दुर्गन्धे मनो घ्राणेषु जायते।
> तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत्।।
> मधुराम्लकातिक्तादिरसं गतं यदा मनः।
> तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत्।। घे०सं० 4/1 2 3 4 5

अर्थात् महर्षि घेरण्ड ने कहा कि अब मैं प्रत्याहार का वर्णन प्रारम्भ करता हूँ। प्रत्याहार के करने से मनुष्य के शत्रुओं जैसे कामना, तृष्णा, इच्छा आदि का नाश होता है अर्थात् मान–अपमान आदि का मन में कोई प्रभाव न पड़े। मन का स्वभाव चंचल है इसलिए जब कभी यह चंचल मन इधर–उधर भागने का प्रयत्न करें और अपना मुख्य कार्य अर्थात् एकाग्रता को खोने लगे तो उसे प्रयास कर वापस लाना चाहिए अर्थात आत्मा के वश में करे। प्रिय तथा अप्रिय वचनों, सुगन्ध तथा दुर्गन्ध आदि से मन को हटाकर वश में करें। अर्थात् अपनी सीमा का ख्याल करते हुए उसे स्वयं के नियंत्रण में रखे उसे यहाँ–वहाँ भटकने न दे। किसी भी प्रकार के रस के स्वाद जैसे मधुर, अम्ल, तिक्क आदि की तरफ आकर्षित न हो। यही प्रत्याहार हैं।

महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि बहुत से लोग, अपनी इन्द्रियों को भीतर समेटना, जिस प्रकार कछुवा अपने अंगों को कवच के अन्दर समेटता है, प्रत्याहार समझते हैं किन्तु यह प्रत्याहार नहीं है बल्कि प्रत्याहार विचारों को बाँधने की शक्ति है बाह्य विषयों की ओर विचारों का जो प्रवाह है उसे बाँध देना, रोक देना ही प्रत्याहार है। यह अवस्था अन्तर्मुखता की है। प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रियाँ वशीभूत हो जाती है, तब मन स्वतः नियन्त्रण में आ जाता है। प्रत्याहार के अभ्यास से दुःख के मूल कारण का समूल नाश हो जाता है।

21.4 घेरण्ड संहिता में वर्णित ध्यान प्रकरण

प्रिय पाठकों आगे चलकर घेरण्ड मुनि छठे अध्याय में ध्यान का वर्णन अपने शिष्य चण्डकपालि के सामने करते हुए ध्यान की महिमा के बारे में बताते हैं। ध्यान को परिभाषित करते हुए महर्षि कहते हैं कि किसी विषय या वस्तु पर एकाग्रता या चिन्तन की क्रिया 'ध्यान' कहलाती है। जिस प्रकार हम अपने मन के सूक्ष्म अनुभवों को अन्तश्चक्षु के सामने, मनःदृष्टि के सामने स्पष्ट कर सके, यही ध्यान की स्थिति है। ध्यान साधक की कल्पना शक्ति पर भी निर्भर है। ध्यान अभ्यास नहीं है यह एक स्थिति है जो बिना किसी अवरोध के

अनवरत चलती रहती है। जिस प्रकार तेल को एक बर्तन से दूसरे बर्तन में डालने पर बिना रूकावट के मोटी धारा निकलती है, बिना छलके एक समान स्तर से भरनी शुरू होती है यही ध्यान की स्थिति है। इस स्थिति में किसी भी प्रकार की हलचल नहीं होती।

महर्षि घेरण्ड ध्यान के प्रकारों का वर्णन प्रथम सूत्र में करते हुए कहते हैं कि–

स्थूलं ज्योतिस्थासूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः।
स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं तथा।
सूक्ष्मं विन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली परदेवता।। घे०सं० 6/1

अर्थात् ध्यान तीन प्रकार का है– स्थूल ध्यान, ज्योतिर्ध्यान, सूक्ष्म ध्यान। स्थूल ध्यान में इष्टदेव की मूर्ति का ध्यान होता है। ज्योतिर्मय ध्यान में ज्योतिरूप ब्रह्म का ध्यान तथा सूक्ष्म ध्यान में बिन्दुमय ब्रह्म कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान किया जाता है।

21.4.1 स्थूल ध्यान

स्वकीयहृदये ध्यायेत्सुधासागरमुत्तमम्।
तन्मध्ये रत्नद्वीपं तु सुररत्नवालुकामयम्।।
चतुर्दिक्षु नीपतरुं बहुपुष्पसमन्वितम्।
निपोपवनसंकुलैर्वेष्टितं परिखा इव।।
मालतीमल्लिकाजातीकैसरैश्चम्पकैस्तथा।
पारिजातैः स्थलपद्मैर्गन्धामोदितदिङ्मुखैः।।
तन्मध्ये संस्मरेद्योगी कल्पवृक्षं मनोहरम्।
चतुःशाखाचतुर्वेदं नित्यपुष्पफलान्वितम्।।
भ्रमराः कोकिलास्तत्र गुंजन्ति निगदन्ति च।
ध्यायेत्तत्र स्थिरो भूत्वा महामाणिक्यमण्डपम्।।
तन्मध्ये तु स्मरेद्योगी पर्यङ्कं सुमनोहरम्।
तत्रेष्टदेवतां ध्यायेद्यद्ध्यानं गुरुभाषितम्।।
यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम्।
तद्रूपं ध्यायते नित्यं स्थूलध्यानमिदं विदुः।।घे०सं० 6/2 3 4 5 6 7 8

स्थूल ध्यान की दो विधियाँ में पहले पहली विधि की चर्चा की है।

(अ) सर्वप्रथम अपने हृदय पर ध्यान केन्द्रित कीजिए। महसूस कीजिए की हृदय में एक बड़ा सागर अमृत से भरा है। उसके बीच एक द्वीप है जो रत्नों से भरा है वहाँ की बालू भी रत्नों के चूर्ण से मुक्त है। इस द्वीप का आकर्षण फलों से लदे वृक्ष है। वहाँ पर अनेक सुगन्धित पुष्प जैसे मालती, मल्लिका, चमेली, केशर, चम्पा, पारिजात स्थल पद्म आदि अपनी सुगन्ध चारो और फैला रहें हैं।

इस द्वीप के मध्य ही कल्पवृक्ष नामक वृक्ष है। इसकी चार शाखाएँ चार वेदो के बारे में बताती है। यह वृक्ष फल–फूलों से लदा है द्वीप में कोयल की मधुर बोली तथा भ्रमर का गुंजन सुनायी दे रहा है। ठीक यही एक चबूतरा है जो हीरे, नीलम आदि रत्नों से सजा है। इस चबूतरे के ऊपर कल्पना करें कि आपके इष्ट देव बैठे हैं। इन्हीं इष्ट देव पर ध्यान लगाएँ।इष्ट देव गुरु है उनके शरीर में जो वस्तुएँ हैं जैसे वस्त्र, माला आदि उन पर

एकाग्रता को केन्द्रित कीजिए। इस विधि द्वारा साधक अपने गुरु के स्थूल रूप पर ध्यान करें।

सहस्रारे महापद्मे कर्णिकायां विचिन्तयेत्।
विलग्नसहितं पद्मं दलैर्द्वादशभिर्युतम्।।
शुक्लवर्ण महातेजो द्वादशैर्बीजभाषितम्।
ह स क्ष म ल व र युं ह स ख फ्रें यथाक्रमम्।।
तन्मध्ये कर्णिकायां तु अकथादिरेखात्रयम्।
ह ल क्ष कोण संयुक्तं प्रणवं तत्र वर्त्तते।।
नादबिन्दुमयं पीठं ध्यायेतत्र मनोहरम्।
तत्रोपरि हंसयुग्मं पादुका तत्र वर्तते।।
ध्यायेत्तत्र गुरुं देवं द्विभुजं च त्रिलोचनम्।
श्वेताम्बरधरं देवं शुक्लगन्धानुलेपनम्।।
शुक्लपुष्पमयं माल्यं रक्तशक्तिसमन्वितम्।
एवंविधगुरुध्यानात्स्थूल ध्यानं प्रसिध्यति।।
स्थूलध्यानं तु कथितं तेजोध्यानं श्रृणुष्व मे।
यद्ध्यानेन योगसिद्धिरात्मप्रत्यक्षमेव च।। घे०सं० 6/9 10 11 12 13 14 15

(ब) सहस्रार प्रदेश में महापक्ष है, जिसके एक हजार दल है उसके बीच में बारह दलो का एक छोटा कमल है। इन दलों का रंग सफेद है और यह तेज पूर्ण है। इनमें बारह बीज मंत्र है– "ह, स, क्ष, म, ल, व, र, यू, ह, ख और क्रें"। कमल के बीच में भाग में तीन रेखाएँ है। अ, क, थ वर्ण सहित। ये तीनों रेखाएँ मिलकर एक त्रिशूल की रचना करती है। इस त्रिभुज के कोणों का सांकेतिक शब्द 'हं, थं और लं' है। त्रिभुज के मध्य 'ऊँ' स्थित है। ध्यान के वक्त यह देखे कि सहस्र दल कमल के मध्य में हंसो का जोड़ा बैठा है, यह जोड़ा गुरु की पादुकाओं का चिह्न है। श्वेत पक्ष में बैठे हुए गुरू के दो हाथ तथा तीन नेत्र है। उन्होंने सफेद रंग के व्रस्त्र तथा सफेद फूलों की माला पहनी हुई है। उनके वाम भाग में लाल वस्त्र धारण किए उनके शक्ति सुशोभित है। इस प्रकार गुरू का ध्यान करने से स्थूल ध्यान सिद्ध होता है।

21.4.2 ज्योति ध्यान

मूलाधारे कुण्डलिनी भुजंगाकाररूपिणी।
तत्र तिष्ठति जीवात्मा प्रदीपकलिकाकृतिः।
ध्यायेत्तेजोमयं ब्रह्म तेजोध्यानं परात्परम्।।
भ्रूवोर्मध्ये मनऊर्ध्वे यत्तेजः प्रणवात्मकम्।
ध्यायेज्जवालावलीयुक्तं तेजोध्यानं तदेव हि।। घे०सं० 6/1617

मूलाधार चक्र में सर्प के आकार की कुण्डलिनी शक्ति हैं। उसी स्थान में दीपक की लौ के रूप में मनुष्य की आत्मा का निवास है। मूलाधार में आत्मा रूपी परम् ब्रह्म का ध्यान करे। यही ज्योति ध्यान है। भौहो के मध्य और मन के उर्ध्व भाग में जो ज्वालाग्ली युक्त

ज्योति है उसी पर ध्यान लगाना ज्योतिर्ध्यान कहलाता है। सूत्र के अनुसार आत्मा का निवास दो जगह है पहला मूलाधार तथा दूसरा भूमध्य में। मूलाधार में जो आत्मा है वह कुण्डलिनी के रूप में है और भूमध्य में जो रूप है वह प्रणव रूप में है।

21.4.3 सूक्ष्म ध्यान

तेजोध्यानं श्रुतं चण्ड सूक्ष्मध्यानं श्रृणुष्व मे।
बहुभाग्यवशाद्यस्य कुण्डली जाग्रती भवेत्।।
आत्मना सह योगेन नेत्ररन्ध्राद्विनिर्गता।
विहरेद्राजमार्गे च चंचलत्वान्न दृश्यते।।
शाम्भवी मुद्रया योगो ध्यानयोगेन सिध्यति।
सूक्ष्मध्यानमिदं गोप्यं देवानामपि दुर्लभम्।।
स्थूलध्यानाच्छतगुणं तेजोध्यानं प्रचक्षते।
तेजोध्यानाल्लक्षगुणं सूक्ष्मध्यानं परात्परम्।।
इति ते कथितं चण्ड ध्यानयोगं सुदुर्लभम्।
आत्मसाक्षाद्भवेद्यस्मात्तस्माद्ध्यानं विशिष्यते।।घे०सं० 6/18 19 20 21 22

सूक्ष्म ध्यान को वर्णित करते हुए महर्षि कहते हैं कि यदि साधक का सौभाग्य रहा तो इस ध्यान के द्वारा आत्मा से एक होना सम्भव है और कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। यह शक्ति नेत्र–रन्ध्र से होकर ऊपरी मार्ग में स्थित राजमार्ग स्थान में विचरण करती है। किन्तु यही अति सूक्ष्म एवं चंचल होने के कारण दिखाई नहीं देती। साधक को शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करते हुए इस शक्ति का ध्यान दे। यही सूक्ष्म ध्यान है। यह अत्यन्त गोपनीय एवं दुर्लभ ध्यान है। ध्यान की श्रेष्ठता बताते हुए मुनि ने लिखा है कि स्थूल ध्यान से सौ गुना श्रेष्ठ ज्योति ध्यान है, ज्योति ध्यान से लाख गुना श्रेष्ठ सूक्ष्म ध्यान है। इस ध्यान के सिद्ध होने पर आत्म–साक्षात्कार होता है। सूक्ष्म ध्यान का अर्थ है वास्तविक ध्यान।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) घेरण्ड संहिता में किस अध्याय में प्रत्याहार प्रकरण हैं?

(i) चौथे (ii) छठे

(iii) तीसरे (iv) सातवें

(ख) स्थूल ध्यान में कितने बीज मंत्र है?

(i) 10 (ii) 12

(iii) 14 (iv) 16

(ग) स्थूल ध्यान में दलों का रंग कौन सा है?

(i) लाल (ii) पीला

(iii) सफेद (iv) इनमें से कोई नहीं

(घ) सूक्ष्म ध्यान में किस मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए?

(i) नभो मुद्रा (ii) खेचरी मुद्रा

(iii) योनि मुद्रा (iv) शाम्भवी मुद्रा

(ङ) घेरण्ड संहिता में वर्णित ध्यान कितने प्रकार का है?

(i) 2 (ii) 3 (iii) 4 (iv) 6

21.5 सारांश

प्रत्याहार एवं ध्यान साधक को लक्ष्य तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण साधन है। इन साधनों से चित्त की चंचलता नष्ट होती है जिससे एकाग्राचित्त होकर किसी भी कार्य को करने की क्षमता में वृद्धि होती है। अतः यह मन संयम के लिए महत्वपूर्ण विधा है। प्रत्याहार व ध्यान के अभ्यास से साधक काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, चित्त आदि पर विजय प्राप्त करके वह समाधि की ओर अग्रसर हो जाता है।

20.6 शब्दावली

चित्त –मन, बुद्धि तथा अहंकार का सम्मलित
कामना – इच्छा
तृष्णा –चाह, राग
अन्तुर्मुख– अन्दर की और
अवरोध –रूकावट
अनवरत –लगातार

21.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

(क) चौथे (ख) 12 (ग) सफेद (घ) शाम्भवी मुद्रा (ङ) 03

21.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दिगम्बर स्वामी (2001) स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम, श्रीमन्माधव, योग मन्दिर समिति, लोनावाला
2. निरंजनानन्द स्वामी (2003) महर्षि घेरण्ड कृत घेरण्ड संहिता योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार
3. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द – आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध (2003) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार

21.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रत्याहार की परिभाषा देते हुए विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
2. ध्यान क्या है? स्थूल ध्यान का विस्तार से वर्णन करें।
3. ध्यान की परिभाषा बताते हुए ध्यान के प्रकारों पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें।

इकाई–22 घेरण्ड संहिता में वर्णित समाधि वर्णन

इकाई की संरचना

22.1 प्रस्तावना

22.2 उद्देश्य

22.3 समाधि प्रकरण

22.3.1 ध्यान योग समाधि

22.3.2 नाद योग समाधि

22.3.3 रसानन्द समाधि

22.3.4 लयसिद्धि समाधि

22.3.5 भक्तियोग समाधि

22.3.6 मनोमूर्च्छा समाधि

22.3.7 राजयोग समाधि

22.5 सारांश

22.6 शब्दावली

22.7 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

22.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

22.9 निबंधात्मक प्रश्न

22.1 प्रस्तावना

घेरण्ड मुनि ने समाधि का वर्णन घेरण्ड संहिता के अंतिम अध्याय सातवें में किया है। हठयोग का अन्तिम उद्देश्य समाधि है। घेरण्ड मुनि ने समाधि की चर्चा बड़े सहज व स्पष्ट रूप से की है। समाधि योग की अंतिक स्थिति है इसके विषय में घेरण्ड मुनि कहते हैं समाधि कोई सामान्य अवस्था नहीं है यह एक परम अवस्था है जो बड़े भाग्य वालों को ही प्राप्त हाी है। समाधि की सिद्धि प्राप्त होने पर साधक को शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक शक्तियों की प्राप्ति होती है तथा साधक को समाधि में यही भाव रहता है कि मैं ब्रह्म हूँ और इसके अतिरित्तफ अन्य कुछ भी नहीं। अर्थात् साधक को अपने अन्तिम लक्ष्य कैवल्य की स्थिति प्राप्त कर लेता है। प्रस्तुत इकाई में आप समाधि के भेदों का अध्ययन करेंगे।

22.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप–

समाधि के उद्देश्य को समझ सकेंगे।

समाधि के विविध भेदों का विश्लेषण कर सकेंगे।

बता सकेंगे कि समाधि क्यों अनिवार्य है।

22.3 समाधि प्रकरण

घेरण्ड संहिता का अन्तिम अध्याय समाधि है। समाधि का वर्णन घेरण्ड मुनि ने सातवे अध्याय में किया है। हठयोग का अन्तिम उद्देश्य समाधि है। जहाँ पर आत्मा का मिलन उस स्वच्छ, निर्मल, शुद्ध परमतत्व से हो जाता है। हठयोग के कई ग्रंथों जैसे हठयोग प्रदीपिका, योगसूत्र, घेरण्ड संहिता आदि में अनेकों मनीषियों ने समाधि का वर्णन अलग–अलग तरह से किया है। कहा जाता है कि समाधि एक अवस्था है जिसमें व्यक्ति को आत्म–साक्षात्कार हो जाता है। सभी शास्त्रों और ग्रन्थों में जिस अवस्था को ब्रह्मज्ञान के नाम से जाना जाता है, वह स्वयं में समाधि की स्थिति है। समाधि के विषय में महर्षि, चण्डकपालि को समझाते हुए कहते हैं कि–

समाधिश्च परो योगो बहुभाग्येन लभ्यते।
गुरोः कृपाप्रसादेन प्राप्यते गुरुभक्तितः।।
विद्याप्रतीतिः स्वगुरुप्रतीतिरात्मप्रतीतिर्मनसः प्रबोधः।
दिने दिने यस्य भवेत्स योगी सुशोभनाभ्यासमुपैति सद्यः।।
घटाद्भिन्नं मनः कृत्वा चैक्यं कुर्यात्परात्मनि।
समाधिं तं विजानीयान्मुक्तसंज्ञो दशादिभिः।।
अहं ब्रह्म न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तः स्वभाववान्।। घे०सं० 7/1 2 3 4

अर्थात् समाधि कोई सामान्य अवस्था नहीं है यह एक परम् अवस्था है जो बड़े भाग्य वालों को ही प्राप्त होती है। यह उन्हीं साधकों को प्राप्त होती है जो गुरु के परम् भक्त है या जिन पर अपने गुरू की असीम कृपा होती है। जैसे–जैसे साधक की विद्या की प्रतीति, गुरु की प्रतीति, आत्मा की प्रतीति और मन का प्रबोध बढ़ता जाता है, तब उसे समाधि की प्राप्ति होती है। अपने शरीर को मन के अधीन होने से हटाने तथा परमात्मा में लगाने पर ही साधक मुक्त होकर समाधि को प्राप्त होता है। समाधि में यही भाव रहता है कि मैं ब्रह्म हूँ और इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं। मुझे किसी भी प्रकार का कोई बंधन नहीं है, मैं सत्, चित्त और आनन्द कर स्वरूप है। समाधि को बताने के बाद आगे घेरण्ड मुनि समाधि के भेद को बताते हुए कहते हैं कि–

शाम्भव्या चैव भ्रामर्या खेचर्य्या योनिमुद्रया।
ध्यानं नादं रसानन्दं लयसिद्धिश्चतुर्विधा।।
पंचधा भक्ति योगेन मनोमूर्च्छा च षड्विधा।
षड्विधोऽयं राजयोगः प्रत्येकमवधारयेत्।। घे०सं० 7/5 6

समाधि के छह भेद बताए हैं वे हैं– ध्यान योग समाधि, नाद योग समाधि, रसानंद योग समाधि, लयसिद्धि योग समाधि, भक्तियोग समाधि, राजयोग समाधि। ध्यान योग की समाधि शाम्भवी मुद्रा से, नाद योग की भ्रामरी से, रसानन्दयोग की खेचरी से, लयसिद्धि योग की योनि मुद्रा से, भक्तियोग की मनोमूर्च्छा से और राजयोग समाधि कुम्भक से सिद्ध होती है। उपर्युक्त छह समाधियाँ राज योग में सम्मिलित हैं, साधक को इनका अभ्यास क्रमशः करना चाहिए।

22.3.1 ध्यान योग समाधि

शाम्भवीं मुद्रिकां कृत्वा आत्मप्रत्यक्षमानयेत्।
बिन्दु ब्रह्ममयं दृष्ट्वा मनस्तत्र नियोजयेत्।।
खमध्ये कुरुचात्मानमात्ममध्ये च खं कुरु।
आत्मानं खमयं दृष्ट्वा न किंचिदपि बुध्यते।
सदानन्दमयो भूत्वा समाधिस्थो भवेन्नरः।। घे०सं० 7/7 8

शाम्भवी मुद्रा को कर आत्मा को प्रत्यक्ष रूप से देखने का प्रयास करें तत्पश्चात् ब्रह्म का साक्षात्कार करते हुए मन को बिन्दु पर केन्द्रित करें। मस्तिष्क में स्थित ब्रह्म लोकमय आकाश के बीच में आत्मा ले जाए और जीवात्मा में आकाश को लय करें तथा परमात्मा में जीवात्मा का ध्यान करें। इससे योगी को आनन्द मिलता है और वह समाधि में स्थित हो जाता है।

22.3.2 नाद योग समाधि

अनिलं मन्द वेगेन भ्रामरीकुम्भकं चरेत्।
मन्दं मन्दं रेचयेद्वायुं भृङ्नादं ततो भवेत्।।

अन्तःस्थं भ्रमरीनादं श्रुत्वा तत्र मनो नयेत्।
समाधिजार्यते तत्रं चानन्दः सोऽहमित्यतः।। घे०सं० 7/9 10

धीमी गति से वायु का पान कर भ्रामरी प्राणायाम करते हुए ही धीमी गति से ही वायु का रेचन करे। वायु का रेचन करते हुए भौरे के गुन्जन की ध्वनि उत्पन्न करे। यह गुंजन (नाद) जहाँ पर हो रहा हो उसी पर ध्यान या मन लगा दे। धीरे–धीरे वह ध्वनि पूरे शरीर में गूँजने लगती है यही नाद योग समाधि है।

22.3.3 रसानन्द समाधि

खेचरीमुद्रासाधनात् रसनोर्ध्वगता यदा।
तदा समाधिसिद्धिः स्याद्धित्वा साधारणक्रियाम्।। घे०सं० 7/11

महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि खेचरी साधना में जीभ ऊपर की ओर कपाल कुहर में प्रवेश कर जब ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाती है इस प्रकार की स्थिति रसानन्द योग समाधि कहलाती है। इस अवस्था में जिस रस की अनुभूति होती है वह परम आनन्ददायी होता है। यही उस अमृत रस से प्राप्त आनन्द की समाधि है इसे ही महर्षि ने रसानन्द समाधि की संज्ञा दी है।

22.3.4 लयसिद्धि समाधि

योनिमुद्रां समासाद्य स्वयं शक्तिमयो भवेत्।
सुश्रृगाररसेनैव विहरेत्परमात्मनि।।
आनन्दमयः सम्भूत्वा एक्यं ब्रह्मणि संभवेत्।
अहं ब्रह्मेति चाद्वैतसमाधिस्तेन जायते।। घे०सं० 7/12 13

इस समाधि का वर्णन करते हुए मुनि जी कहते हैं कि साधक को पहले योनि मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। साधक को सब कुछ भूलकर (लिंग भेद) स्वयं में शक्ति की भावना तथा परमात्मा में पुरुष का भाव रखना चाहिए। उसे यह भावना रखनी चाहिए कि उसमें और परमात्मा में शक्ति और पुरुष का संचार हो रहा है। इसके पश्चात् आनन्द मग्न होकर यह चिन्तन करें कि "मैं ही अद्वैत ब्रह्म हूँ"। यही लयसिद्धि समाधि की अवस्था है।

22.3.5 भक्तियोग समाधि

स्वकीयहृदये ध्यायेदिष्टदेव स्वरूपकम्।
चिन्तयेद्भक्तियोगेन परमाह्लादपूर्वकम्।।
आनन्दाश्रुपुलकेन दशाभावः प्रजायते।
समाधिः सम्भवेत्तेन सम्भवेच्च मनोन्मनी।। घे०सं० 7/14 15

घेरण्ड मुनि कहते हैं कि अपने हृदय में अपने अराध्य देव के रूप पर ध्यान लगाए। मन में भक्ति का भाव लाए तथा अपने इष्टदेव के प्रति पूर्ण श्रद्धा, भक्ति,

प्रेम आदि का भाव उत्पन्न करे। ऐसा करने से आनन्द के आँसू बहने लगते हैं और पूरा शरीर काँपने लगता है। मन में एकाग्रता आती है और तभी मन, ब्रह्म से साक्षात्कार हो जाता है। यही भक्ति योग समाधि है। यह समाधि भावुक साधकों के लिए उचित है।

22.3.6 मनोमूर्च्छा समाधि

मनोमूर्च्छा समासाद्य मन आत्मनि योजयेत्।
परमात्मनः समायोगात्समाधि समवाप्नुयात्।। घे०सं० 7/16

मनोमूर्च्छा प्राणायाम का अभ्यास कर साधक की अन्तःकरण की क्रिया समाप्त हो जाती है उसी समय साधक को अपना मन एकाग्र कर ब्रह्म में स्थित करने का प्रयास करे। परमात्मा के साथ योग होने को ही मनोमूर्च्छा समाधि कहते हैं।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1 **(क)** घेरण्ड संहिता में वर्णित समाधि कितने प्रकार की है।
- (अ) 03
- (ब) 06
- (स) 07
- (द) 08

(ख) ध्यान योग समाधि में किस मुद्रा का अभ्यास किया जाता है।
- (अ) शाम्भवी मुद्रा
- (ब) खेचरी मुद्रा
- (स) योनि मुद्रा
- (द) महामुद्रा

(ग) नादयोग समाधि में किस प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है।
- (अ) भस्त्रिाका प्राणायाम
- (ब) भ्रामरी प्राणायाम
- (स) मूर्च्छा प्राणायाम
- (द) उज्जायी प्राणायाम

(घ) घेरण्ड संहिता में समाधि को किस अध्याय में रखा गया है।
- (अ) चौथे
- (ब) छठे
- (स) पाचवें
- (द) सातवें

22.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि घेरण्ड संहिता में वर्णित समाधि की उपयोगिता को स्वीकारा गया है। वास्तव में हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि समाधि से ही आत्म साक्षात्कार की प्राप्ति होती है। साधक को समाधि की सिद्धि प्राप्त होने पर धरा पर पुनर्जन्म नहीं होता।

22.4 शब्दावली

निर्मल – साफ,स्वच्छ

रेचक – श्वास छोड़ना

चिन्तन – अनवरत सोचने की प्रक्रिया

कैवल्य – मोक्ष, समाधि

प्रबोध – वशिष्ट ज्ञान

पूरक – श्वास लेना

22.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) 06 (ख) शाम्भवी मुद्रा, (ग) भ्रामरी प्राणायाम (घ) सातवें

22.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची?

1. दिगम्बर स्वामी (2001) स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम, श्रीमन्माधव, योग मन्दिर समिति, लोनावाला।
2. निरंजनानन्द स्वामी (2003) महर्षि घेरण्ड कृत घेरण्ड संहिता योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार।
3. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द – आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध (2003) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार।

22.7 निबंधात्मक प्रश्न

1. समाधि से आप क्या समझते हैं? ध्यानयोग समाधि तथा लयसिद्धि समाधि को समझाइये।
2. समाधि के भेदों को स्पष्ट करते हुए प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन करें।